Methodology in Educational Statistics

MAE-203

Self Learning Material

Directorate of Distance Education

SWAMI VIVEKANAND SUBHARTI UNIVERSITY

MEERUT-250005

UTTAR PRADESH

विषय-सूची

इकाई (Units) (CONTENTS) पृष्ठ संख्या (Page No.)

1.	सांख्यिकी	1
2.	सांख्यिकी पद्धति–1	53
3.	सांख्यिकी पद्धति–2	122
4.	वैधता	191
5.	अनुसंधान प्रतिवेदन	234

Syllabus

OBJECTIVES: **CREDITS: 4**

- ❖#Students will be able to distinguish between Internal Validity and External Validity.
- ❖#Students will be able to discriminate between Parametric and Non Parametric Statistical Techniques.
- ❖#Students will be able to select appropriate method of computing Correlation and interpret the Coefficient of Correlation.
- ❖#Students will be able to write the Thesis/Dissertation in a systematic way.

UNIT-I

- ❖#Nature of educational data : Quantitative and Qualitative data.
- ❖#Qualitative data : its analysis with emphasis on content analysis; analysis of interview based data and observation based data.
- ❖#Quantitative data : Scales of measurement : nominal, ordinal, internal, Ratio.
- ❖#Organization and representation : Frequency distribution. Frequency polygon,
- ❖#Histogram, Ogive, Smoothed frequency curve.

UNIT-II

- ❖#Concept, calculation and uses of : Measures of central tendencies:
- ❖#Measures of variability.
- ❖#Percentiles and Percentile Ranks.
- ❖#Correlations, Regression equations
- ❖#Properties and uses of normal distribution

UNIT-III

- ❖#Standard errors, Confidence limits
- ❖#Hypothesis testing difference between means, Correlations, Cross breaks (Chi-square), ANOVA nal
- ❖#Application of statistical tests and their interpretation

UNIT-IV

- ❖#Validity and Limitations of findings; factors influencing validity of research; internal vs. external validity; how to increase validity of research findings.

UNIT-V

- ❖#Research report: sections (Preliminary part, main body, referencesection)
- ❖#Skills of writing research report:
- ❖#Evaluation of Research: Criteria and types and types of research.

Practicum: (any one)

- ❖#Review of two published research papers; one quantitative and the other qualitative.
- ❖#Evaluation of an M.Ed. or an M.Phil. Dissertation.

अध्याय-1

सांख्यिकी

नोट

(Structure)

1.1 उद्देश्य
1.2 प्रस्तावना
1.3 सांख्यिकी का उद्‌गम एवं विकास
1.4 सांख्यिकी का अर्थ एवं परिभाषा
1.5 सांख्यिकी के कार्य अथवा विस्तार क्षेत्र
1.6 सांख्यिकी का महत्त्व
1.7 सांख्यिकी की सीमाएँ
1.8 शैक्षिक अनुसंधान का अर्थ एवं परिभाषा
1.9 शिक्षा अनुसंधान की आवश्यकता
1.10 शैक्षिक अनुसंधान का क्षेत्र
1.11 अनुसंधान की विशिष्ट भावी आवश्यकताएँ
1.12 समाजशास्त्र की अध्ययन पद्धतियाँ
1.13 समाजशास्त्र की सामान्य पद्धति/वैज्ञानिक पद्धति
1.14 'अतर्वस्तु विश्लेषण' प्रविधि की परिभाषाएँ व विशेषताएँ
1.15 अंतर्वस्तु विश्लेषण प्रविधि का महत्त्व
1.16 अंतर्वस्तु विश्लेषण प्रविधि की सीमाएँ
1.17 मापन की अनुमापनियाँ
1.18 मापन की मुख्य क्रियाएँ
1.19 आँकड़ों का वर्गीकरण
1.20 आदर्श वर्गीकरण के आवश्यक तत्व
1.21 आँकड़ों के वर्गीकरण के प्रकार/पद्धतियाँ/विचार
1.22 आवृत्ति बंटन
1.23 आवृत्ति वितरण की रचना
1.24 साधारण अथवा संचयी आवृत्ति शृंखला
1.25 सारणीयन
1.26 सारणीयन व वर्गीकरण में अन्तर
1.27 सारणी के प्रमुख अंग
1.28 सारणियों के प्रकार
1.29 सारांश
1.30 अभ्यास-प्रश्न
1.31 संदर्भ पुस्तकें

1.1 उद्देश्य

नोट

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- सांख्यिकी की परिभाषा को समझने में;
- सांख्यिकी के कार्य अथवा विस्तार क्षेत्र की व्याख्या करने में;
- शैक्षिक अनुसंधान को जानने में;
- शैक्षिक अनुसंधान की आवश्यकता को जानने में;
- सामाजिक क्रिया से संबंधित संख्यात्मक तथ्य एकत्रित करना;
- उपकल्पना का निर्माण करना;
- अंतर्वस्तु विश्लेषण के अर्थ की जानकारी;
- मापन की अनुमापनियों को समझने और व्याख्या करने में;
- आँकड़ों का वर्गीकरण, प्रकार एवं आदर्श वर्गीकरण के आवश्यक तत्व को समझने में।

1.2 प्रस्तावना

लार्ड केल्विन का कहना है कि "जिस विषय की बात आप कर रहे हैं यदि आप उसका माप कर सकते हैं और उसे संख्याओं के माध्यम से प्रकट कर सकते हैं तो आप उसके बारे में कुछ जानते हैं; लेकिन जब आप उस विषय का माप ही नहीं कर सकते और उसे संख्याओं में प्रकट नहीं कर सकते तो समझ लीजिए कि आपका ज्ञान अल्प है और वह भी असन्तोषजनक प्रकृति का है। नि:सन्देह आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में तथा ज्ञान की प्रत्येक शाखा में तथ्यों का संख्यात्मक माप एवं उनकी गणना अपना एक विशेष महत्त्व रखती है। आज संसार के सभी विकासशील राष्ट्रों द्वारा आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्र से सम्बन्धित विषयों के बारे में संख्याओं के माध्यम से सूचनाएँ एकत्रित की जाती हैं ताकि उनके आधार पर भावी विकास-नीति का निर्धारण किया जा सके। मायर एवं वाल्डविन (Meier and Baldwin) के मतानुसार "जो राष्ट्र अपनी वर्तमान स्थिति एवं विकास-युक्त गतिविधियों के बारे में कुछ नहीं जानते, वे प्राय: विश्व मानचित्रों में पिछड़े हुए राष्ट्र कहकर सम्बोधित किये जाते हैं।

शैक्षिक अनुसंधान से तात्पर्य उस अनुसंधान से होता है, जो शिक्षा के क्षेत्र में किया जाता है। उसका उद्देश्य शिक्षा के विभिन्न पहलुओं, आयामों, प्रक्रियाओं आदि के विषय में नवीन ज्ञान का सृजन, वर्तमान ज्ञान की सत्यता का परीक्षण, उसका विकास एवं भावी योजनाओं की दिशाओं का निर्धारण करना होता है। ट्रैवर्स ने शिक्षा-अनुसंधान को एक ऐसी क्रिया माना है, जिसका उद्देश्य शिक्षा-संबंधी विषयों पर खोज करके ज्ञान का विकास एवं संगठन करना होता है। विशेष रूप से छात्रों के उन व्यवहारों के विषय में ज्ञान एकत्र करना, जिनका विकास किया जाना शिक्षा का धर्म समझा जाता है, शिक्षा-अनुसंधान में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण समझा जाता है।

ऑगस्ट कॉम्ट का निश्चित मत है कि वैज्ञानिक अध्ययन में सट्रेब्र ाजी या अनुमान (Speculations) का कोई स्थान नहीं है। दूसरे शब्दों में, आध्यात्मिक एवं दार्शनिक चिंतन द्वारा प्राप्त निष्कर्ष सत्य भी हो सकता है और काल्पनिक भी, अर्थात् ऐसे निष्कर्षों का सत्य या काल्पनिक होना 'संयोग' की बात है, जबकि वैज्ञानिक अध्ययन 'संयोग' या 'अनुमान' पर निर्भर नहीं हो सकता और न होना चाहिए। इसीलिए प्रत्येक विज्ञान अपने प्रयोगसिद्ध अध्ययन-कार्य के लिए एक या एकाधिक निश्चित एवं सुव्यवस्थित अध्ययन-प्रणालियों को अपनाता है। इन्हीं को पद्धतियाँ कहते हैं और ये पद्धतियाँ ही वैज्ञानिक अनुसंधान के आधार हैं। ये पद्धतियाँ आधारभूत रूप से सभी विज्ञानों में समान

या एक जैसी होती हैं, केवल अध्ययन-वस्तु की प्रकृति के अनुरूप इनके रूप या स्वरूप में कुछ आवश्यक परिवर्तन प्रत्येक विज्ञान में कर लिया जाता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि पद्धति वह प्रणाली है जिसके अनुसार अध्ययन-कार्य का संगठन, तथ्यों की विवेचना तथा निष्कर्षों का निर्धारण किया जाता है।

नोट

इस सत्य को सभी लोग स्वीकार करते हैं कि भौतिक घटनाओं की तुलना में सामाजिक घटनाएँ अधिक जटिल, परिवर्तनशील, अमूर्त तथा गुणात्मक होती हैं, जिनके कारण सामाजिक विज्ञानों के लिए अपना निष्कर्ष निकालने व नियमों को प्रतिपादित करने में कठिनाई होती है। इस कठिनाई को कम करने की दिशा में अंतर्वस्तु विश्लेषण प्रविधि ने महत्त्वपूर्ण योगदान किया है क्योंकि इसकी सहायता से गुणात्मक तथ्यों का परिमाणात्मक (Quantitative) व वस्तुनिष्ठ वर्णन संभव होता है। कुछ शोधकर्ता अध्ययन-विषय से संबंधित तथ्यों के अंतर्वस्तु को उचित श्रेणियों में विभाजित करके, उनके वस्तुनिष्ठ विश्लेषण को ही "अन्तर्वस्तु विश्लेषण" मानते हैं।

शिक्षा तथा मनोविज्ञान में मापन की प्रक्रिया निरपेक्ष तथा अप्रत्यक्ष होती है। निरपेक्ष का अर्थ होता है कि भौतिक मापन की भाँति शून्य का मान निरपेक्ष नहीं होता है अपितु शून्य का मान सापेक्ष होता है। जैसे किसी विषय के परीक्षण में एक छात्र के अंक शून्य प्राप्त हुए इसका अर्थ यह नहीं है कि उस विषय में उसे कुछ भी ज्ञान नहीं है अपितु परीक्षण में सम्मिलित प्रश्नों का ज्ञान नहीं है। व्यावहारिक विज्ञानों में शून्य सन्दर्भ बिन्दु नहीं होता है अपितु समूह का निष्पादन सन्दर्भ बिन्दु माना जाता है। क्योंकि मापन की प्रक्रिया सापेक्ष होती है।

शिक्षा में मापन की सापेक्षता का अर्थ एक उदाहरण स्पष्ट किया जा सकता है। एक छात्र के गणित में 60 अंक और अंग्रेजी में 29 अंक प्राप्त किया। दोनों विषयों के पूर्णांक 100 है। इसका अर्थ हुआ 60 प्रतिशत गणित में 29 प्रतिशत अंग्रेजी में अंक प्राप्त किये गणित में प्रथम श्रेणी के अंक तथा अंग्रेजी में पास भी नहीं है। परन्तु जब कक्षा शिक्षक से जानकारी की गई तब शिक्षक ने बताया कि अंग्रेजी में सबसे अधिक प्राप्त किए और गणित में सबसे कम अंक प्राप्त किये हैं। यह अर्थापन समूह के निष्पादन के सन्दर्भ में किया गया है जो अधिक सार्थक है। यहाँ सापेक्ष से तात्पर्य समूह के सन्दर्भ में छात्र में छात्र का निष्पादन किस स्तर का है। इस इकाई में हम मापन की अनुमापनियों का अध्ययन करेंगे।

भवन निर्माण के लिये केवल ईंटों का ढेर ही पर्याप्त नहीं होता बल्कि उन्हें एक सुव्यवस्थित ढंग से सजाने के बाद ही भवन का निर्माण हो पाता है। इसी प्रकार एकत्रित समंक अपने मूल रूप में अंकों के ढेर के समान हैं और उनसे कोई भी तर्कसंगत परिणाम नहीं निकाला जा सकता। वास्तव में, संकलित समंक अत्यन्त जटिल एवं अव्यवस्थित रूप में होते हैं। उन्हें आसानी से समझ पाना और उनसे कोई उचित परिणाम निकालना तब तक सम्भव नहीं होता जब तक कि उन्हें एक सुव्यवस्थित क्रम में प्रस्तुत न कर दिया जाए। फिर, तुलनात्मक अध्ययन, विश्लेषण एवं निर्वचन के लिये भी संकलित सामग्री को सरल, संक्षिप्त व बोधगम्य रूप दोनों की आवश्यकता होती है। वास्तव में, यह प्रक्रिया ही समंकों का वर्गीकरण एवं सारणीयन कहलाती है। "वर्गीकृत एवं क्रमबद्ध तथ्य स्वयं बोलते हैं जबकि अव्यवस्थित रूप में वे माँस की तरह मृत होते हैं।"

1.3 सांख्यिकी का उद्‌गम एवं विकास

अंग्रेजी भाषा का शब्द ष्टैजंजपेजपबेष्ठ जर्मन भाषा के शब्द ष्टैजंजपेजपाष्ठ और लैटिन भाषा के शब्द 'Status' से लिया गया है जिनका अर्थ है–राज्य अथवा सरकार। कवि सम्राट् विलियम शेक्सपियर (W. Shakespear) जान मिल्टन (John Milton) तथा विलियम **वर्ड्सवर्थ** (W. Wordsworth)

नोट

आदि ने भी 'Statist' शब्द का प्रयोग एक ऐसे व्यक्ति के लिये किया था जो राज्य से सम्बन्धित लेखा-जोखा के कार्य में निपुण हो। वैसे ष्टैजंजपेजपबेष्ठ शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग करने का श्रेय जर्मनी के प्रसिद्ध गणिताचार्य गॉटफ्रायड एकेनवाल (Golfried Achenwall), जिन्हें सांख्यिकी का जन्मदाता भी कहा जाता है, को प्राप्त है।

इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि सांख्यिकी की उत्पत्ति, सही अर्थों में, 'राजाओं के विज्ञान' (Science of Kings) के रूप में हुई है। प्राचीन इतिहास का अध्ययन करने पर पता चलता है कि ये शासक अपने राज्य से सम्बन्धित विभिन्न विषयों के सामयिक सर्वेक्षण कराते रहते थे ताकि उन्हें वास्तविक स्थिति का पता चलता रहे। हाँ, ध्यान रहे, इन सम्राटों द्वारा मुख्य रूप से जनशक्ति, धनशक्ति तथा सैन्य-शक्ति जैसी सूचनायें, एकत्रित की जाती थीं। उदाहरण के तौर पर 3050 ई. पू. विश्वविख्यात पिरामिडों के निर्माण हेतु मिश्र के सम्राट् द्वारा समंकों का संकलन कराया गया था। इसी प्रकार 1400 ई. पूर्व सम्राट् रैमेसिस द्वितीय ने भूमि-सम्बन्धी और मूसा सम्राट् ने जातियों की गणना करायी थी। भारत में कौटिल्य के अर्थशास्त्र, तुज्के-बावरी और आईन-ए-अकबरी जैसे ग्रन्थ समंक-संग्रहण की कला का जीता-जागता उदाहरण पेश करते हैं।

कालान्तर में धीरे-धीरे इस विज्ञान का प्रयोग अन्य क्षेत्रों में भी किया जाने लगा। उदाहरण के तौर पर सोलहवीं शताब्दी में जॉन्स कैपलर ने खगोलशास्त्र के क्षेत्र में, सर टॉम्स ग्रेशम ने आर्थिक व सामाजिक क्षेत्र में, सत्रहवीं शताब्दी में जीवन समंकों के रूप में तथा अठारहवीं शताब्दी में गणितीय क्षेत्र में इस विज्ञान का प्रयोग शुरू कर दिया गया। इसी शताब्दी के दौरान पास्कल, फरमैट, बरनौली, लाप्लेस तथा गौस जैसे विद्वानों ने सम्भावना सिद्धांत, नियमितता सिद्धांत तथा प्रसामान्य सिद्धांत (Normal Law of Errors) का प्रतिपादन किया। उन्नीसवीं शताब्दी में इस विज्ञान को और अधिक विकसित करने का श्रेय क्यूटले, नैप, चार्लियर फ्रान्सिस गाल्टन तथा कार्ल पियर्सन महोदय को है। वर्तमान शताब्दी तो स्वयं में एक सांख्यिकीय युग है जिसमें मानव जाति से सम्बन्धित सभी विज्ञानों में इसका पूर्णरूपेण प्रयोग किया जाने लगा है। **श्री टिपेट** (Tippet) ने ठीक ही कहा है कि "सांख्यिकी प्रत्येक व्यक्ति को प्रभावित करती है और मानव जीवन को अनेक बिन्दुओं पर स्पर्श करती है।" हाँ! आज यह विज्ञान केवल शासकों एवं सम्राटों की ही बपौती नहीं, बल्कि आर्थिक, सामाजिक तथा भौतिक सभी शास्त्रों की आधारशिला है।

1.4 सांख्यिकी का अर्थ एवं परिभाषा

सांख्यिकी का मूल उद्देश्य अनुसन्धान कार्य की विभिन्न समस्याओं का अध्ययन, उनके कारण एवं परिणामों का विश्लेषण करना है। सांख्यिकी रीतियों के द्वारा ही किसी समस्या से सम्बन्धित भूतकाल के समंकों को एकत्र करके उनकी वर्तमान परिस्थितियों से सापेक्षिक तुलना की जाती है। इन्हीं संमकों के द्वारा घटनाओं में होने वाले परिवर्तनों के कारणों और उनके परिणामों का विश्लेषण किया जाता है। **बॉडिंगटन** के अनुसार, "सांख्यिकीय अन्वेषण का प्रमुख उद्देश्य भूतकालीन एवं वर्तमान तथ्यों की तुलना करके यह ज्ञात करना है कि जो परिवर्तन हुए हैं उनके क्या कारण रहे हैं तथा उनके क्या परिणाम भविष्य में हो सकते हैं।" ("The ultimate end of statistical research is to enable comparison to be made between past and present results with a view to ascertaining the reasons for changes which have taken place and the effect of such changes on the future.")

—Boddington

जॉनसन एवं **जैक्सन** के अनुसार, "सांख्यिकीय रीतियों का वास्तविक उद्देश्य तथ्यों एवं संख्याओं से उचित अर्थ निकालना अज्ञात घटनाओं के बारे में खोज करना और स्थिति पर प्रकाश डालना है।"

आज सांख्यिकी का महत्व इतना बढ़ चुका है कि यह मानव जीवन के प्रत्येक पहलू को प्रभावित करता है। **प्रो. वॉलिस** एवं **रॉबर्ट्स** के अनुसार, "Statistics is a tool which can be used in attacking problems that arise in almost every field of empirical inquiry." इसके महत्व को देखते हुए इसे मानव कल्याण का अंकगणित भी कहा जाता है। **रॉबर्ट डब्लू. बर्गेस** के अनुसार, "सांख्यिकी का मौलिक सिद्धान्त अज्ञान, पूर्वधारणा, निरंकुश सत्ता, निराधार एवं अपरिपक्व निर्णय, परम्पराएँ व रूढ़िवादी सिद्धान्तों के क्षेत्र को हटाकर ऐसे क्षेत्र की वृद्धि करना है जहाँ विश्लेषण किये गये परीक्षणात्मक तथ्यों के आधार पर निर्णय लिये जाते हैं और सिद्धान्त बनाए जाते हैं।

नोट

1.5 सांख्यिकी के कार्य अथवा विस्तार क्षेत्र

आधुनिक समय में सांख्यिकी की लगातार बढ़ती हुई महत्ता का मुख्य कारण उसके द्वारा विज्ञान की विभिन्न शाखाओं के महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न होना है। किसी भी क्षेत्र में सांख्यिकी रीतियों द्वारा समंकों को एकत्रित करने तथा उनका विश्लेषण करके उचित निष्कर्ष निकालने वाले व्यक्ति को सांख्यिक (Statistician) कहते हैं। किसी भी सांख्यिक के तीन प्रमुख कर्तव्य होते हैं–

1. **समंकों का संग्रहण**–सर्वप्रथम सांख्यिक एक स्पष्ट योजना बनाकर प्राथमिक अथवा द्वितीयक ढंग से समंकों को संकलित करके उनका सम्पादन कर शुद्धता की जाँच करता है।
2. **विश्लेषण**–इसके अन्तर्गत वह समंकों को वर्गीकृत एवं उनका प्रस्तुतीकरण करता है। फिर वह समंकों की केन्द्रीय प्रवृत्ति ज्ञात करने, उनकी तुलना करने तथा उनमें सम्बन्ध स्थापित करने के लिए माध्य, अपकिरण, विषमता, सह-सम्बन्ध आदि अनेक सांख्यिकीय रीतियों का प्रयोग करता है।
3. **निर्वचन** (Interpretation)–समंकों का संकलन व विश्लेषण करने के बाद सांख्यिक उनसे तर्कपूर्ण और निष्पक्ष निष्कर्ष निकालता है।

वास्तव में समंकों के आधार पर उचित परिणाम निकालना ही संकलन एवं विश्लेषण का मूलभूत उद्देश्य है।

सांख्यिकी (Statistics) के प्रमुख कार्य निम्न हैं–

1. **तथ्यों को संख्यात्मक बनाना** (Statistics express facts in numbers)–सांख्यिकी का प्रथम कार्य तथ्यों को संख्यात्मक रूप देना होता है ताकि उनका विश्लेषण एवं निर्वचन हो सके।
2. **जटिल तथ्यों को सरल बनाना** (Simplification of complexities)–सामान्य व्यक्ति जटिल एवं बिखरे हुए समंकों को न तो सरलता से समझ सकता है और न ही कोई निष्कर्ष निकाल सकता है। सांख्यिकी के अन्तर्गत विभिन्न जटिल समंकों को वर्गीकरण, सारणीयन, चित्रमय व बिन्दुरेखीय प्रदर्शन आदि सांख्यिकीय रीतियों के द्वारा सरल बनाया जाता है। **डॉ. ए. एल. बाउले** के अनुसार, "एक जटिल समूह के सांख्यिकीय अनुमान का उद्देश्य एक ऐसा चित्र प्रस्तुत करना होता है जिससे मस्तिष्क साधारण प्रयत्न से ही समस्त समूह के महत्व को समझ सके।"
3. **तथ्यों की तुलना कर सम्बन्ध स्थापित करना** (Comparison and establishment of relationship)–तुलनात्मक अध्ययन सांख्यिकी का एक प्रमुख कार्य है। **डॉ. बाउले** के

नोट

अनुसार, "सांख्यिकी का मुख्य व्यावहारिक उपयोग सापेक्षिक महत्व, जिसे किसी व्यक्ति द्वारा गलत समझने की सम्भावना रहती है, प्रकट करना होता है। समंक प्राय: सदैव ही तुलनात्मक होते हैं।"

सह-सम्बन्ध और गुण-साहचर्य की रीतियों द्वारा विभिन्न घटनाओं जैसे मुद्रा की मात्रा और सामान्य मूल्य स्तर, वर्षा की मात्रा और कृषि उत्पादन आदि में पाये जाने वाले सम्बन्ध को स्पष्ट किया जा सकता है।

सांख्यिकी में विभिन्न तथ्यों की तुलना करने के लिए माध्य, सूचकांक, गुणांक आदि का प्रयोग किया जाता है।

4. **नीति-निर्धारण करना** (Formulation of policies)–सांख्यिकी सामाजिक, आर्थिक, व्यापारिक तथा अन्य क्षेत्रों की नीति-निर्धारण करने में सहायक होती है। संकलित किये गये समंकों का विश्लेषण करके ही देश की आयात व निर्यात नीतियाँ, मूल्य नीति, उत्पादन नीतियाँ, मद्य-निषेध नीति आदि का निर्धारण किया जाता है। इसके साथ ही वर्तमान मूल्य नीति, खाद्य नीति, मौद्रिक नीति, करारोपण, मुद्रा एवं बैंकिंग नीतियों के परिणामों का मूल्यांकन भी सांख्यिकी द्वारा किया जाता है। इस प्रकार नीति, निर्धारित करना एवं पहले से निर्धारित नीतियों के प्रभावों का मूल्यांकन करना सांख्यिकी का प्रमुख कार्य है।

5. **व्यक्तिगत ज्ञान एवं अनुभव में वृद्धि** (Statistics enlarges individual knowledge and experience)–**डॉ. बउले** के अनुसार, "सांख्यिकी का उचित कार्य वास्तव में व्यक्तिगत अनुभव में वृद्धि करना है।" सांख्यिकी की सहायता से मनुष्य अपनी सोचने-समझने की शक्ति एवं योग्यता को अधिक विकसित कर सकता है। इसके अध्ययन से विचारों को स्पष्टता एवं निश्चयात्मकता मिलती है। समंकों के विश्लेषण व निर्वचन से मनुष्य की तार्किक शक्ति में वृद्धि होती है और प्रत्येक समस्या के समाधान के लिए उचित दृष्टिकोण विकसित हो जाता है। सांख्यिकीय रीतियों के उचित प्रयोग के बिना मानव ज्ञान अपूर्ण और अपर्याप्त है। सांख्यिकी व्यक्ति की ज्ञान परिधि का विस्तार करने में सहायता करती है। **ह्विपिल** के अनुसार, "सांख्यिकी व्यक्ति के क्षितिज का विस्तार करने में सहायक होती है।" ("Statistics enables one to enlarge his horizon." –**Whipple**)

6. **पूर्वानुमान लगाना** (Forecasting for the future)–यह कार्य आन्तरगणन, बाह्यगणन तथा पूर्वानुमान आदि क्रियाओं द्वारा किया जाता है। आर्थिक विकास की सभी योजनाएँ भावी अनुमानों के आधार पर ही बनाई जाती हैं। डॉ. बाउले के अनुसार, "एक सांख्यिकीय अनुमान अच्छा हो या बुरा, ठीक हो या गलत, परन्तु प्राय: प्रत्येक दशा में वह एक आकस्मिक प्रेक्षक के अनुमान से अधिक ठीक होगा और उसकी प्रकृति केवल सांख्यिकीय रीतियों के द्वारा ही गलत सिद्ध की जा सकती है।"

   सांख्यिकी के अन्तर्गत विभिन्न रीतियों के द्वारा केवल वर्तमान तथ्यों का विश्लेषण ही नहीं किया जाता अपितु भविष्य के अनुमान भी लगाये जाते हैं।

7. **वैज्ञानिक नियमों की सत्यता की जाँच** (Statistics tests the law of other sciences) –सभी विज्ञानों के नियम अधिकांशत: निगमन प्रणाली (Deduction method) द्वारा विकसित किये गये हैं। सांख्यिकीय रीतियों के द्वारा पुराने नियमों के परीक्षण और नये नियमों के निर्माण में सहायता मिलती है। बहुत से नियम जो निगमन विधि द्वारा प्रतिपादित नहीं किये जा सके, उनको बनाने के लिए सांख्यिकी का सहारा लिया जाता है। समंकों के आधार

पर ही माल्थस जनसंख्या सिद्धान्त, द्रव्य के परिमाण सिद्धान्त में अनेक संशोधन किये गये हैं। सांख्यिकीय विश्लेषण के आधार पर निर्मित नियम बहुत ही स्थिर एवं सार्वभौमिक प्रकृति के होते हैं।

नोट

8. **तथ्यों को निश्चयात्मक रूप देना** (Statistics provides definiteness to the facts) –सांख्यिकीय रीतियों के प्रयोग के बिना निष्कर्ष तो निकाले जा सकते है, परन्तु उनका प्रत्येक कसौटी पर खरा उतरना असम्भव होता है। अर्थात् यदि किसी समस्या के समाधान या समस्या को यथार्थ रूप नहीं दिया जाता है तो उसमें अनिश्चितता बनी रहती है जबकि सांख्यिकी रीति द्वारा निकाले गये निष्कर्ष तुलनात्मक रूप से शुद्ध एवं सत्यता के निकट होते हैं।
9. **परिकल्पना और उसकी जाँच में सहायक** (Helps in formulating and testing hypothesis)–सांख्यिकीय रीतियाँ परिकल्पना करने उनकी जाँच करने एवं नये सिद्धान्त विकसित करने में सहायक होती हैं। उदाहरण के लिए–ब्याज-दरें कम करने से बाजार में पूँजी तरलता बढ़ेगी।
10. **विस्तार का आभास कराना**–सांख्यिकी की सहायता से किसी घटना की वास्तविक महत्ता का उचित आभास हो जाता है। समंकों के रूप में दिये विवरण अधिक स्पष्ट और प्रभावशाली होते हैं। 1961 से 1971 तक भारत की जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ी है परन्तु इससे समस्या की गम्भीरता का उचित आभास नहीं होता परन्तु यदि कहा जाए कि 21 व्यक्ति प्रति मिनट की दर से बढ़े हैं तो समस्या का आकार अधिक स्पष्ट हो जाएगा जो कि सांख्यिकीय रीतियों से सम्भव है।

1.6 सांख्यिकी का महत्त्व

प्राचीनकाल में सांख्यिकी को राज्य के अंकगणित के रूप में जाना जाता था क्योंकि उस समय यह केवल शासकीय कार्यों तक ही सीमित था। परन्तु सामाजिक विकास, सभ्यता विकास एवं आर्थिक जागरण के कारण इस विज्ञान का क्षेत्र अत्यधिक बढ़ गया है। अब सांख्यिकी विज्ञानों की विभिन्न समस्याओं को तार्किक विश्लेषण के द्वारा हल करने में सहायता देती है। **वालिस** एवं **रॉबर्ट्स** के अनुसार, "सांख्यिकी एक ऐसा साधन है जो प्रयोगसिद्ध अनुसन्धान के लगभग प्रत्येक क्षेत्र में उत्पन्न होने वाली समस्याओं का समाधान करने में प्रयोग किया जाता है।"

1. **शासन प्रबन्ध में महत्व** (Importance in Administration)–सांख्यिकी का उद्गम एवं विकास राज्य विज्ञान के रूप में हुआ था। राज्य की शासन व्यवस्था में सांख्यिकी के द्वारा राजकीय आय, व्यय जनसंख्या, सैन्य-शक्ति तथा भूमि-सम्बन्धी समंकों का संकलन किया जाता था। वर्तमान युग में राज्य की प्रत्येक नीति का निर्धारण सांख्यिकी के सहयोग से ही हो पाता है। वित्तमंत्री द्वारा बजट तैयार करते समय करारोपण में वृद्धि या कमी, आय-व्यय का पूर्वानुमान, प्रशासन, प्रतिरक्षा, स्वास्थ्य, शिक्षा आदि पर व्यय धनराशि एवं नई योजनाओं आदि का अध्ययन सांख्यिकी की सहायता से ही किया जाता है। नये कानून बनाने एवं पुरलोकानूनों में संशोधन करने के लिए भी सांख्यिकी की आवश्यकता पड़ती है। सरकार द्वारा नियुक्त विभिन्न समितियों तथा आयोगों की रिपोर्ट आवश्यक समंकों पर ही आध ारित होती है। युद्ध नीति, व्यूह रचना, अस्त्र-शस्त्र व अन्य साज-सामान की आवश्यकता, प्रशिक्षण, खरीदी हुई सामग्री के प्रतिदर्श निरीक्षण आदि की सफलता उपयुक्त समंकों पर निर्भर होती है।

नोट

2. **आर्थिक नियोजन में महत्व** (Importance in Economic Planning)–वर्तमान युग में प्रत्येक देश अपने विकास और अर्थिक प्रगति के लिए आर्थिक नियोजन करता है। देश की आर्थिक योजना को उपलब्ध साधनों, मुख्य समस्याओं और आवश्यकता से सम्बन्धित उचित सांख्यिकीय साम्रगी के आधार पर तैयार किया जाता है।

टिप्पेट के अनुसार, "नियोजन आज का व्यवस्थित क्रम है और समंकों के बिना नियोजन की कल्पना भी नहीं की जा सकती।" पर्याप्त एवं विश्वसनीय समंकों के आधार पर ही देश के योजना-निर्माता प्राकृतिक एवं मानवीय संसाध नों, पूँजी, आय आदि की जानकारी प्राप्त करते हैं। योजनाएँ लागू करने के पश्चात् उनकी प्रगति का मूल्यांकन भी सांख्यिकीय रीतियों द्वारा ही किया जाता है। समंकों के आधार पर ही देश यह जान पाता है कि किस क्षेत्र में विकास धीमी गति से या तीव्र गति से हो रहा है अर्थात् "समंकों के बिना आर्थिक नियोजन एक दिशासूचक यन्त्र रहित जहाज के समान है।" अत: समंकों के बिना आर्थिक योजनाओं के निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति असम्भव है। भारतीय आर्थिक नियोजन करने वाले योजना आयोग के अनुसार, "देश के आर्थिक विकास के लिए, विशेषकर नियोजन के उद्देश्यों की पूर्ति करने और नीति व प्रशासन सम्बन्धी निर्णय लेने के लिए निरन्तर अधिकाधिक मात्रा में उपयुक्त समंकों की आवश्यकता होती है।" इसी प्रकार यदि अपर्याप्त और अशुद्ध समंकों के आधार पर किया जाने वाला नियोजन, नियोजित अर्थव्यवस्था के न होने से भी बुरा है। भारतीय नियोजन के आधार समंकों में सुधार के लिए कई उपाय किये गये जिनमें विशेष रूप से निम्न उल्लेखनीय हैं–केन्द्रीय सांख्यिकीय संगठन (Central Statistical Organisation), राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण (National Sample Survey), स्थायी जनगणना संगठन आदि की स्थापना करना, समंक संकलन अधिनियम की व्यवस्था एवं जनसंख्या, राष्ट्रीय आय, उद्योग, कृषि आदि के समंकों को एकत्रित करने की विधियों में व्यापक सुधार करना। इस प्रकार राष्ट्रीय आयोग आर्थिक नियोजन में सांख्यिकी का व्यापक प्रयोग करता है जिसके बिना नियोजन असम्भव सा है।

3. **व्यवसाय एवं वाणिज्य में महत्व** (Importance in Business and Commerce)–व्यापार, उद्योग, उत्पादन एवं वाणिज्य के प्रत्येक क्षेत्र में सांख्यिकी का अत्यधिक महत्व है। एक कुशल व्यापारी या उत्पादक समंकों के आधार पर माँग के प्रति जागरूक रहता है और अपनी व्यापारिक नीतियों का निर्धारण करता है। वस्तु की माँग का पूर्वानुमान लगाने के लिए व्यापारी मौसम परिवर्तनों, व्यापार चक्रों जीवन-स्तर, रस्मो-रिवाज, ग्राहकों की रुचि, क्रय-शक्ति आदि के उपलब्ध समंकों को आधार बनाता है। माँग के अतिरिक्त कच्चे माल के क्रय, उत्पाद के विक्रय, यातायात लागत, विज्ञापन, वित्तीय साधन, मजदूरी, मूल्य निर्धारित नीतियों का निर्धारण भी समंकों के विश्लेषण द्वारा करता है। बॉडिंगटन के अनुसार, "एक सफल व्यापारी वही है जिसका अनुमान यथार्थता के अत्यधिक निकट होता है।" ("The successful businessman is the one whose estimate most closely approaches accuracy." **—A. L. Boddington**)

अनुमान के गलत साबित होने पर व्यापारी को वस्तु के स्टॉक एवं माँग में असन्तुलन होने के कारण या तो हानि होगी या उसका लाभ कम हो जाएगा। समंकों के उचित प्रयोग से व्यापारी अपनी भूतकालीन गलत नीतियों को सुधारकर भावी उचित नीतियों का निर्माण

करता है जिससे उसे अधिकाधिक लाभ हो। नये उद्योग के प्रवर्तन की विभिन्न समस्याओं के समाधान में भी समंक सहायक होते हैं।

नोट

प्रबन्ध लेखांकन एवं व्यवसायिक लेखाकर्म के क्षेत्र में भी सांख्यिकी और उसके समंकों का बहुत महत्व है। समंकों की सहायता से एक व्यवसायी वस्तु की प्रति इकाई लागत, कार्यक्षमता का सही मापन, अपव्ययों, आर्थिक मितव्ययिताओं एवं वस्तु या सेवा का मूल्य-निर्धारण करता है। इन्हीं समंकों के आधार पर व्यावसायिक खाते तैयार किये जाते हैं जिनके आधार पर व्यवसाय की भावी नीतियाँ तैयार की जाती हैं। इन्हीं समंकों के आधार पर बाजार अनुसन्धान, श्रमिकों की नियुक्ति व प्रशिक्षण, विक्रय व्यवस्था व नियन्त्रण तथा विनियोग नीति को विश्लेषित किया जाता है।

वाणिज्य के अन्य क्षेत्रों; जैसे–बैंकिंग, स्कन्ध विपणि (Stock Exchange), उपज विपणि (Produce Exchange) तथा बीमा व्यवसाय (Insurance) आदि में सांख्यिकी एवं समंकों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। बैंक अपनी नीतियों (ऋण नीति, साख नीति एवं विनियोग नीति) का निर्धारण व्यापार चक्रों, मुद्रा बाजार की स्थिति, केन्द्रीय बैंक की नीति एवं द्रव्य की मौसमी माँग आदि से सम्बन्धित समंकों के आधार पर करता है।

स्कन्ध विपणि एवं उपज विपणि का क्षेत्र भी समंकों पर ही आधारित है। सट्टेबाज व दलालों को भी अंशों (Shares) और वस्तुओं के पिछले मूल्य समंकों व माँग-पूर्ति की वर्तमान स्थिति के आधार पर पूर्वानुमान लगाने पड़ते हैं जो कि समंकों व सांख्यिकी द्वारा सम्भव एवं सरल है। विशेषत: वर्तमान युग में अग्रिम व्यापार (advance trading) करने वालों (वायदा व्यापार) के लिए समंकों का प्रयोग अपरिहार्य है। प्रो. ब्लेयर के अनुसार, "यदि समाचार-पत्रों, पत्रिकाओं, रेडियो, मीडिया और तार की रिपोर्टों से प्राप्त मूल्य समंक एक दिन के लिए हटा लिये जाये तो व्यावसायिक जगत् शक्तिहीन हो जाएगा। यदि वर्तमान युग से कुल उपलब्ध समंक संसार से एक वर्ष के लिए हटा दिये जायें तो इसका परिणाम होगा–आर्थिक अव्यवस्था एवं विनाश।"

बीमा व्यवसाय में भी प्रीमियम दरों का निर्धारण करते समय जीवन प्रत्याशा, जीवन सारणियाँ, प्रायिकता सिद्धान्त तथा जनसंख्या सम्बन्धी आँकड़ों का प्रयोग करना पड़ता है। सांख्यिकीय विश्लेषण द्वारा ही ये अनुमान लगाते जाते हैं कि निश्चित आयु पर औसत व्यक्ति की कितने समय तक जीने की आशा है। बीमा संस्थाओं में विशेष मूल्यांकन सांख्यिकीय रीतियों से किया जाता है। इसी प्रकार रेल, सड़क एवं वायु यातायात के क्षेत्र में भी समंकों का प्रयोग होता है। रेलवे की संचालन कुशलता का माप, किराये-भाड़े का निर्धारण और बजट का निर्माण सांख्यिकीय तथ्यों पर आधारित है।

अत: व्यावसायिक प्रबन्ध एवं प्रशासन में समंक अत्यन्त उपयोगी होते हैं। बड़ी-बड़ी व्यापारिक एवं औद्योगिक संस्थाओं में समंकों के संकलन, विश्लेषण और निर्वचन के लिए अलग सांख्यिकीय विभाग होता है जो प्रबन्धकों को उपयुक्त परामर्श देता रहता है।

4. **अर्थशास्त्र में महत्व** (Importance in Economic Field)–वर्तमान में अर्थशास्त्र सांख्यिकी के बिना अधूरा होता है। या-लुन चाऊ के अनुसार, "अर्थशास्त्री, आर्थिक समूहों जैसे सकल राष्ट्रीय उत्पाद, उपभोग, बचत, विनियोग, व्यय और मुद्रा के मूल्य में होने वाले परिवर्तनों के मापन के लिए समंकों पर निर्भर रहते हैं। वे आर्थिक सिद्धान्तों का सत्यापन

नोट

करने तथा परिकल्पनाओं की जाँच करने के लिए भी सांख्यिकीय विधि का ही प्रयोग करते हैं।" अर्थशास्त्र की किसी भी समस्या का समाधान सांख्यिकीय रीतियों के प्रयोग के बिना अत्यन्त कठिन है। अर्थशास्त्र के सभी क्षेत्रों के नियमों एवं सिद्धान्तों को सांख्यिकी के द्वारा ही विश्लेषित एवं निर्वचित किया जाता है।

अर्थशास्त्र के प्रथम क्षेत्र उपभोग के समंकों से विभिन्न व्यक्तियों के जीवन-स्तर विभिन्न मदों पर उनके व्यय, इच्छाओं की सापेक्षता एवं माँग की लोच आदि की उचित जानकारी मिलती है। द्वितीय क्षेत्र उत्पादन के समंकों से राष्ट्रीय सम्पत्ति की मात्रा, राष्ट्रीय लाभांश का अनुमान, पूँजी-निर्माण, उत्पादन नीतियों का निर्धारण एवं उसमें होने वाले परिवर्तनों एवं कारणों का पता चलता है।

तृतीय क्षेत्र विनिमय के समंकों से देश की व्यावसायिक प्रगति, आयात-निर्यात, भुगतान सन्तुलन, व्यापारिक ढाँचा एवं देश की मुद्रा की मात्रा में होने वाले परिवर्तनों के सम्बन्ध में उपयोगी सूचना मिलती है।

चतुर्थ क्षेत्र वितरण के समंकों की सहायता से राष्ट्रीय सम्पत्ति के वितरण का आधार राष्ट्रीय लाभांश का उत्पादन के विभिन्न साधनों में भाग, विभिन्न तबकों की आर्थिक स्थिति, प्रति व्यक्ति आय आदि का ज्ञान होता है।

सांख्यिकी की सार्वभौमिक उपयोगिता

सांख्यिकी एक ऐसा विज्ञान है जिसका प्रयोग दिनोंदिन जीवन एवं विज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में बढ़ता जा रहा है। समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, भौतिकी, रसायन व जीवन शास्त्र, शिक्षा, राज्य, मौसम, नक्षत्र विज्ञान, चिकित्साशास्त्र आदि सभी विज्ञानों में सांख्यिकीय विवेचन अति आवश्यक है। टिप्पेट के अनुसार, "सांख्यिकी प्रत्येक व्यक्ति को प्रभावित करती है और जीवन को अनेक बिन्दुओं पर स्पर्श करती है।" एडवर्ड केने के अनुसार, "आजकल सांख्यिकीय रीतियों का प्रयोग ज्ञान एवं अनुसन्धान की प्रत्येक शाखा, आरेखीय कलाओं से लेकर नक्षत्र भौतिकी तक और लगभग प्रत्येक प्रकार के व्यावहारिक उपयोग–संगीत रचना से लेकर प्रक्षेपणास्त्र निर्देशन तक में किया जाता है।" वर्तमान में सांख्यिकी का ज्ञान अत्यन्त उपयोगी ज्ञान है जो जीवन के प्रत्येक क्षण काम आता है। **डॉ. बाउले** के अनुसार, "सांख्यिकी का ज्ञान विदेशी भाषा या बीजगणित के समान है जो किसी भी समय, किसी भी परिस्थिति में उपयोगी सिद्ध हो सकता है।" अत: अन्त में यह कहा जा सकता है कि वर्तमान युग सांख्यिकी का युग है।

1.7 सांख्यिकी की सीमाएँ

आज सांख्यिकी एक महत्वपूर्ण विज्ञान माना जाता है परन्तु प्रत्येक विज्ञान शाखा के समान ही इसकी कुछ सीमाएँ होती हैं। यदि संकलित समंकों का विश्लेषण एवं निर्वचन करते समय इन सीमाओं का ध्यान न रखा जाए तो निकाले गये निष्कर्ष अनिश्चित एवं भ्रमात्मक हो सकते हैं। इन सीमाओं एवं भ्रमात्मक निष्कर्षों के कारण सांख्यिकी की आलोचनाएँ भी होती हैं परन्तु सीमाएँ प्रत्येक विज्ञान की होती हैं चाहे वह अर्थशास्त्र हो भौतिक या रसायनशास्त्र। सांख्यिकी की सीमाओं में रहते हुए यदि विश्लेषण एवं निर्वचन किया जाए तो सीमाओं के कारण उत्पन्न दोषों को समाप्त किया जा सकता है। **प्रो. न्यूजहोम** के अनुसार, "सांख्यिकी को अनुसन्धान का एक अत्यन्त मूल्यवान साधन समझना

चाहिए, परन्तु इसकी कुछ गम्भीर सीमाएँ हैं जिन्हें दूर किया जाना तो सम्भव नहीं है और इसलिए इन पर हमें सावधानी से विचार करना चाहिए।"

सांख्यिकी की निम्न सीमाएँ हैं–

नोट

1. **सांख्यिकी केवल संख्यात्मक तथ्यों का ही अध्ययन करती है, गुणात्मक तथ्यों का नहीं** (Statistics studies quantitative phenomena and not qualitative)–सांख्यिकी की प्रमुख सीमा यह है कि यह केवल संख्यात्मक रूप से व्यक्त किये गये तथ्यों या समस्याओं का विश्लेषण करता है गुणात्मक का नहीं। सांख्यिकी के अन्तर्गत संख्यात्मक रूप में वर्णित तथ्य; जैसे–आयु, ऊँचाई, उत्पादन, मूल्य, आय, जनसंख्या, बजट आदि का प्रत्यक्ष विश्लेषण किया जा सकता है परन्तु गुणात्मक रूप में व्यक्त तथ्य; जैसे–बौद्धिक स्तर, चरित्र, सुन्दरता, स्वास्थ्य, गरीबी, व्यवहार आदि का सांख्यिकीय विश्लेषण नहीं किया जा सकता है। इन समस्याओं का अध्ययन सांख्यिकी में परोक्ष रूप से किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, बौद्धिक स्तर का अनुमान परीक्षा में प्राप्त प्राप्तांकों के आधार पर, स्वास्थ्य सम्बन्धी जानकारी जन्मदर एवं मृत्युदर के विश्लेषण के द्वारा प्राप्त की जा सकती है।
2. **सांख्यिकी समूहों का अध्ययन करती है, व्यक्तिगत इकाइयों का नहीं** (Statistics deals with aggregates but not with individuals)–सांख्यिकी में किसी भी क्षेत्र की सामूहिक विशेषताओं का अध्ययन किया जाता है व्यक्तिगत इकाई का नहीं। यद्यपि अध्ययन करते समय व्यक्तिगत इकाइयों को ही माध्यम बनाया जाता है परन्तु निकाले गये निष्कर्ष एक औसत एवं समूह की प्रकृति दर्शाते हैं। उदाहरण के लिए, किसी देश की प्रति व्यक्ति आय सामूहिक विशेषताओं पर प्रकाश डालती है। यह समाज के अलग-अलग वर्गों; जैसे–अमीर, गरीब, भिखारी, करोड़पति आदि की व्यक्तिगत आय नहीं बताती है। प्रो. नीज बैंगर के अनुसार, "सांख्यिकी के निष्कर्ष समूह के सामूहिक व्यवहार का अनुमान लगाने में सहायक होते हैं उस समूह की व्यक्तिगत इकाइयों का नहीं।" उदाहरण के लिए, सांख्यिकी के द्वारा यह तो ज्ञात हो जाता है कि प्रति व्यक्ति चावल या गेहूँ की खपत एक दिन मे कितनी है परन्तु यह ज्ञात नहीं होता कि गरीबों में चावल या गेहूँ की कितनी कमी है।
3. **सांख्यिकीय रीति किसी समस्या के अध्ययन की एकमात्र रीति नहीं है** (Statistics is not only a single method used for study of any problem)–सामान्य जीवन में किसी भी समस्या के समाधान की अनेक रीतियाँ होती हैं जिनमें से सांख्यिकी एक रीति है। सांख्यिकीय विश्लेषण के द्वारा प्राप्त निष्कर्षों को तभी अन्तिम सत्य मानना चाहिए जब वे अन्य रीतियों; जैसे–प्रयोग, अन्तरावलोकन, निगमन तथा अन्य प्रमाणों द्वारा पूर्णतया जाँच लिये जाएँ। क्रॉक्सटन एवं काउडेन के अनुसार, "यह नहीं मान लेना चाहिए कि सांख्यिकीय रीति ही अनुसन्धान कार्य में प्रयोग की जाने वाली एकमात्र रीति है, न ही इस रीति को प्रत्येक प्रकार की समस्या का सर्वोत्तम हल समझना चाहिए।" लेकिन फिर भी सांख्यिकी एक उपयोगी शस्त्र है क्योंकि यथार्थता एवं शुद्धता के बहुत निकट होता है। डॉ. बाउले के अनुसार, "सांख्यिकीय माप किसी समस्या के समाधान के लिए उतना ही आवश्यक है जितना एक भवन-निर्माण के लिए यथार्थ माप।"
4. **सांख्यिकी के निष्कर्ष असत्य व भ्रमात्मक हो सकते हैं यदि उनका विश्लेषण बिना सन्दर्भ के किया जाए** (Statistical results may be misleading and ambiguous if

नोट

analysed without proper context of the problem)–सांख्यिकी के निष्कर्षों को समझने के लिए समस्या के हर पहलू से वाकिफ होना आवश्यक है अन्यथा वे भ्रामक हो सकते हैं। समस्या की प्रत्येक परिस्थिति एवं सन्दर्भ को जानने के पश्चात् निकाले गये निष्कर्ष ही वास्तविक रूप से सत्य होते हैं अन्यथा बिना समस्या को समझे निकाले गये निष्कर्ष वास्तविक दिखाई तो देते हैं परन्तु वास्तविक होते नहीं हैं। उदाहरण के लिए, किन्हीं दो उद्योगों के पिछले पाँच वर्ष का औसत लाभ समान है तो यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि दोनों ही उद्योग सामान्य व एक ही प्रकृति के हैं परन्तु यदि उनसे सम्बन्धित सभी समंकों (अर्थात् प्रत्येक वर्ष के लाभ समंक) का अध्ययन किया जाए तो यह निष्कर्ष निकाल सकता है कि एक उद्योग का लाभ बढ़ रहा है अर्थात् उन्नति की ओर अग्रसर है और दूसरे उद्योग का लाभ घट रहा है अर्थात् अवनति की ओर अग्रसर है। **डॉ. बाउले** के अनुसार, "जो विद्यार्थी समंकों का उपयोग करता है उसे अनुसन्धान के निष्कर्षों को प्रमाणित मानकर सन्तुष्ट नहीं हो जाना चाहिए, परन्तु उस विधि के समस्त अंगों का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।"

5. **सांख्यिकीय नियम केवल औसत रूप से और दीर्घकाल में ही सत्य होते हैं** (Statistical laws are true in the long run and on the average)–सांख्यिकी के नियम प्राकृतिक विज्ञान के नियमों की तरह पूर्ण सत्य नहीं होते हैं अर्थात् सभी परिस्थितियों में लागू नहीं होते हैं अर्थात् ये केवल दीर्घकाल में औसत रूप से सामूहिक रूप में ही खरे उतरते हैं। उदाहरण के लिए, भौतिक मे गुरुत्वीय नियम के अनुसार, ऊपर से गिराई गई वस्तु सदैव पृथ्वी पर ही आती है या रसायन में सोडियम के टुकड़े को पानी में डालने से आग लग जाती है या जीवशास्त्र में मादा एनाफिलीज मच्छर के काटे बिना मलेरिया नहीं हो सकता सभी परिस्थितियों में पूर्णरूप से सत्य हैं। परन्तु यदि सांख्यिकी के प्रायिकता या सम्भावना सिद्धान्त (Theory of Probability) इन नियमों की तरह दृढ़, पूर्ण और सत्य नहीं हैं। उदाहरण के लिए, यदि एक थैले में रखी काली, सफेद गेंदों को बाहर निकालने की सम्भावना आधी-आधी अर्थात् 50 प्रतिशत होती है यह तभी सत्य होगा जब एक से अधिक बार गेंद निकाली जाए। दस बार गेंद निकालने पर हो सकता है 7 बार काली गेंद एवं 3 बार सफेद गेंद आये जबकि सम्भावना 5.5 गेंदों की थी। गेंद निकालने की संख्या बढ़ाते जाने पर यह सम्भावना के निकट आता जाता है। अत: यह नियम किसी निश्चित एक दृढ़ आधार को प्रस्तुत नहीं करता है। अत: सांख्यिकीय नियम केवल दीर्घकाल में औसत रूप से ही सत्य होते हैं।

6. **समंकों में एकरूपता एवं सजातीयता होनी चाहिए** (Statistical data should be uniform and homogeneous)–शुद्ध एवं सत्य सांख्यिकीय निष्कर्ष प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि प्रयोग किये गये समंक एकरूप एवं सजातीय हों। अगर समंक विभिन्न तरीकों से एकत्रित किये गये भिन्न प्रकृति के हैं तो इन विजातीय समंकों से निकाले गये निष्कर्ष हमेशा भ्रमात्मक होंगे। उदाहरण के लिए, जनसंख्या एवं प्रचलित मुद्रा नीति से सम्बन्धित समंकों में कोई सह सम्बन्ध नहीं है। इसी प्रकार व्यक्ति की ऊँचाई एवं प्रति व्यक्ति आय के समंक भी विजातीय हैं और इनमें सम्बन्ध स्थापित करना पूर्ण रूप से भ्रामक होगा।

नोट

7. **सांख्यिकी का प्रयोग केवल विशेषज्ञ ही कर सकते हैं** (Statistics can be used only by a perfect statistician)–यह सांख्यिकी की सबसे प्रमुख सीमा है जिसके अनुसार सांख्यिकी का प्रयोग केवल वही व्यक्ति कर सकता है जो सांख्यिकीय रीतियों का विशेष ज्ञान रखता हो। अर्थात् समंकों का उचित रूप से संकलन, विश्लेषण एवं निर्वचन वही व्यक्ति कर सकता है जो सांख्यिकी का पूर्ण ज्ञाता एवं सांख्यिकीय रीतियों के प्रयोग मे दक्ष हो। अयोग्य या अनभिज्ञ व्यक्ति संकलित समंकों से गलत एवं भ्रामक निष्कर्ष निकालेंगे। ये निष्कर्ष असत्य एवं अशुद्धियों से परिपूर्ण होंगे। यूल और केन्डाल के अनुसार, "अयोग्य व्यक्तियों के हाथ में सांख्यिकीय रीतियाँ अत्यन्त खतरनाक औजार हैं।" इसी प्रकार कहा जाता है कि "Statistics, like medicine in the hands of quacks are liable of easily being misused by ignorant or the inexperts." अर्थात् जैसे एक अयोग्य चिकित्सक के हाथ में दवा जहर का काम करती है, उसी प्रकार अयोग्य व्यक्ति समंकों का दुरुपयोग करके उनसे गलत परिणाम निकाल सकता है। **डॉ. बाउले** के अनुसार, "समंक केवल एक आवश्यक किन्तु अपूर्ण औजार प्रदान करते हैं जो उन लोगों के हाथों में खतरनाक हैं जो उनकी प्रयोग विधि और कमियों से परिचित नहीं हैं।" अन्त में यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सांख्यिकीय रीतियों का प्रयोग करते समय सीमाओं का ध्यान रखना चाहिए, यदि इन सीमाओं की उपेक्षा की जायेगी तो प्राप्त निष्कर्ष भ्रामक एवं असत्य होंगे जिसके कारण सांख्यिकी को सन्देह की दृष्टि से देखा जाता है।

1.8 शैक्षिक अनुसंधान का अर्थ एवं परिभाषा

शिक्षा के अनेक संबंधित क्षेत्र एवं विषय हैं, जैसे– शिक्षा का इतिहास, शिक्षा का समाजशास्त्र, शिक्षा का मनोविज्ञान, शिक्षा-दर्शन, शिक्षण-विधियाँ, शिक्षा-तकनीकी, अध्यापक एवं छात्र, मूल्यांकन, मार्गदर्शन, शिक्षा के आर्थिक आधार, शिक्षा-प्रबंधन, शिक्षा की मूलभूत समस्याएँ आदि। इन सभी क्षेत्रों में बदलते हुए परिवेश एवं परिवर्तित परिस्थितियों के अनुकूल वर्तमान ज्ञान के सत्यापन एवं वैधता-परीक्षण की निरंतर आवश्यकता बनी रहती है। यह कार्य शिक्षा-अनुसंधान के द्वारा ही सम्पन्न होता है। इस प्रकार शिक्षा-अनुसंधान शिक्षा के क्षेत्र में वर्तमान एवं पूर्वस्थित ज्ञान का परीक्षण एवं सत्यापन तथा नये ज्ञान का विकास करने की एक विधा, एक प्रक्रिया है। शिक्षा के प्रत्येक क्षेत्र में अनेक प्रकार की समस्याएँ समय-समय पर सामने आती हैं। उनके समाधान खोजना भी आवश्यक होता है। यह कार्य भी शिक्षा-अनुसंधान के द्वारा ही संभव होता है। इस दृष्टिकोण से शिक्षा-अनुसंधान शिक्षा की समस्याओं के समाधान प्राप्त करने की एक विशिष्ट प्रक्रिया है। शिक्षा-संबंधी अनेक अनुत्तरित प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने का माध्यम भी शिक्षा अनुसंधान है। कितने ही विशेषज्ञों ने शिक्षा-अनुसंधान की परिभाषाएँ प्रस्तुत की हैं।

भिटनी (1954) के अनुसार, शिक्षा-अनुसंधान शिक्षा-क्षेत्र की समस्याओं के समाधान खोजने का प्रयास करता है तथा इस कार्य की पूर्ति हेतु उसमें वैज्ञानिक, दार्शनिक एवं समालोचनात्मक कल्पना-प्रधान चिंतन-विधियों का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार वैज्ञानिक अनुसंधान एवं पद्धतियों को शिक्षा-क्षेत्र की समस्याओं के समाधान के लिए लागू करना शैक्षिक अनुसंधान कहलाता है।

कौरनेल का मानना है कि विद्यालय के बालकों, विद्यालयों, सामाजिक ढाँचे तथा सीखने वालों के लक्षणों एवं इनके बीच होने वाली अन्तर्क्रिया के विषय में क्रमबद्ध रूप से सूचनाएँ एकत्र करना शिक्षा-अनुसंधान है। यूनेस्को के एक प्रकाशन के अनुसार, शिक्षा-अनुसंधान से तात्पर्य है उन सब

प्रयासों से जो राज्य अथवा व्यक्ति अथवा संस्थाओं द्वारा किए जाते हैं तथा जिनका उद्देश्य शैक्षिक विधियों एवं शैक्षिक कार्यों में सुधार लाना होता है।

नोट

1.9 शिक्षा अनुसंधान की आवश्यकता

शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है। उसका मूलभूत उद्देश्य व्यक्ति में ऐसे परिवर्तन लाना होता है, जो सामाजिक विकास एवं व्यक्ति के जीवन को उन्नतशील बनाने के दृष्टिकोण से अनिवार्य होते हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति मुख्य रूप से शिक्षा की प्रक्रिया पर निर्भर करती है। यदि शिक्षा की प्रक्रिया सशक्त एवं प्रभावशाली हो तो व्यक्ति में उसके द्वारा उपरोक्त वांछनीय परिवर्तन लाना सरल एवं संभव होगा अन्यथा नहीं। अत: शिक्षा की प्रमुख समस्या है कि उसकी प्रक्रिया को सुदृढ़ प्रभावशाली एवं सशक्त कैसे बनाया जाए। इस समस्या के समाधान हेतु अनुसंधान आवश्यक है।

शिक्षा की प्रक्रिया एक बहुतत्वीय प्रक्रिया है। उसके अनेक आधारभूत तत्व हैं। सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियाँ, गृह-परिवेश, विद्यालय का वातावरण एवं उसकी अनेक विशेषताएँ, शिक्षण विधियाँ, पाठ्य-सामग्री, शिक्षण की सहायक सामग्री, अध्यापक एवं उसकी अनेक विशेषताएँ, विद्यार्थी एवं उसकी अनेक विशेषताएँ, अधिगम-प्रक्रिया आदि अनेक चर हैं, जो शिक्षा की प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। इन सभी की अनेक विशेषताएँ ऐसी हो सकती हैं, जिनके विषय में अभी तक किसी को कोई जानकारी नहीं है। उनकी खोज अनुसंधान के माध्यम से ही संभव है। साथ ही जिन चरों की खोज की जा चुकी है, उनके विषय में यह जानना एवं निश्चित करना आवश्यक है कि शिक्षा की प्रक्रिया को सुदृढ़ बनाने में प्रत्येक कितना महत्त्वपूर्ण है तथा उसका प्रक्रिया में समावेश किस प्रकार किया जाना चाहिए, उसके प्रयोग को किस प्रकार अधिक प्रभावशाली बनाया जा सकता है। इस दृष्टिकोण से शिक्षा-अनुसंधान का विशेष महत्त्व है, क्योंकि उसके द्वारा ही उपरोक्त समस्याओं का समाधान संभव हो सकता है।

सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियाँ शिक्षा के प्रसार, उसकी गुणवत्ता, उसके परिणामों एवं उसकी प्रक्रिया को प्रभावित करती हैं। अत: इनके संदर्भ में शिक्षा की प्रक्रिया एवं उसकी व्यवस्था का अध्ययन किया जाना भी अत्यन्त आवश्यक है। किस प्रकार की परिस्थितियाँ किस प्रकार शिक्षा को प्रभावित करती हैं, यह अनुसंधान द्वारा ही निर्धारित किया जा सकता है। अत: इस दृष्टिकोण से शिक्षा-अनुसंधान का अपना महत्त्व है।

विद्यार्थियों के व्यक्तित्व की विशेषताएँ भी शिक्षा की प्रक्रिया को प्रभावित करती हैं। अनेक ऐसी विशेषताओं के प्रभाव का अध्ययन किया गया है, परन्तु परिणाम असंदिग्ध एवं एक से प्राप्त नहीं हुए हैं। कुछ विशेषताओं का अध्ययन तो न के बराबर ही है। अत: इस क्षेत्र में भी अनुसंधान की बहुत आवश्यकता है। इन अध्ययनों को अधिक सुसंगठित एवं वैध विधियों द्वारा सम्पन्न किए जाने की आवश्यकता है।

पिछले कुछ वर्षों में बहुत-सी नई-नई शिक्षण-विधियों का निर्माण किया गया है। इनकी उपयोगिता एवं प्रभाविकता का गहन स्तर पर अध्ययन करने की आवश्यकता है। साथ ही और भी विशिष्ट विधियों की खोज की जानी चाहिए। इस क्षेत्र में अनुसंधान महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। गत वर्ष में बहुत से शिक्षण-प्रतिमानों (models to teaching) का निर्माण किया गया है परन्तु, इनका पर्याप्त परीक्षण नहीं हो पाया है। शिक्षा-अनुसंधान द्वारा इनके परीक्षण की आवश्यकता है। इसी प्रकार अभिक्रमित अधिगम (programmed learning), सूक्ष्म-शिक्षण (micro-teaching), सिमुलेटिक शिक्षण की उपयोगिता का अध्ययन भी आवश्यक है।

नोट

शिक्षक व्यक्तित्व की विशेषताओं, उसके ज्ञान, उसके व्यवहार का विद्यार्थियों के विकास पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है, परन्तु ये कौन-सी विशेषताएँ हैं, कैसे अपना प्रभाव डालती हैं, किस प्रकार का प्रभाव डालती हैं आदि ऐसे प्रश्न हैं, जो अभी तक अनुत्तरित हैं। शिक्षा-अनुसंधान द्वारा इनके निश्चित उत्तर प्राप्त करना आवश्यक है। इस दृष्टिकोण से शिक्षा में अनुसंधान की बहुत आवश्यकता प्रतीत होती है।

प्रत्येक व्यक्ति अपने परिवेश की परिस्थितियों से प्रभावित होता है। विद्यार्थी निरंतर गृह-परिवेश एवं विद्यालय परिवेश के बीच विचरता है। गृह-परिवेश एवं विद्यालय-परिवेश को कौन-सी परिस्थितियाँ एवं विशेषताएँ, उसके अधिगम एवं विकास को किस प्रकार प्रभावित करती हैं, शिक्षा-अनुसंधान द्वारा इसका निर्धारण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस क्षेत्र में शिक्षा-अनुसंधान की बहुत आवश्यकता है।

शिक्षा की प्रक्रिया के दायरे से हटकर अन्य संदर्भों में भी शिक्षा-अनुसंधान की बहुत अधिक आवश्यकता प्रतीत होती है। शिक्षा-तंत्र आत्मनिर्भर एवं स्वतंत्र नहीं है, उसकी व्यवस्था एवं गतिविधियों पर समाज के कई दूसरे तंत्रों (systems) का प्रभाव पड़ता है। राजनीति, सामाजिक-व्यवस्था, अर्थव्यस्था, तकनीकी विकास, धर्म, जाति आदि अनेक तत्व शिक्षा को प्रभावित करते हैं। शिक्षा तथा इन सभी के बीच निरंतर अन्तर्क्रिया होती रहती है। अत: यह जानना भी आवश्यक है कि ये सब किस प्रकार किसी देश की शिक्षा व्यवस्था को प्रभावित करते हैं। शिक्षा भी इन तंत्रों को प्रभावित करती है। अत: यह जानना भी महत्त्वपूर्ण है कि शिक्षा इन्हें कहाँ तक और किस प्रकार प्रभावित करती है। इस क्षेत्र में भी शिक्षा-अनुसंधान की आवश्यकता है। इस दृष्टिकोण से भी शिक्षा-अनुसंधान का विशेष महत्त्व है।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से भी शिक्षा का अध्ययन किया जाना महत्त्वपूर्ण है। यह मानवीय जिज्ञासा एवं उसकी रुचि का विषय है। विभिन्न कालों में शिक्षा का स्वरूप क्या रहा है, किन परिस्थितियों ने उसे वह रूप दिया है, आज की परिस्थितियों में उसकी क्या प्रासंगिकता है आदि स्वयं में महत्त्वपूर्ण हैं। इन प्रश्नों के उत्तर शिक्षा-संबंधी उपलब्ध ज्ञान की सीमाओं का विस्तार कर सकते हैं तथा मानवीय जिज्ञासा को शांत करते हैं। अत: इस क्षेत्र में भी शिक्षा- अनुसंधान की आवश्यकता है। इस दृष्टिकोण से भी शिक्षा-अनुसंधान का महत्त्व है।

शैक्षिक नियोजन के दृष्टिकोण से भी शैक्षिक अनुसंधान का बहुत महत्त्व है। संतोषजनक शैक्षिक नियोजन एवं उसके मूलभूत आधार निर्धारित करने के लिए अनुसंधान आवश्यक है।

साथ ही समाज के लोगों, उनकी संस्कृति, उनकी पारस्परिक समानताओं-असमानताओं की जानकारी भी आवश्यक है। यह भी आवश्यक है कि समाज के संगठनों, उनके प्रभावी नियंत्रणों, उनकी आवश्यकताओं, आकांक्षाओं एवं समस्याओं की भी अच्छी जानकारी हो। यह जानकारी प्राप्त करने का माध्यम शैक्षिक अनुसंधान ही हो सकता है। अत: उसका इस दृष्टिकोण से भी बहुत महत्त्व है। इस जानकारी के बिना शैक्षिक नियोजन कभी भी सार्थक एवं यथार्थता से जुड़ा नहीं हो सकता। कई बार ऐसा होता है कि बिना आधारभूत जानकारी के शैक्षिक योजनाएँ बना ली जाती हैं तथा बिना अच्छी तरह विचार किए उन्हें क्रियान्वित कर दिया जाता है और बाद में पता लगता है कि वे समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप न होने के कारण न तो लोगों के हित में हैं और न समाज उन्हें स्वीकार कर पाया है। तब उन पर खर्च किया गया धन एवं जनशक्ति व्यर्थ चले जाते हैं। धन एवं जनशक्ति के दुरुपयोग से बहुत हद तक बचा जा सकता है, यदि शैक्षिक अनुसंधान द्वारा आधारभूत जानकारी प्राप्त करके उसके आधार पर योजनाएँ तैयार की जाएँ।

नोट

शैक्षिक योजनाओं को सफलतापूर्वक क्रियान्वित करने के लिए ऐसे नेतृत्व की आवश्यकता होती है, जो प्रभावशाली हो। नेतृत्व प्रभावशाली तभी हो सकता है, जब उसे यह जानकारी हो कि किस प्रकार के सुधारों की आवश्यकता है, किस प्रकार की समस्याओं से शिक्षा-जगत के लोग जूझ रहे हैं, शिक्षा की प्रगति में कौन तत्व बाधक हैं, शिक्षा-क्षेत्र के किस कोने में क्या घट रहा है, शिक्षा-जगत के विभिन्न संगठन किस दिशा में जा रहे हैं आदि। शिक्षा-अनुसंधान यह सब जानकारी जुटाकर नेतृत्व को सशक्त एवं प्रभावशाली बना सकता है तथा शिक्षा-जगत की विसंगतियों को दूर करने की सामर्थ्य उसे प्रदान कर सकता है।

प्राय: सभी समाज रूढ़ियों, निर्मूल धारणाओं, अनेक प्रकार के पूर्वाग्रहों एवं दकियानूसी विचारों, अंधविश्वासों तथा घिसी-पिटी मान्यताओं से ग्रसित रहते हैं। देश एवं समाज की उन्नति में ये बाधक होते हैं। शैक्षिक अनुसंधान उन्हें प्रकाश में लाने का प्रयास कर सकता है तथा उन कड़ियों को खोजकर समाज के समक्ष प्रस्तुत कर सकता है, जिनसे ये अंधविश्वास जुड़े होते हैं। शिक्षा के माध्यम से इन्हें किस प्रकार दूर किया जा सकता है, ये सुझाव भी शैक्षिक अनुसंधान के द्वारा उपलब्ध हो सकते हैं। कैसे सामाजिक जागरूकता बढ़े, लोग अंधकार से प्रकाश में आएँ तथा उनमें सामाजिक जीवन की अच्छी समझ का विकास हो, समाज के विभिन्न वर्गों के बीच एकजुटता एवं विचार-साम्यता का विकास हो, इन सब लक्ष्यों तक पहुँचने के उपाय, विधियाँ एवं योजनाएँ शैक्षिक अनुसंधान ही सुझा सकता है।

शिक्षा के क्षेत्र में अनुसंधान का सूत्रपात 1950 के दशक में हुआ, ऐसा माना जाता है। शिक्षा के क्षेत्र में प्रथम पी. एच.डी. उपाधि 1943 में बम्बई विश्वविद्यालय द्वारा प्रदान की गई थी। उसके पश्चात् अनुसंधान के क्षेत्र का विस्तार होता रहा। सन् 1943-1988 के बीच जो प्रगति इस क्षेत्र में हुई उसका विस्तृत विवरण चार शैक्षिक अनुसंधान सर्वेक्षणों (Surveys of Research in Education) में मिलता है, जो क्रमश: 1974, 1979, 1987 तथा 1991 में प्रकाशित हुये थे। प्रथम सर्वेक्षण जो 1974 में छपा था, में उन अध्ययनों का वर्णन है, जो 1972 तक सम्पन्न हुये थे। दूसरे सर्वेक्षण (1979) में उन अध्ययनों का विवरण है, जो 1972 से 1978 के बीच पूरे हुये। तीसरे सर्वेक्षण (1987) में उन अध्ययनों का वर्णन है, जो 1978 से 1983 के बीच किये गये थे। चतुर्थ सर्वेक्षण (1991) में 1988 तक सम्पन्न हुए अध्ययनों का उल्लेख किया गया है। प्रथम सर्वेक्षण में 462 पी.एच.डी. तथा 269 प्रोजेक्ट स्तर के अध्ययनों का विवरण है। द्वितीय सर्वेक्षण में 839 अनुसंधानों का वर्णन है, जो शिक्षा के 17 क्षेत्रों में किए गए थे। ये क्षेत्र हैं : तुलनात्मक शिक्षा, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि, पाठ्य-पुस्तकें, शैक्षिक उपलब्धि के कारक, शिक्षा-तकनीकी, शैक्षिक प्रशासन, शैक्षिक अर्थशास्त्र, शिक्षा मनोविज्ञान, शिक्षा-दर्शन, शिक्षा-समाजशास्त्र, मार्गदर्शन एवं मंत्रणा, शैक्षिक मूल्यांकन, मापन एवं परीक्षाएँ, अध्यापक प्रशिक्षण, शिक्षण एवं शिक्षा का इतिहास एवं उसकी समस्याएँ। तृतीय सर्वेक्षण (1987) ने 1940 से 1983 के बीच हुए अनुसंधानों का दशकवार ब्यौरा प्रस्तुत किया है। पी.एच. डी. स्तर के अध्ययनों का ब्यौरा इस प्रकार है–

तालिका 1.1. दशकवार पी.एच.डी. अध्ययन

वर्ष	संख्या
1941-1950	10
1951-1960	63
1961-1970	234

1971–1980	850
1981–1983	266
कुल	1423

नोट

इसी प्रकार पी.एच.डी. के अतिरिक्त जो अनुसंधान इन दशकों में हुए उनका ब्यौरा इस प्रकार है–

तालिका 1.2. दशकवार अन्य अध्ययन

वर्ष	संख्या
1941–1950	5
1951–1960	56
1961–1970	250
1971–1980	556
1981–1983	150
कुल	1017

कुल 19 क्षेत्रों में ये अध्ययन सम्पन्न हुए। द्वितीय सर्वेक्षण में कुल 17 क्षेत्र थे। इनमें भाषा शिक्षा तथा अनौपचारिक शिक्षा दो विषय और जुड़ गए।

चतुर्थ सर्वेक्षण (1991) में कुल 4703 अनुसंधानों का उल्लेख है जो 29 क्षेत्रों में बँटे हुए हैं। इनमें से 3289 पी.एच.डी. स्तर के तथा 1414 अन्य प्रोजेक्ट स्तर के अध्ययन हैं। इन 3289 पी.एच.डी. अनुसंधानों में से 2272 शिक्षा विभागों में तथा 1017 अन्य विभागों जैसे मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, दर्शनशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि विभागों में सम्पन्न हुए।

इस विवरण से यह स्पष्ट होता है कि शिक्षा के अनेक क्षेत्रों में अनुसंधान को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है। यह भी कहा जा सकता है कि संख्यात्मक दृष्टिकोण से शिक्षा के क्षेत्र में अनुसंधान का बहुत द्रुतगति से विकास हुआ है। कुछ शिक्षाशास्त्री इसे विस्फोटक वृद्धि भी मानते हैं। उनका मानना है कि शिक्षा के क्षेत्र में थोक में (mass production) पी.एच.डी. तैयार किए जा रहे हैं। चतुर्थ सर्वेक्षण में इस वृद्धि की गति (trend) को इस प्रकार व्यक्त किया है : सन् 1940 के दशक में प्रतिवर्ष एक, 1950 के दशक में प्रति 73 दिन पर एक, 1960 के दशक में प्रति 16 दिन पर एक, 1970 के दशक में प्रति 4½ दिन पर एक, 1980 के दशक में प्रति 3 दिन पर एक पी.

एच.डी. की उपाधि प्रदान की गई। यदि इसमें पी.एच.डी. स्तर के अतिरिक्त अन्य अनुसंधानों को भी सम्मिलित कर लिया जाए तो चतुर्थ सर्वेक्षण के अनुसार प्रति 36 घंटे एक अनुसंधान रिपोर्ट प्राप्त होती है। आगे यह भी कहा गया है कि यदि यही गति बनी रही तो भविष्य में प्रतिदिन एक अनुसंधान सम्पन्न होगा।

1.10 शैक्षिक अनुसंधान का क्षेत्र

शिक्षा के क्षेत्र में किस प्रकार के अनुसंधानों को प्राथमिकता दी जाए, यह प्रश्न भी दो दशकों से बराबर उठाया जा रहा है। समय-समय पर इस संबंध में संस्तुतियाँ भी की जाती रही हैं, परन्तु शोध कर्ताओं ने इसे कभी गम्भीरता से नहीं लिया। इसका एक कारण तो यह रहा है कि प्राथमिकता का आधार क्या हो। इस संबंध में कोई निश्चित मत नहीं बन सका। तृतीय अनुसंधान सर्वेक्षण (1987)

के अन्तिम अध्याय में डॉ. शिव के. मित्रा ने सुझाव दिया है कि उन समस्याओं को अनुसंधान हेतु प्राथमिकता दी जानी चाहिए, जिनकी राष्ट्रीय शिक्षा-नीतियों में उठाई गई समस्याओं के समाधान उपलब्ध कराने हेतु तत्काल आवश्यकता है। इससे पूर्व भी 1975 में एन.सी.ई.आर.टी. के एक प्रकाशन

नोट

"एजुकेशनल रिसर्च एण्ड इन्नोवेशन्स" में निम्नलिखित समस्याओं को शिक्षा-अनुसंधान की प्राथमिकता सूची में रखा गया था–

1. समाज के गरीब वर्ग के बालकों की शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति के समाधान खोजना।
2. अन्तर्विषयी अनुसंधान (interdisciplinary research)।
3. प्रतिभाओं की खोज एवं उनके विकास से संबंधित समस्याएँ।
4. चौदह वर्ष तक के बालकों की अनिवार्य एवं नि:शुल्क शिक्षा जिसका भारतीय संविधान की धारा 45 में प्रावधान है, से संबंधित समस्याओं का अध्ययन।
5. अनुसूचित जातियों एवं जन-जातियों के बालकों की शिक्षा से संबंधित समस्याओं का अध्ययन।

कुछ अन्य शिक्षा-शास्त्रियों ने भी इस संबंध में विचार व्यक्त किए हैं। उन सबको ध्यान में रखते हुए शिक्षा के निम्नलिखित क्षेत्रों में उपरोक्त के अतिरिक्त प्राथमिकता के आधार पर अनुसंधान की आवश्यकता प्रतीत होती है–

1. छोटे बालकों की देखरेख एवं उनकी शिक्षा,
2. अनौपचारिक शिक्षा,
3. शिक्षा का व्यावसायीकरण,
4. पाठ्यक्रम संशोधन,
5. जीवन-मूल्यों की शिक्षा,
6. शिक्षा में क्षेत्रीय असन्तुलन,
7. शिक्षा एवं सामाजिक परिवर्तन,
8. शिक्षा-प्रशासन,
9. शिक्षा में नेतृत्व,
10. शिक्षा-संस्थाओं के कार्यक्रमों एवं उनकी प्रभाविकता का अध्ययन,
11. पूर्व-प्राथमिक शिक्षा का पाठ्यक्रम एवं शिक्षण विधियाँ,
12. शिक्षा संस्थाओं के वातावरण का अध्ययन,
13. अध्यापक प्रशिक्षण,
14. तुलनात्मक शिक्षा,
15. नैतिक शिक्षा,
16. शैक्षिक अर्थशास्त्र,
17. शिक्षा एवं विधि शास्त्र,
18. शिक्षा एवं राजनीति।

उपरोक्त क्षेत्र अति-विस्तृत एवं व्यापक हैं। प्रत्येक क्षेत्र में अनेक समस्याएँ अध्ययन हेतु उपलब्ध हो सकती हैं। इन क्षेत्रों में अध्ययन बहुत कम हुए हैं। इस दृष्टिकोण से ही इनको दर्शाया गया है। विशिष्ट समस्याओं की सूची देना संभव नहीं है।

नोट

1.11 अनुसंधान की विशिष्ट भावी आवश्यकताएँ

शिक्षा एवं सामाजिक परिवर्तन के बीच अटूट संबंध है। मानव-जीवन एवं उसके परिवेश से संबंधित प्रत्येक परिप्रेक्ष्य कहीं न कहीं शिक्षा को छूता है। अत: इस क्षेत्र से संबंधित समस्याओं का अध्ययन भी आवश्यक है। उनमें से बहुतों का अध्ययन विदेशों में किया भी जा चुका है। इन अध्ययनों के आधार पर बहुत से सिद्धांतों का प्रतिपादन भी किया गया है। ये सिद्धांत अनेक तथ्यों, घटनाओं, समस्याओं एवं विसंगतियों की व्याख्या भी करते हैं। तो भी इन सिद्धांतों की व्यावहारिक उपयोगिता अधिक नहीं है। इसका एक कारण तो शिक्षा-विज्ञान के विषय-क्षेत्र का प्रातीतिक (Subjective) होना है। अत: इस क्षेत्र में जो अनुसंधान हुए हैं, उनके परिणामों एवं तदाधारित सिद्धांतों की व्यापकता (generality) का स्तर बहुत ऊँचा उठ पाया है अर्थात् उनके आधार पर घटनाओं के बहुत बड़े समूह अथवा बहुत अधिक शैक्षिक परिस्थितियों की व्याख्या नहीं की जा सकती। कुछ विशिष्ट प्रकार के परिप्रेक्ष्यों का ही उनके आधार पर विश्लेषण किया जा सकता है, परन्तु आवश्यकता अधिक व्यापक सिद्धांतों की है। अत: भविष्य में ऐसे अनुसंधानों की आवश्यकता है, जो अधिक व्यापक हों तथा जिनके आधार पर अधिक से अधिक परिप्रेक्ष्यों एवं समस्याओं को समझना संभव हो।

इस परिप्रेक्ष्य से संबंधित जो सिद्धांत (educational theories) उपलब्ध हैं, वे अधिकांशत: विदेशों में किए गए अनुसंधानों के आधार पर विकसित हुए हैं, परन्तु प्रत्येक समाज की अपनी सामाजिक यथार्थता (social reality) होती है। अत: यह आवश्यक नहीं है कि जिन सिद्धांतों का विकास दूसरे देशों में हुआ हो, वे अपने देश की सामाजिक यथार्थता के भी अनुरूप हों।

1.12 समाजशास्त्र की अध्ययन पद्धतियाँ

जहाँ तक समाजशास्त्र की अध्ययन पद्धतियों का प्रश्न है ऐसा कहा जाता है कि समाजशास्त्र की पद्धतियाँ अधिक प्रामाणिक नहीं हैं यद्यपि इनकी संख्या अत्यधिक है। संभवतया इसीलिये फ्रांसीसी गणितज्ञ हेनरी पॉयनकेयर (Poincare) ने एक बार समाजशास्त्र को सबसे अधिक पद्धतियों एवं सबसे कम परिणामों वाला विज्ञान कहा था। श्री पॉयनकेयर का ऐसा कहना बहुत बड़ा दावा है। श्री **बोटोमोर** ने लिखा है, "पॉयनकेयर की उक्ति में सच्चाई यह है कि समाजशास्त्र की उचित पद्धतियों के बारे में बहुत विवाद रहा है और प्रत्येक समाजशास्त्रीय सिद्धांतकार का (प्रत्येक अध्यात्मवादी की तरह) झुकाव विषय के प्रति नयी पद्धति को प्रस्तावित करने का रहा है।" **श्री बोटोमोर** का ऐसा लिखने का अभिप्राय यही है कि समाज का अध्ययन अधिक जटिल है और प्रकृति के अध्ययन के समान नहीं है।

(A) परिमाणात्मक पद्धतियाँ (Quantitative Methods)–ये पद्धतियाँ मूर्त तथ्यों को संख्यात्मक आधार पर स्पष्ट करती हैं।

1. **सामाजिक सर्वेक्षण पद्धति या विधि** (Social Survey Method)–इस विधि का वैज्ञानिक प्रयोग सबसे पहले लीप्ले (Leplay) महोदय ने किया था। अर्थ–श्री मार्क एब्राम्स (Mark Abrams) का कहना है, "सामाजिक सर्वेक्षण एक ऐसी प्रक्रिया है

जिसके द्वारा सामाजिक संगठन और सामाजिक क्रिया से संबंधित संख्यात्मक तथ्य एकत्र किए जाते हैं।"

नोट

समाजशास्त्र की अध्ययन पद्धतियाँ

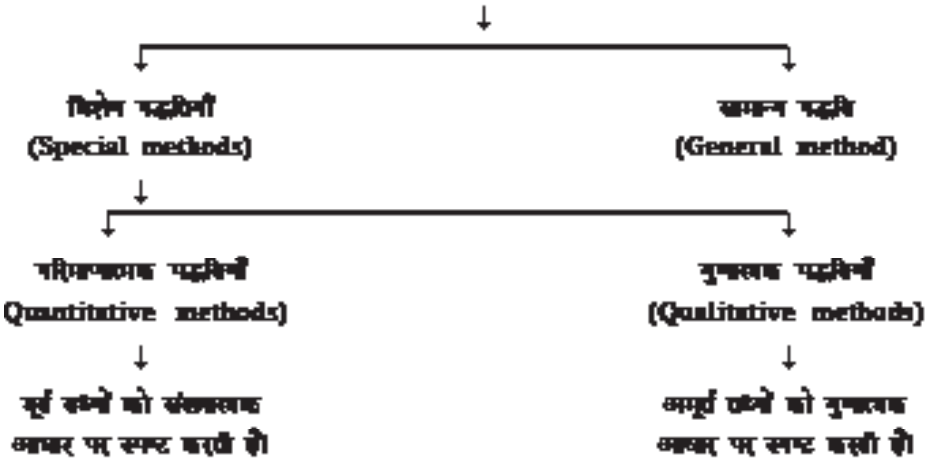

कार्य-विधि–इस विधि में अनेक स्तरों में कार्य करना होता है। सबसे पहले विषय का निर्धारण करना होता है। इसके बाद क्षेत्र में तथ्य संकलित करने से पहले समस्त उपकरणों और साधनों को जानना होता है। सामग्री संकलन के साधन निश्चित हो जाने के बाद सामग्री संकलन का कार्य प्रारंभ किया जाता है। सामग्री संकलन का कार्य निरीक्षण (Observation), साक्षात्कार (Interview), प्रश्नावली (Questionnaire), अनुसूची (Schedule) आदि द्वारा संचालित किया जाता है। चौथे स्तर पर सामग्री का विवेचन करना होता है। वर्गीकरण, सारणीयन, विश्लेषण आदि की प्रक्रियाओं द्वारा सर्वेक्षण के निष्कर्ष निकाले जाते हैं। अंतिम स्तर पर सर्वेक्षण की रिपोर्ट तैयार करना होता है। रिपोर्ट में तथ्यों को रेखाचित्र, चार्ट आदि के द्वारा भी स्पष्ट किया जाता है।

प्रकार–(1) सामान्य सामाजिक सर्वेक्षण में समग्र रूप से समुदाय की समस्याओं का अध्ययन किया जाता है, जबकि (2) विशिष्ट सामाजिक सर्वेक्षण में एक विशेष सामाजिक समस्या का अध्ययन होता है।

महत्त्व–व्यावहारिक ज्ञान पर आधारित होने के कारण सामाजिक सर्वेक्षण विधि द्वारा क्षेत्र का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करना संभव है। इसी कारण इस विधि का महत्त्व निरंतर बढ़ता जा रहा है।

सीमाएँ–इस विधि या पद्धति की अपनी सीमाएँ (Limitations) भी हैं। भावनात्मक और अमूर्त तथ्यों का अध्ययन संभव नहीं है। पक्षपातपूर्ण निष्कर्ष की संभावना बनी रहती है और कई बार उचित निदर्शन (Sampling) न होने के कारण भी निष्कर्ष गलत आते हैं। इन सीमाओं के उपरांत भी इस विधि की लोकप्रियता बढ़ती जा रही है, जो इसके महत्त्व की स्पष्ट परिचायक है।

2. **सांख्यिकीय पद्धति** (Statistical Method)–श्री केण्**डाल** के अनुसार, "सांख्यिकीय वैज्ञानिक पद्धति की वह शाखा है जो अनेक पदार्थों के समूह की विशेषताओं को मापकर अथवा गणना द्वारा प्राप्त की गयी सामग्री से संबंधित है।" इससे स्पष्ट है कि सामाजिक सांख्यिकीय

पद्धति तथ्यों का वैज्ञानिक रूप से सांख्यिकीय अध्ययन करने की विधि है। इसलिये **ओडम** (Odum) महोदय ने सांख्यिकी को अनुसंधान का आवश्यक अंग माना है।

कार्यविधि–सांख्यिकी पद्धति में प्रथम स्तर पर निदर्शनों का चुनाव करना होता है। दूसरे स्तर पर आँकड़ों का संकलन करना होता है। तृतीय स्तर पर वर्गीकरण और सारणीयन होता है। अंतिम स्तर पर विभिन्न माध्यों (Different averages) के द्वारा आवृत्तियों (Frequencies) को सरल बनाया जाता है तथा ग्राफ और चार्ट के रूप में प्रकट किया जाता है।

नोट

महत्त्व–संख्यात्मक पद्धति समाजशास्त्रीय अध्ययन में बहुत सहायक है, विशेष रूप से ऐसे प्रश्नों के संबंध में जिनमें माप-तौल, संख्या आदि का संबंध रहता है। उदाहरणार्थ–समुदाय की जनसंख्या, अपराध की दर, देश से होने वाला आयात आदि प्रश्नों का संबंध गणना से है। इसलिये गणना द्वारा इनको हल किया जाता है। **प्रो० गिडिंग्स** (Prof. Giddings) पहले समाजशास्त्री थे जिन्होंने विद्वानों का ध्यान इस शास्त्र में गणना के महत्त्व की ओर आकर्षित किया।

सीमाएँ–इस विधि में हम आँकड़े तैयार करते हैं, सूचियाँ बनाते हैं। परंतु इस सबसे आंतरिक कारणों पर प्रकाश नहीं पड़ता। इस अपूर्णता को पूरा करने के लिये गुणात्मक विधियों का सहारा लेना पड़ता है।

3. **ऐतिहासिक पद्धति** (Historical Method)–श्री **बोटोमोर** ने ऐतिहासिक पद्धति या विधि को स्पष्ट करते हुए लिखा है, "इस विधि में शोध और सिद्धांत के लिए समस्याओं में प्राथमिकता के एक विशेष क्रम का समावेश रहता है। सामाजिक संस्थाओं, समाजों और सभ्यताओं की उत्पत्ति, विकास और रूपांतरण की समस्याओं पर यह ध्यान केन्द्रित करती है। यह मानव-इतिहास के संपूर्ण विस्तार और समाज की समस्त प्रधान संस्थाओं से संबद्ध है जिसका उदाहरण कॉम्टे, स्पेंसर और हॉबहाउस की रचनायें हैं।" इस प्रकार यह पद्धति सामाजिक घटनाओं या सामाजिक संस्थाओं का अध्ययन मानवीय इतिहास के सहारे करने पर बल देती है।

   बाद में ऐतिहासिक विधि में विकासवादी दृष्टिकोण को स्थान दिया गया और किसी भी सामाजिक संस्था के संपूर्ण विकास के क्रम को प्रामाणिक आधार पर समझाने का अध्ययन करने के लिए इतिहास का सहारा लिया गया। वेस्टरमार्क की रचना 'History of Human Marriage' और ओपेनहीमर की रचना 'The State' ऐतिहासिक विधि में इसी विकासवादी क्रम पर आधारित हैं। **बोटोमोर** महोदय (Bottomore) के अनुसार, "सामाजिक विकास की समस्याओं के प्रति आधुनिक रुचि लगभग पूर्णतया औद्योगीकरण एवं आर्थिक प्रगति पर केन्द्रित है।"

   ऐसी अवस्था में अनेक विकासवादी योजनाओं में संकुचित व कट्टर स्वरूप का पनप जाना स्वाभाविक ही है। सच तो यह है कि कार्ल मार्क्स (ज्ञंतस डंतग) द्वारा प्रतिपादित इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या एवं परिणाम के रूप में पूँजीवाद का उदय इसी संकुचित विकासवादी सिद्धांत का उदाहरण है।

4. **तुलनात्मक पद्धति** (Comparative Method)–श्री बोटोमोर (Bottomore) का कहना है, "तुलनात्मक पद्धति दीर्घ समय तक समाजशास्त्र में सर्वोत्तम विधि समझी जाती रही। सर्वप्रथम इसका प्रयोग विकासवादी समाजशास्त्रियों ने किया था किंतु इसके प्रयोग में

नोट

ऐतिहासिक विधि से प्रतिबद्धता आवश्यक नहीं है।" दुर्खीम महोदय ने भी अपनी कृति 'The Rules of Sociological Method' में सबसे पहले तुलनात्मक विधि के महत्त्व को स्थापित करने का प्रयास किया है।

तुलनात्मक पद्धति के द्वारा विभिन्न समाज की संस्थाओं व मान्यताओं के विकास, उत्पत्ति, विनाश आदि के सामान्य कारणों को ढूँढ़ निकाला जाता है और इस प्रकार मानव-समाज में क्रियाशील उन सामान्य प्रेरक तत्वों का पता लग जाता है जिनके कारण समाज की विभिन्न संस्थाओं अथवा समाज के विभिन्न अंगों में एकता या संगठन बना रहता है। वास्तव में तुलनात्मक पद्धति का उपयोग करते समय समाज से संबंधित तथ्यों को संकलित करके वास्तविक निरीक्षण-परीक्षण के आधार पर तौलना चाहिये एवं इस प्रकार के अध्ययन-कार्य के दौरान किसी भी स्तर पर भावनात्मक, दार्शनिक, उद्वेगात्मक आदि विचारों से दूर रहना चाहिए ताकि तुलनात्मक कार्य और उस पर आधारित नियम-उपनियम (Laws) दोषों से मुक्त रहें।

तुलनात्मक पद्धति का अनुसरण करने में मुख्य रूप से दो कठिनाइयाँ उत्पन्न हो सकती हैं–(1) वैज्ञानिक उपकल्पना का अभाव और (2) तुलना की इकाई की परिभाषा की समस्या। उदाहरणार्थ, **कॉम्टे** (Comte) द्वारा प्रतिपादित 'तीन स्तरों के नियम (Law of Three Stages)' की स्थापना वैज्ञानिक उपकल्पना के स्थान पर मानवता के विकास की दार्शनिक दृष्टि पर आधारित है।

5. **प्रकार्यवादी पद्धति** (Structural Functional Method)–समाजशास्त्रीय अध्ययन पद्धति के रूप में प्रकार्यवादी पद्धति ऐतिहासिक व तुलनात्मक पद्धतियों की अस्पष्टता व अनिश्चितता को दूर करने के लिए विकसित की गयी। इस पद्धति का उपयोग मैलिनोवस्की (Malinowski), रैडक्लिफ ब्राउन (Radcliffe Brown), दुर्खीम (Durkheim), मर्टन (Merton) आदि विचारकों ने व्यापक रूप से किया है।

   प्रकार्यवादी पद्धति कुछ निश्चित आधारों का अनुसरण करती है। ये निश्चित आधार सामाजिक घटना के वैज्ञानिक विश्लेषण के लिए आवश्यक हैं। ये आधार निम्न हैं–

   (i) सामाजिक संरचना को निर्मित करने वाली अनेक इकाइयाँ होती हैं।

   (ii) प्रत्येक सामाजिक इकाई कोई-न-कोई प्रकार्य करती है अर्थात् कोई भी निर्मायक इकाई व्यर्थ नहीं होती है।

   (iii) ये विभिन्न इकाइयाँ अपने-अपने प्रकार्यों द्वारा एक-दूसरे से संबंधित और एक-दूसरे पर आश्रित रहती हैं।

   (iv) प्रकार्यात्मक संबंध के आधार पर समाज की विभिन्न इकाइयाँ एक सिलसिले अथवा बंधन में बँध जाती हैं और परिणामस्वरूप संबंधित रहते हुए ही कार्य अथवा प्रकार्य करती हैं।

   (v) विभिन्न निर्मायक इकाइयों के एक-दूसरे से संबंधित रहते हुए कार्य करने से सामाजिक व्यवस्था अथवा संगठन पनपता व विकसित होता है।

   (vi) इस प्रकार मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति सांस्कृतिक मूल्यों के अनुसार होती है, क्योंकि विभिन्न इकाइयों की स्थितियाँ और कार्य सांस्कृतिक व्यवस्था द्वारा नियमित व प्रभावित होते हैं।

   (vii) समाज की स्थिरता व निरंतरता विभिन्न इकाइयों के प्रकार्य पर निर्भर है।

इस प्रकार प्रकार्यवादी पद्धति का मुख्य उद्देश्य समाज की संरचना को भलीभाँति समझकर विभिन्न निर्मायक इकाइयों के मध्य प्रकार्यात्मक संबंधों (Functional relations) को ढूँढ़ निकालना, उनका विश्लेषण एवं निरूपण करना है। संभवतया इसीलिए इस पद्धति को संरचनात्मक प्रकार्यवादी (Structural functional) पद्धति के नाम से भी संबोधित किया जाता है।

नोट

(B) गुणात्मक पद्धतियाँ (Qualitative Methods)–ये पद्धतियाँ अमूर्त तथ्यों को गुणात्मक आधार पर स्पष्ट करती हैं।

1. **आगमन और निगमन पद्धति** (Inductive and Deductive Method)–इन पद्धतियों को समाजशास्त्र में प्रयुक्त करने में महत्त्वपूर्ण योगदान प्रारंभिक समाजशास्त्रियों का है। सच तो यह है कि सामाजिक घटनाओं की जटिल व परिवर्तनशील प्रकृति को दृष्टिगत रखते हुऐ ही इन पद्धतियों का प्रयोग किया गया। इन पद्धतियों का विवरण निम्नवत् हैं–

(i) आगमन पद्धति या विधि (Inductive Method)–इस पद्धति में कुछ विशेष तथ्यों के आधार पर सामान्य नियमों को निकाला जाता है। इस प्रकार **आगमन पद्धति वह पद्धति है जो समाज की कुछ विशेष घटनाओं के आधार पर सामान्य नियमों को प्रतिपादित करती है।** इसे एक उदाहरण द्वारा सरलता से समझा जा सकता है–मान लीजिये, हम दैनिक जीवन में यह देखते हैं कि सोहन जो कि मानव है, समूह में रहता है और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति दूसरों के सहयोग से करता है; मटरू भी मानव है और समूह में रहता हुआ अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति दूसरों के सहयोग से करता है। इसी प्रकार हरीश भी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। इन विशेष घटनाओं के आधार पर हम एक सामान्य नियम प्रतिपादित करते हैं कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी के रूप में अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति दूसरों के सहयोग से करता है। वस्तुतः यही आगमन है और आगमन पद्धति है। इस पद्धति के समन्वयात्मक, गणितात्मक, ऐतिहासिक आदि पद्धति के नाम से भी संबोधित किया जाता है।

गुण या लाभ

1. इस पद्धति के द्वारा भूतकालीन नियमों की सत्यता को खोजा जा सकता है।
2. इस पद्धति द्वारा प्राप्त निष्कर्ष अधिक विश्वसनीय व वास्तविक होते हैं।
3. यह पद्धति निगमन पद्धति की पर्याप्त सहायक है।
4. यह पद्धति मनोवैज्ञानिक क्रम पर आधारित है।

दोष या कमियाँ

1. अधूरे आंकड़े प्राप्त होने पर निष्कर्ष असत्य हो सकते हैं।
2. यह पद्धति स्थिर नियमों को प्रतिपादित करने में सफल नहीं हो सकती।
3. समाजशास्त्र के जिन क्षेत्रों में आँकड़े सरलता से उपलब्ध नहीं हो सकते, वहाँ यह पद्धति अनुपयोगी रहती है।

(ii) निगमन पद्धति या विधि (Deductive Method)–इस पद्धति या विधि में सामान्य नियमों के आधार पर विशेष निष्कर्षों तक पहुँचा जाता है। और भी स्पष्ट शब्दों में कहा जा सकता है कि कुछ सामान्य तथ्यों के आधार

नोट

पर किसी विशिष्ट निष्कर्ष को प्राप्त करना ही निगमन पद्धति है। इसे एक उदाहरण द्वारा सरलता से समझा जा सकता है–यह एक सामान्य नियम है कि "मनुष्य एक सामाजिक प्राणी के रूप में अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति दूसरों के सहयोग से करता है।" इस सामान्य नियम के आधार पर कुछ विशिष्ट निष्कर्षों को निकाला जा सकता है, जैसे–सोहन, मटरू, हरीश, मोहन आदि सभी सामाजिक प्राणी हैं, इसलिए वे अलग-अलग अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति दूसरे व्यक्तियों के सहयोग से करेंगे। वस्तुतः यही निगमन है और निगमन पद्धति है। इस पद्धति को काल्पनिक, विश्लेषणात्मक, अमूर्त पद्धति आदि नामों से भी संबोधित किया जाता है।

गुण या लाभ

1. निकाले गये निष्कर्ष पर्याप्त विश्वसनीय होते हैं।
2. सरल व कम खर्चीली पद्धति है।
3. यह पद्धति सार्वभौमिक नियमों को प्रतिपादित कर सकती है।
4. यह पद्धति आगमन पद्धति को सहायता प्रदान कर उसे पूर्ण बनाती है।

दोष या कमियाँ (Demerits)

1. आगमन पद्धति के अभाव में यह पद्धति अपूर्ण व अधूरी है।
2. अपूर्ण आँकड़ों की प्राप्ति पर इस पद्धति द्वारा विश्वसनीय निष्कर्ष नहीं निकाले जा सकते हैं।
3. यदि प्राप्त आँकड़ों या सामग्री (Data) की संख्या अधिक नहीं है तो भी इस पद्धति द्वारा विश्वसनीय निष्कर्ष प्राप्त नहीं हो सकते।
4. यह पद्धति काल्पनिक व अमूर्त है।

2. वैयक्तिक जीवन अध्ययन पद्धति या विधि (Case Study Method)–सबसे पहले **लीप्ले** (Leplay) और **हर्बर्ट स्पेंसर** (Herbert Spencer) ने इस विधि का प्रयोग किया। गुणात्मक अध्ययन के लिए वैयक्तिक जीवन अध्ययन को सबसे श्रेष्ठ समझा जाता है।

अर्थ (Meaning)–यह एक ऐसी विधि है कि जिसमें सामाजिक इकाई को (व्यक्ति, संस्था, समुदाय आदि) समग्र रूप में देखा जाता है।

कार्यविधि और आवश्यक बातें–इस पद्धति में सबसे पहले व्यक्ति से व्यक्तिगत संबंध स्थापित किया जाता है। व्यक्ति से भली प्रकार घुलने-मिलने पर ही व्यक्ति के जीवन की सभी बातों को सुविधापूर्वक जाना जा सकता है। बातचीत के दौरान अनुसंधानकर्ता संक्षिप्त नोट लेता जाता है। साक्षात्कार के अतिरिक्त जीवनियाँ, घनिष्ठ मित्रों के पत्र, व्यक्तिगत प्रलेखों आदि से भी सहायता मिल सकती है। इस विधि को काम में लाते हुए निम्न बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए–

1. व्यक्ति का अध्ययन उसकी सामाजिक पृष्ठभूमि में होना चाहिए।
2. व्यक्ति के जीवन में परिवार और अन्य प्राथमिक समूहों के महत्त्व को नहीं भुलाया जाना चाहिए।

3. व्यक्ति के बारे में ऐसे तथ्यों को जानने का प्रयास करना चाहिए जिससे व्यक्ति के संपूर्ण जीवन के बारे में वर्णन किया जा सके।
4. व्यक्ति के जीवन की घटनाओं को यथार्थ रूप में चित्रित किया जाना चाहिए।
5. संबंधित भौगोलिक क्षेत्र से ही व्यक्तियों को अध्ययन के लिए चुनना चाहिए।
6. प्रशिक्षित व्यक्ति को ही इस अध्ययन का इंचार्ज बनाना चाहिए।

नोट

महत्त्व–व्यक्तिगत समस्याओं को सूक्ष्म रूप से समझने के लिए एकमात्र यही पद्धति है। व्यक्ति की सामाजिक मनोवृत्ति, मूल्यों आदि के बारे में ज्ञान इस विधि द्वारा संभव है।

सीमाएँ–समय व धन की अधिक आवश्यकता पड़ती है। तथ्यों की पुनर्परीक्षा भी संभव नहीं हो पाती। अध्ययन निदर्शन प्रणाली पर आधारित न होने के कारण अनेक कठिनाइयाँ आती हैं। पक्षपात की भी संभावना बनी रहती है। कुछ भी हो, वैयक्तिक जीवन अध्ययन विधि की समाजशास्त्रीय अध्ययन में लोकप्रियता बढ़ती जा रही है।

3. **समाजमिति** (Sociometry)–**श्री मोरेनो** (Moreno) पहले समाजशास्त्री थे जिन्होंने विद्वानों का ध्यान इस शास्त्र में इस पद्धति की ओर आकर्षित किया। **श्री जेनिंग्स** (Jenings) का कहना है, "सामान्य रूप से यह पद्धति किसी विशेष अवसर पर किसी समूह के सदस्यों के पारस्परिक संबंधों को स्पष्ट करने की विधि है।"

   गणनात्मक विधि से गणना का पता लग जाता है, बाहर की बातें स्पष्ट हो जाती हैं। उदाहरणार्थ, गणना करने से यह तो स्पष्ट हो जायेगा कि देश में कितने व्यक्ति बेकार हैं, परंतु वे क्यों बेकार हैं, यह स्पष्ट नहीं हो सकेगा। इस आंतरिक बात का पता लगाने के लिए समाजमिति का सहारा लेना पड़ता है। इस दृष्टि से श्री मोरेनो ने ऐसे पैमाने, कुछ ऐसे मापदंड बनाये जिनसे समाज की आंतरिक प्रक्रियाओं का, राग-द्वेष का केवल वर्णन ही न किया जा सके अपितु इन पैमानों से उसे नापा जा सके।

1.13 समाजशास्त्र की सामान्य पद्धति/वैज्ञानिक पद्धति

समाजशास्त्र ने भी अन्य विज्ञानों द्वारा मान्य पद्धति को स्वीकार कर लिया है। इसे समाजशास्त्र की सामान्य पद्धति या वैज्ञानिक पद्धति कहा जाता है। इस पद्धति के मुख्य चरण निम्न हैं–

1. **समस्या का निर्धारण** (Formulation of Problem)–जिस विषय पर हम विचार कर रहे होंगे वही मुख्य समस्या कहलायेगी। उदाहरणार्थ, बाल अपराध, बेकारी, विवाह आदि-आदि।
2. **उपकल्पना का निर्माण** (Formulation of Hypothesis)–वर्गीकरण के बाद, आधार में जो नियम काम कर रहा होता है उसे निकाल लिया जाता है क्योंकि अभी इस नियम की पुष्टि बाकी होती है इसलिये इसे अभी नियम नहीं मानते हैं।
3. **अवलोकन** (Observation)–अवलोकन दो प्रकार का हो सकता है–
   - **(i) सहभागी** (Participant)–जिसमें समूह का सदस्य बनकर निरीक्षण करना होता है।
   - **(ii) असहभागी** (Non-participant)–जिसमें समूह के बाहरी सदस्य के रूप में निरीक्षण किया जाता है।
4. **सामग्री संकलन** (Collection of data)–अवलोकित तथ्यों को नोट कर लिया जाता है। तथ्यों को नोट कर लेना इसलिये आवश्यक है क्योंकि स्मरण-शक्ति के आधार पर सब तथ्यों को याद नहीं रखा जा सकता है।

नोट

5. **सामग्री का वर्गीकरण** (Classification of Data)–संपूर्ण सामग्री एकत्रित करके उसे क्रमबद्ध रूप दिया जाता है। इसी क्रमबद्धता को वर्गीकरण कहा जाता है। वर्गीकरण का यह परिणाम होता है कि सैकड़ों बातें पाँच, सात मुख्य वर्गों में बँट जाती हैं।

6. **परीक्षण** (Verification)–इस शास्त्र में परीक्षण घटनाओं पर नहीं किया जाता वरन् इस निकले हुए नियम की व्यापक सिद्धांतों के प्रकाश में परीक्षा की जाती है। इस परीक्षा के बाद ही उपकल्पना के अंतर्गत जो नियम काम कर रहा होता है उसे नियम मान लिया जाता है।

1.14 'अतर्वस्तु विश्लेषण' प्रविधि की परिभाषाएँ व विशेषताएँ

अंतर्वस्तु विश्लेषण प्रविधि की परिभाषा देते हुए सर्वश्री **वैपिल्स तथा वेरेल्सन** (Weples and Barelson) ने लिखा है, "सुव्यवस्थित अंतर्वस्तु विश्लेषण प्रविधि सामग्री के विवरण मात्र को प्रस्तुत करने के स्थान पर उससे अधिक स्पष्ट व्याख्या करने का प्रयास करती है जिससे कि पाठकों या श्रोताओं को प्रदान की जाने वाली प्रेरणाओं की प्रकृति व सापेक्षिक सत्य को वस्तुनिष्ठ रूप में प्रकट करना संभव हो।"

उपरोक्त परिभाषा से यह स्पष्ट है कि विश्लेषण प्रविधि उस सामग्री का विश्लेषण है जिसे कि पाठकों या श्रोताओं के लिए प्रस्तुत किया जाता है। यह प्रविधि इस सामग्री का विवरणात्मक व्याख्या नहीं, अपितु इस प्रकार की व्याख्या प्रस्तुत करता है जो अधिक स्पष्ट व वस्तुनिष्ठ हो और जिसके माध्यम से पाठकों या श्रोताओं को प्रदान की जाने वाली प्रेरणाओं की प्रकृति व वास्तविकताएँ वैज्ञानिक तौर पर प्रगट हों।

श्री बर्नार्ड बेरेल्सन (Bernard Berelson) ने अपने संचार शोधों (Communication researches) में अंतर्वस्तु विश्लेषण के एक अति उत्तम परिभाषा को विकसित किया है। उनके अनुसार, "अंतर्वस्तु विश्लेषण संचार के प्रगट अंतर्वस्तु का वस्तुनिष्ठ, क्रमबद्ध तथा परिमाणात्मक वर्णन के लिए अपनाई जाने वाली एक शोध प्रविधि है।"

प्रो० बेरेल्सन की इस परिभाषा से यह स्पष्ट है कि अंतर्वस्तु विश्लेषण प्रविधि का प्रयोग हम संचार के उस अंतर्वस्तु का वैज्ञानिक वर्णन के लिए करते हैं जो कि अंतर्निहित (latest) न होकर प्रगट (manifest) हो अर्थात् बाह्य तौर पर निरीक्षण योग्य हो।

श्रीमती यंग (P.V. Young) के शब्दों में, "अंतर्वस्तु विश्लेषण साक्षात्कारों, प्रश्नावलियों, अनुसूचियों तथा अन्य लिखित या मौखिक भाषागत अभिव्यक्तियों (linguistic expressions) द्वारा प्राप्त शोध तथ्यों के अंतर्वस्तु का क्रमबद्ध, वस्तुनिष्ठ तथा परिमाणात्मक वर्णन के लिए अपनाई जाने वाली एक शोध प्रविधि है।"

स्पष्ट है कि श्रीमती यंग की परिभाषा प्रो० बर्नार्ड बेरेल्सन (Bernard Berelson) द्वारा प्रस्तुत उपरोक्त परिभाषा का ही बहुत कुछ संशोधित रूप है।

उपरोक्त परिभाषाओं के विश्लेषण से ही अंतर्वस्तु विश्लेषण प्रविधि की मुख्य विशेषताएँ स्पष्ट हो जाती हैं, फिर भी उन्हें हम क्रमबद्ध रूप में इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं–

(1) इस प्रविधि का संबंध संचार के अथवा भाषागत अभिव्यक्तियों द्वारा प्राप्त तथ्यों के अंतर्वस्तु से होता है।

(2) इस प्रविधि में उस अंतर्वस्तु का अध्ययन व विश्लेषण किया जाता है जो कि प्रगट (manifest) हो अर्थात् जो वैज्ञानिक के लिए बाहरी तौर पर निरीक्षण योग्य हो।

(3) इस प्रविधि द्वारा हम उन शोध तथ्यों के अंतर्वस्तु का विश्लेषण करते हैं जिन्हें कि संचार के किन्हीं साधनों या भाषागत अभिव्यक्तियों, चाहे वे लिखित हों या मौखिक, के माध्यम से प्राप्त किया जाता है।

(4) इस प्रविधि का उद्देश्य इस अंतर्वस्तु का वस्तुनिष्ठ, क्रमबद्ध तथा परिमाणात्मक वर्णन प्रस्तुत करना होता है। इस प्रकार यह प्रविधि अपने को तथ्यों के गुणात्मक (qualitative) वर्णन से दूर रखता है।

(5) इस रूप में इस प्रविधि का आधार वैज्ञानिक है और यह ऐसे परिणामों को खोज निकालता है जिसकी सत्यता के विषय में परीक्षा और पुन:परीक्षा संभव है।

नोट

1.15 अंतर्वस्तु विश्लेषण प्रविधि का महत्त्व

सामाजिक अनुसंधान व शोध के क्षेत्र में अंतर्वस्तु विश्लेषण प्रविधि का अपना अनूठा महत्त्व है और यह बात निम्नलिखित विवेचना से स्वत: ही स्पष्ट हो जाएगी–

(1) गुणात्मक विषयों का परिमाणात्मक अध्ययन करना इस प्रविधि की सहायता से संभव होता है। उदाहरण के लिए, उपन्यास के पात्र अथवा एक भाषण अथवा एक समाचार-पत्र का संपादकीय (editorials)– ये सब गुणात्मक विषय हैं। पर अंतर्वस्तु विश्लेषण प्रविधि इन गुणात्मक विषयों की प्रकृति व विशेषताओं का परिमाणात्मक व्याख्या सारणी, ग्राफ आदि के माध्यम से प्रस्तुत करता है।

(2) संचार के विभिन्न साधनों की प्रकृति को स्पष्ट करने में अंतर्वस्तु विश्लेषण प्रविधि अपना महत्त्वपूर्ण योगदान देता है। संचार के साधन (means of communication) जैसे पुस्तक, भाषण, समाचार-पत्र, रेडियो कार्यक्रम आदि हमारे सामाजिक जीवन को प्रभावित व निर्देशन करने में महत्त्वपूर्ण हैं, पर उनकी प्रकृति व प्रभाव दोनों ही अमूर्त होने के कारण उनके बारे में सामान्यत: सही ज्ञान हमें नहीं मिल पाता है। अंतर्वस्तु विश्लेषण प्रविधि इस कमी को पूरा करता है। इस प्रविधि की सहायता से हम न केवल विभिन्न संचार के साधनों की प्रकृति को समझ पाते हैं अपितु हमें जनता पर पड़ने वाले इन साधनों के प्रभाव की प्रकृति व सीमा के संबंध में भी वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त होता है।

(3) संचार के अंतर्राष्ट्रीय आधारों का तुलनात्मक अध्ययन भी इस पद्धति की सहायता से संभव होता है। प्रत्येक देश के संचार साधनों के अंतर्वस्तु एक समान नहीं होते, पर उनका विस्तार अंतर्राष्ट्रीय हो सकता है। इस कारण उनका प्रभाव भी देश की सीमा पार कर जाता है।

(4) प्रचार की विधियों का जनता पर पड़ने वाले प्रभावों की प्रकृति के संबंध में अध्ययन भी इस प्रविधि की सहायता से वैज्ञानिक रूप में किया जा सकता है। इस प्रकार के अध्ययन से प्रचार के साधनों को अधिक प्रभावशाली बनाने तथा प्रचार के नवीन साधनों व प्रविधियों को खोज निकालने में मदद मिल सकती है।

(5) जनमत को जानना भी इस प्रविधि की मदद से आज सरल हो गया है। समाचार-पत्रों के संपादक के नाम जनता के सदस्यों द्वारा लिखे गए पत्रों का अंतर्वस्तु विश्लेषण करके कई शोधकर्ता जनमत के रुख का पता लगाने में सफल हुए हैं।

(6) व्यक्तित्व के अध्ययन में भी यह प्रविधि सहायक सिद्ध हुई है। एक व्यक्ति विशेष के द्वारा दिए गए भाषण अथवा उसके द्वारा लिखी गई किताब, लेख आदि का अंतर्वस्तु विश्लेषण

नोट

करने पर स्वयं उस व्यक्ति के व्यक्तित्व में अंतर्निहित विचार, आदर्श, मूल्य, मनोवृत्ति, उद्वेग, स्थायी भाव (sentiments) आदि स्पष्ट हो जाते हैं। इन्हीं विलक्षणताओं के आधार पर विभिन्न व्यक्तित्वों का श्रेणी-विभाजन (categorisation) भी संभव होता है।

(7) समूह या समुदाय के मनोवैज्ञानिक झुकाव का अध्ययन भी इस प्रविधि के द्वारा संभव होता है। समाचार-पत्र व पत्रिकाओं में प्रकाशित लेख, कहानी, रेडियो कार्यक्रम, विज्ञापन आदि विषयों के अंतर्वस्तु का विश्लेषण करने पर एक समूह या समुदाय-विशेष के मनोवैज्ञानिक झुकाव का स्वत: ही पता चल सकता है। इससे प्रशासकों, समाज-सुधारकों, योजना बनाने वालों तथा देश के नेताओं को अपने-अपने कार्य को संबोधित व व्यवस्थित करने में बहुत मदद मिलती है।

1.16 अंतर्वस्तु विश्लेषण प्रविधि की सीमाएँ

उपरोक्त महत्त्व होते हुए भी अंतर्वस्तु विश्लेषण प्रविधि की अपनी कुछ सीमाएँ हैं और उनमें सबसे प्रमुख यह है कि अध्ययन-विषय स्वयं गुणात्मक होने के कारण इसके परिमाणात्मक परिणामों को निकालना स्वयं में एक समस्या बन जाती है। अध्ययन इकाइयों की प्रकृति गुणात्मक होने के कारण इनसे संबंधित तथ्यों की विश्वसनीयता की जाँच बहुत कठिन होती है। इस समस्या से बचने के लिए अध्ययन कार्य के दौरान अत्यंत सावधानी बरतनी पड़ती है। गुणात्मक प्रकृति के कारण ही विश्लेषणात्मक व्याख्या व निष्कर्ष की यथार्थता को प्राप्त करना सरल नहीं होता। स्वयं संचार के साधनों में इतनी भिन्नताएँ हैं कि यह कहना कठिन हो जाता है कि जो निष्कर्ष हमने एक अध्ययन के आधार पर निकाला है, उसे सभी समान विषयों पर लागू किया जा सकता है अथवा नहीं। साथ ही साथ इन साधनों के अंतर्वस्तु में परिवर्तन की गति इतनी तेज है कि आज का निष्कर्ष कुछ समय के बाद ही व्यर्थ सिद्ध हो जाता है।

1.17 मापन की अनुमापनियाँ

मापन का नियमों तथा धारणाओं के आधार पर वर्गीकरण किया जा सकता है। यही नियम तथा धारणायें मापन-प्रक्रिया को आधार प्रदान करती हैं। स्वीवेन्स ने 1946 में मापन को निम्न चार स्तरों में विभाजित किया है-

(1) नाम-सम्बन्धी मापनी (Nominal Scale)

(2) क्रम-सूचक मापनी (Ordinal Scale)

(3) समान आवान्तर मापनी, तथा (Equal Interval Scale) तथा

(4) अनुपात मापनी (Ratio Scale)

(1) नाम-सम्बन्धी मापनी (Nominal Scale)-मापन के चारों स्तरों में यह सबसे कम शुद्ध स्तर माना जाता है इसमें केवल दो या दो से अधिक वर्गों में किसी तथ्य का विभाजन किया जाता है। उसके परिणाम का बोध नहीं होता है। उदाहरण के लिये छात्राध्यापकों का हम कई तथ्यों के आधार पर विभाजन करते हैं जैसे, लिंग (Sex) के आधार पर, शिक्षण विषयों के आधार पर इत्यादि। इस स्तर के मापन के लिये प्रश्नावली (Questionnaire) तथा निरीक्षण-प्रविधि (Observation Technique) प्रयुक्त की जाती है। इस स्तर पर

प्रदत्त केवल आवृत्ति (Frequency) में प्राप्त होते हैं जिनके विश्लेषण के लिये बहुलांक (Mode), प्रतिशत काई-वर्ग (Chi-Square) तथा सह सम्बन्ध (Contingency) प्रविधियाँ प्रयुक्त की जा सकती हैं।

नोट

(2) क्रम-सूचक मापनी (Ordinal Scale)-यह मापन का स्तर पहले की अपेक्षा शुद्ध होता है। प्रत्येक वर्ग के छात्रों को एक क्रम (Rank) में व्यवस्थित किया जाता है। इसमें छात्रों को अनुपस्थिति (Rank) दिया जाता है। इस स्तर के मापन में निरीक्षण के आधार पर तर्कपूर्ण ढंग से एक क्रम में अनुपस्थिति (Rank) प्रदान किया जाता है। उनको आपस की दूरी का बोध नहीं होता है। उदाहरण के लिये छात्राध्यापकों को लड़कों तथा लड़कियों के समूहों में विभाजित करके शिक्षक यदि उनको अनुपस्थितियाँ (Rank) प्रदान करता है तब यह मापन क्रम-सूचक स्तर (Ordinal Scale) माना जायेगा। इस स्तर के मापन के लिये निरीक्षण-प्रविधि तथा स्तर-सूची (Rating Scale) को प्रयुक्त किया जाता है। इसमें आवृत्ति को एक क्रम में रखा जाता है। मध्यांक (Median) स्पीयरमेन रेंक विधि का प्रयोग सह-सम्बन्ध ज्ञात करने के लिये, काई-वर्ग (Chi-Square) परीक्षा को अन्तरों का विश्लेषण करने के लिये प्रयुक्त किया जाता है। शिक्षक अपनी शिक्षण क्रियाओं के समय छात्रों का व्यवहार के आधार पर स्तरीकरण करता है और कक्षा अधिगम क्रियाओं के मूल्यांकन में प्रयुक्त करता है।

(3) समान आवान्तर मापनी (Equal Interval Scale)ऽइस मापन स्तर की वही सब विशेषतायें होती हैं जो प्रथम दो स्तरों की होती हैं परन्तु इसकी विशेषता यह भी है कि यह दो व्यक्तियों के मध्य की दूरी प्रकट करता है। इस स्तर में शून्य माना हुआ होता है क्योंकि शैक्षिक मापन अपेक्षाकृत होता है। चर (Variable) के मापन के लिये अंक प्रदान किये जाते हैं। छात्रों को परीक्षा में अंक दिये जाते हैं। विभिन्न विषयों के अंक अलग-अलग होते हैं। शिक्षा तथा मनोविज्ञान में मापन का सबसे शुद्ध स्तर माना जाता अलग-अलग होते हैं। शिक्षा तथा मनोविज्ञान में मापन का सबसे शुद्ध स्तर माना जाता है। निम्नलिखित उदाहरण से इसकी शुद्धता का बोध हो सकता है-

छात्र (Student)	**क्रम सूचक मापनी (Ordinal Scale)**	**समान आवान्तर स्तर (Equal-Interval Scale)**
अ	1	50
ब	2	98
स	3	99

अ, ब में स्तर का अन्तर एक का है और अंको में 48 का अन्तर है, जबकि स में रेंक का अन्तर एक का है और अंकों में भी एक का ही अन्तर है। यह मापन शुद्ध सूचना प्रस्तुत करता है। इसके लिये निष्पत्ति परीक्षा का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार के प्रदत्तों के विश्लेषण में मध्यमान, प्रमाणित विचलन, सह-सम्बन्ध गुणक विधि, टी-परीक्षण, आदि अधिक शुद्ध सांख्यिकी-प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है। शिक्षक को इसी स्तर के मापन को अधिक प्रयुक्त करना होता है। मापन के इस स्तर के लिये शिक्षक मानदण्ड-परीक्षा को प्रयुक्त करता है और प्राप्त अंकों के आधार पर उद्देश्यों के सम्बन्ध में निर्णय लेता है।

नोट

मापन की अनुमापनियों का तुलनात्मक विवरण

अनुमापनी	विशेषता	प्रविधियाँ	सांख्यिकी का उपयोग
1. नामित (Nominal)	वर्गो में आवृत्तिया सापेक्ष	निरीक्षण प्रश्नावली अप्रत्यक्ष मापन	आवृत्तियाँ बहुलांक, काई वर्ग परीक्षण एवं 'सी॰ सह-सम्बन्ध
2. अनुस्थित (Ordinal)	अनुस्थितियों क्रमानुसार सापेक्ष	रेटिंग मापनी निरीक्षण मापन अनुस्थितियाँ	मध्यांक तथा निरीक्षण स्पीयरमैन रोह सह-सम्बन्ध काई वर्ग
3. वर्गान्तर समान (Equal Interval Scale)	सापेक्ष मापन अंक समान वर्गान्तर, सापेक्ष	परीक्षण निरीक्षण मापनियाँ	मध्यमान, प्रमाणिक विचलन, पीयर्सन सह-सम्बन्ध 'टी॰' परीक्षण
4. अनुपातिक (Ratio Scale)	निरपेक्ष मापन शून्य सार्थक	भौतिक मापनियाँ प्रत्यक्ष मापन	गणित का उपयोग पीयर्सन

(4) अनुपात मापनी (Ratio Scale)-यह सबसे शुद्ध मापन का स्तर माना जाता है। इसमें इकाइयाँ समान होती है। शून्य का अस्तित्व होता है। भौतिक विज्ञान के चरों, जैसे तापक्रम, भार, आयतन आदि के मापन में इसी स्तर का प्रयोग होता है। शिक्षा तथा मनोविज्ञान के मापन में इसका प्रयोग कम होता है। इसमें सांख्यिकी की अपेक्षा प्रदत्तों के विश्लेषण में गणित का प्रयोग किया जाता है।

इन अनुमापनियों के आधार पर मापन के प्रकार भी किये जाते हैं। क्योंकि इन चारों प्रकार से मापन किया जाता है- 1. नामित मापन 2. अनुस्थिति मापन 3. समान-वर्गान्तर मापन तथा अनुपातिक मापन। इन्हें एक शुद्ध मापन चढ़ाव क्रम में प्रस्तुत किया गया है।

मापन का अर्थ होता है चरों (गणों) को संख्या/मात्रा में बदलना। संख्या में बदलने के लिए नियमों का उपयोग किया जाता है, और अवधारणाओं की सहायता ली जाती है। शिक्षा तथा मनोविज्ञान में नामित मापन सबसे निम्न स्तर का होता है, और समान-वर्गान्तर मापन सबसे शुद्ध मापन माना जाता है। अनुपातिक मापन का उपयोग भौतिक विज्ञान में होता है, क्योंकि यह निरपेक्ष होता है और शून्य का मान होता है। जबकि इसके अतिरिक्त मापनियों में सापेक्ष मापन होता है शून्य माना हुआ होता है।

मापन से जो प्राप्तांक आते हैं वे अर्थहीन होते हैं उनका कोई अर्थ नहीं होता है। उनका अर्थापन करने के लिए गणित एवं सांख्यिकी की प्रविधियों का उपयोग किया जाता है तब उन्हें सार्थक बनाया जाता है। मनोविज्ञान तथा शिक्षा के मापन के प्राप्तांको में सांख्यिकी का उपयोग किया जाता है। क्योंकि सांख्यिकी का सम्बन्ध समूह अथवा न्यादर्श से होता है। इसमें अर्थापन सापेक्ष होता है। नामित मापन में समूह के सदस्यों को दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं। छात्र और छात्राओं की पृथक्-पृथक् संख्या में गणना करना। अनुस्थिति में उन्हें क्रम में रखना अथवा अनुस्थितियाँ प्रदान करना। समान-वर्गान्तर में परीक्षण देकर उन्हें अंक प्रदान करना होता है। इस प्रकार मापन की शुद्धता बढ़ती जाती है यहाँ एक उदाहरण से स्पष्ट किया गया है-

छात्र	अनुस्थिति मापन	अंकों का अन्तर	समान-वर्गान्तर मापन	अंको का अन्तर
अ	2	48		
ब	1	1	49	1
स	3	1	20	28

नोट

इस उदाहरण में ब को प्रथम, अ को द्वितीय तथा स को तृतीय अनुस्थिति प्रदान की गई है। इनका अनुस्थितियों में एक अन्तर है पर समान वर्गान्तर में ब तथा अ के अंकों का अन्तर 1 और अ और स के अंकों में अन्तर 28 का है। अनुस्थितियों के अन्तर से वास्तविक अन्तर का बोध नहीं होता है। समान-वर्गान्तर से अन्तर का बोध अंकों से होता है इसलिए समान-वर्गान्तर मापन को शुद्ध मानते हैं। नामित मापन में सभी को समान अंक दिया जाता है। जबकि सभी समान नहीं होते है। अनुस्थिति मापन में भिन्नता के आधार पर क्रम में रख लिया जाता है। अनुस्थितियों में अन्तर समान होता है। जबकि सभी के मध्य अन्तर समान नहीं होता है।

1.18 मापन की मुख्य क्रियाएँ

व्यक्ति के सभी गुणों का मापन तथा वर्णन करना सम्भव नहीं है इसलिए सम्बन्धित तथा सार्थक चरों का विवरण देना अधिक उपर्युक्त है। उनमें गुणात्मक पक्षो का वर्णन करना अधिक उपयोगी है। यहाँ अधिक शुद्ध रूप में परिणामात्मक प्रत्ययों का वर्णन करने का प्रयास किया गया है। यह ध्यान रखना चाहिए कि किसी व्यक्ति एवं वस्तु का मापन नहीं किया जा सकता है। अपितु उसकी विशेषताओं या चरों का मापन किया जाता है। मापन के प्रत्येक क्षेत्र में तीन सोपानों का अनुसरण किया जाता है। यह सोपान इस प्रकार है-

1. जिस गुण या चर का मापन करना है उसको पहचानना तथा उसकी व्यावहारिक परिभाषा (Operational Definition) करना।
2. उन व्यवहारों के समूह को निर्धारित करना जिससे मापन किये जाने वाले चर की अभिव्यक्ति होती है।
3. उस प्रक्रिया को परिभाषित करना अथवा स्थापित करना जिससे व्यवहारों को परिमाण में बदलना या अंक प्रदान करना या अनुस्थिति लगाना।

इन सोपानों को समझने के लिए मापन प्रक्रिया का समुचित ज्ञान करने होती है उनके लिए मापन सैद्धान्तिक पक्ष जाना आवश्यक है। इसके साथ मापन की समस्याओं का बोध भी होना चाहिए। इन सोपानों का विवरण निम्नांकित पंक्तियों में दिया गया है।

(1) चर को पहचानना और उसी परिभाषा करना (Identifying and defining a Variable) –मापन प्रक्रिया में व्यक्ति का मापन नहीं होता है अपितु सदैव उसके गुणों अथवा चरों का मापन किया जाता है। अधिकांश चरों का मापन व्यवहारों से होती है। क्योंकि यह चर अमूर्त होते, हैं। चर की संरचना का बोध व्यवहारों के विशिष्ट समूह से किया जाता है। इसलिए प्रथम क्रिया चर की पहचान करना। चर की परिभाषा सैद्धान्तिक न होकर व्यवहारिक होनी चाहिए। विशिष्ट व्यवहारों की अभिव्यक्ति के लिए समुचित उद्दीपन या परिस्थितियाँ दी जा सकती है। यह मापन की प्रक्रिया अप्रत्यक्ष होती है। व्यावहारिक विज्ञानों के मापन की गम्भीर समस्या यह है कि अमूर्त चर की कोई सर्वमान्य परिभाषा नहीं दी जा सकती

नोट

है। जैसे बुद्धि की परिभाषाएँ मापन की दृष्टि से अहम् होती है क्योंकि परिभाषा चर का व्यावहारिक स्वरूप निर्धारित करती है।

यदि बुद्धि मापन हेतु परीक्षण की रचना करना है तब कुछ प्रश्नों का समुचित ज्ञात करना होगा। बुद्धि का क्या अर्थ है? किस प्रकार के व्यवहारों से बुद्धि का बोध होता है? बौद्धिक व्यवहारों का स्वरूप कैसा है? बुद्धि के अमूर्त प्रत्यय की कैसी संरचना है। बुद्धि की परिभाषा इस प्रकार की जाय जिसे सामान्य रूप से अधिकांश व्यक्ति स्वीकार कर सके। वस्तु स्थिति यह है कि बुद्धि को अनेक प्रकार से परिभाषित किया गया है जैसे-

1. अमूर्त चिन्तन की योग्यता को बुद्धि कहते है।
2. नवीन परिस्थितियों में समायोजन की क्षमता को बुद्धि कहते हैं।
3. सह-सम्बन्ध देखने की अन्तर्दृष्टि को बुद्धि कहते हैं।
4. किसी कार्य को कुशलता से सम्पादन करने की क्षमता को बुद्धि कहते हैं।

इस प्रकार बुद्धि प्रत्यय की अनेक परिभाषा दी गई है। प्रत्येक परिभाषा के अनुसार बुद्धि की संरचना भिन्न-भिन्न प्रकार की है तथा व्यवहारों का स्वरूप भी भिन्न-भिन्न प्रकार का है। इसलिए कोई भी एक परीक्षण का निर्माण नहीं किया जा सकता जो सभी को सम्मिलित कर सके। बुद्धि मापन के लिए- शाब्दिक बुद्धि परीक्षण, अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण तथा सम्पादन बुद्धि परीक्षण का निर्माण किया गया है। गुण अथवा चर को पहचानने और परिभाषित करने के बाद उसकी संरचना का विवरण तैयार करना होता है और सम्बन्धित व्यवहारों का स्वरूप भी निर्धारित किया जाता है जो उपयोगी प्रतीत होते हैं।

किसी एक व्यक्ति के व्यवहारों के आधार पर विवरण तैयार करना उपयोगी नहीं होता है। जिस समूह या जनसंख्या के परीक्षण का निर्माण करना है। उस समूह के व्यवहारों के आधार पर विवरण तैयार किया जाता है।

इसी प्रकार निष्पति परीक्षण के लिए विषय की पाठ्यवस्तु के सभी तत्वों पर प्रश्नों की रचना की जाती है और मानदण्ड सन्दर्भित परीक्षण के अन्तर्गत शिक्षण के उद्देश्यों मापन के लिए प्रश्नों का निर्माण किया जाता है। निष्पत्ति की पहचान एवं परिभाषा सन्दर्भ के आधार पर की जाती है। मनुष्य के गुणों के मापन में मानवीय व्यवहारों को महत्व दिया जाता है। यह व्यवहार गुणों के मापन में सम्मिलित रहते हैं। एक व्यवहार एक से अधिक गुणों या चरों का मापन करता है। शिक्षा तथा मनोविज्ञान में कोई भी परीक्षण पूर्ण रूप से वैध तथा विश्वसनीय नहीं होता है। उसकी रचना में व्यक्तिगत त्रुटि का प्रभाव रहता है। मापन का अर्थापन भी शुद्ध नहीं होता है। परीक्षण पदों को सम्मिलित करने का ठोस आधार नहीं होता है।

(2) चर या गुण की अभिव्यक्ति हेतु व्यवहारों अथवा क्रियाओं का स्वरूप को निर्धारित करना– मापन का दूसरा पक्ष है चर से सम्बन्धित व्यवहारों तथा क्रियाओं की खोज करना या ज्ञात करना जिनसे अपेक्षित गुण अन्य गुणों से पृथक किया जा सके। इस व्यवहारों तथा क्रियाओं को ज्ञात करने के लिए चर की परिभाषा एवं संरचना को ध्यान में रखना होता है। परिभाषा के आधार पर व्यवहारों और क्रियाओं के निर्धारण में सहायता मिलती है। इसके लिए आवश्यक होता है कि परिभाषा का स्वरूप व्यावहारिक अथवा क्रियात्मक (Operational) होना आवश्यक होता है। परिभाषा और व्यवहारों में अन्त: क्रिया होना

नोट

आवश्यक होता है। परिभाषा के आधार पर संगत व्यवहारों का निर्धारण किया जाता है। यह क्रिया तार्किक ढंग से की जाती है। इसमें अन्तर्दृष्टि का उपयोग अधिक किया जाता है। व्यावहारिक परिभाषा प्रक्रिया का स्वरूप सुनिश्चित करती है। इसलिए गुण तथा चर की व्यावहारिक परिभाषा प्रभावशाली ढंग से की जानी चाहिए। व्यवहारों का स्वरूप ऐसा होना चाहिए, जिससे अपेक्षित व्यवहारों को कराया जा सके और उससे चर या गुण का मापन किया जा सके।

बिने ने बुद्धि परीक्षण के निर्माण में इसी प्रकार की अनेक क्रियाओं का सम्पादन किया तब वह बुद्धि परीक्षण के निर्माण करने में सफल हो सके। सर्वप्रथम उन्होंने बुद्धि प्रत्यय को एकल सिद्धान्त के रूप में और उसी के अनुसार उसकी परिभाषा की। परिभाषा को व्यावहारिक रूप देने का प्रयास किया जिससे उन्होंने बौद्धिक व्यवहारों को पहचानने और उनके स्वरूप को निर्धारित किया। इन व्यवहारों को कराने के लिए विभिन्न प्रकार के प्रश्नों की रचना की, जिससे बुद्धि से सम्बन्धित व्यवहारों को करा सके और उन्हें अंक प्रदान कर सके। इस प्रकार मापन के अन्तर्गत परीक्षणों के निर्माण में व्यावहारिक संरचनाओं की विशेष भूमिका होती है। क्योंकि इनकी प्रकृति अप्रत्यक्ष होती है और सापेक्ष रूप में उनका मापन किया जाता है। समूह के सन्दर्भ में अर्थापन किया जाता है।

(3) चरों को परिमाण में बदलने के लिए इकाई का निर्धारण करना (Quantifying the Variable in Unit of Degree or Amount)–इस तृतीय सोपान के अन्तर्गत जिन व्यवहारों को स्वीकार किया गया है, उन्हें कराने के लिए परिस्थिति के रूप में प्रश्न किये जाते हैं। इन प्रश्नों से जो उत्तर प्राप्त होते हैं। उनके अंकन के लिए इकाइयों का आवंटन किया जाता है। जिससे गुण या चर को परिमाण में बदल देते हैं। मापन की प्रक्रिया में साधारणत: तीन प्रकार की मापनियों का प्रयोग किया जाता है। जिनमें अंकन की प्रक्रिया पृथक्-पृथक् होती है- (अ) परीक्षण (ब) रेटिंग स्केल तथा (स) अनुसूची-(Inventory)। इनके अंकन की प्रक्रिया निम्नलिखित होती है-

(अ) परीक्षण (Testing)-इनके अन्तर्गत प्रश्नों में इस तरह के व्यवहारों को सम्मिलित किया जाता है कि उनके उत्तर सही व गलत होते हैं। सही व्यवहार के लिए एक अंक और गलत के लिए शून्य दिया जाता है। और सभी प्रश्नों के अंकों का योग कर लिया जाता है। जिन्हें प्राप्तांक कहते हैं। परीक्षणों का उपयोग बुद्धि निष्पति तथा प्रवणता के मापन में किया जाता है।

(ब) रेटिंग स्केल (Rating Scale)-इसके अन्तर्गत व्यवहारों को कथन के रूप में दिया जाता है। इन कथनों का रेटिंग कराया जाता है। जैसे- सहमत, असहमत तथा तठस्त। या पाँच बिन्दुओं में जैसे- उत्तम, अच्छा, सामान्य, हीन तथा अतिहीन। इनमें किसी एक बिन्दु पर चिन्ह लगाया जाता है। इसमें सही और गलत नहीं होता, अपितु जो उत्तर प्राप्त होता है उसके महत्व देकर अंक दिये जाते हैं। जैसे- अतिहीन को शून्य (0) और हीन को एक (1) सामान्य को दो (2) अच्छा को तीन (3) उत्तम को चार (4) अंक दिये जाते हैं। किन्हीं परिस्थितियों में क्रृण में अंक दिये जाते हैं। अभिवृत्ति के मापन में अंक क्रृण में दिये जाते हैं। इन अंकों का योग कर लिया जाता है। इस प्रकार की मापनियों का उपयोग अभिवृत्ति, अभिरूचि आदि का मापन किया जाता है।

नोट

(स) अनुसूची (Inventory)-इस प्रकार की मापनियों का उपयोग व्यक्तित्व, अभिरूचियों तथा मूल्यों के मापन में किया जाता है। इसमें जो व्यवहार कराये जाते हैं। वह सही एवं गलत नहीं होते बल्कि उनके व्यवहारों से उस चर के सम्बन्ध में बोध होता है। प्रश्नों को एक कथन के रूप में दिया जाता है और उन कथनों के उत्तर हाँ, ना तथा अज्ञात में दिये जाते हैं। जिनके आधार पर व्यक्तित्व और अभिरूचियों का मापन होता है।

इस सोपान की सबसे बड़ी समस्या उस समय होती है। जब किसी चर के मापन के लिए अनुमापनी की रचना की जाती है कि प्रश्नों का स्वरूप किस प्रकार का रखा गया है और किस रूप में उत्तर कराये गये हैं और उनके आकलन के लिए किस प्रकार अंक प्रदान किये जाएं। क्यांकि प्रमाणिक परिस्थितियों में अंकन की प्रक्रिया भी प्रमाणिक होनी चाहिए। इसमें चर की प्रकृति किस प्रकार की है इसका निर्धारण करना आवश्यक होता है। जैसे-अभिवृत्ति की प्रकृति द्विव-धुर्वी (Bi-polar) होती है, इसमें अभिवृत्ति धनात्मक तथा ऋणात्मक दोनो ही प्रकार की होती है। इस अभिवृत्ति में अंक क्रृणात्मक भी प्राप्त हो सकते हैं। अंकन की प्रक्रिया का बोध चर की परिभाषा से होना चाहिए।

1.19 आँकड़ों का वर्गीकरण

अर्थ व परिभाषा–वर्गीकरण वह प्रक्रिया है जिसमें एकत्रित समंकों को उनकी विविध विशेषताओं एवं गुणों के आधार पर अलग-अलग वर्गों में बाँटा जाता है। कौनर के शब्दों में "वर्गीकरण, तथ्यों को (यथार्थ या कल्पित रूप से) उनकी समानता तथा सादृश्यता के अनुसार, समूहों या वर्गों में क्रमबद्ध करने की क्रिया है और यह व्यक्तिगत इकाइयों की विविधता में पायी जाने वाली, गुणों की एकरूपता (unity) को व्यक्त करता है।"

होरेस सिक्राइस्ट के अनुसार "वर्गीकरण, समंकों को उनकी सामान्य विशेषताओं के अनुसार श्रेणियों एवं वर्गों में

क्रमबद्ध करने अथवा उनको भिन्न-भिन्न किन्तु सम्बद्ध हिस्सों में बाँटने की एक क्रिया है।

वर्गीकरण के मुख्य लक्षण (Main Features)–उपरोक्त परिभाषाओं के अनुसार वर्गीकरण के मुख्य लक्षण इस प्रकार हैं।

(1) वर्गीकरण के अन्तर्गत संकलित समंकों को विभिन्न वर्गों में बाँटा जाता है। वर्गों का निर्धारण जाँच के उद्देश्य, क्षेत्र एवं स्वरूप पर निर्भर करता है। उदाहरणार्थ, 1985.86 में जीवाजी विश्वविद्यालय (ग्वालियर) में पंजीकृत विद्यार्थियों की संख्या को निम्न में से किसी एक आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है–लिंग (जैसे लड़के-लड़कियाँ), आयु (जैसे 15.19, 20.24, वर्ष इत्यादि), लम्बाई, भार, धर्म, जाति, प्रान्तीयता आदि।

(2) तथ्यों का विभाजन समानता तथा सजातीयता के आधार पर किया जाता है, अर्थात् इस प्रकार की विशेषता वाले समंक एक वर्ग में रखे जाते हैं।

(3) वर्गीकरण वास्तविक या फिर काल्पनिक हो सकता है। तथ्यों के प्राकृतिक गुणों के आधार पर किया गया वर्कीकरण वास्तविक होता है और अनुसन्धानकर्त्ता की इच्छा पर आधारित वर्गीकरण, काल्पनिक होता है।

(3) वर्गीकरण इस प्रकार किया जाता है कि व्यक्तिगत इकाइयों की "विविधता में उनकी एकरूपता" (unity in diversity) स्पष्ट हो जाये।

वर्गीकरण के उद्देश्य या कार्य

नोट

(1) **सरल वं संक्षिप्त बनाना** (It simplifies and condenses the data)–वर्गीकरण का प्रमुख उद्देश्य समंकों की जटिलता को दूर करके उन्हें सरल व संक्षिपत रूप देना है। वर्गीकृत समंकों को समझना एवं याद करना आसान होता है अर्थात् उनमें बौधगम्यता (comprehensibility) होती है। उदाहरणार्थ, भारत के 68.5 करोड़ लोगों में से यदि प्रत्येक व्यक्ति की अलग-अलग आयु लिखी जाय तो समंकों के इस विशाल समुद्र से कोई भी निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। लेकिन इन समंकों को विभिन्न आयु-वर्गों में प्रस्तुत करने से न केवल समझने में सरलता होती है बल्कि जनसंख्या के आयु अनुसार वितरण की भी जानकारी प्राप्त हो जाती है।

(2) **तुलना में सहायक** (It facilitates comparison)–वर्गीकरण समंकों के बीच अर्थपूर्ण तुलना करने की सुविधा प्रदान करता है। उदाहरणार्थ, विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों का लिंग के अनुसार वर्गीकरण करके हम पुरुष और स्त्रियों के बीच उच्च शिक्षा के प्रचलन की तुलना आसानी से कर सकते हैं। जबकि अवर्गीकृत समंकों से इस प्रकार की कोई जानकारी प्राप्त नहीं की जा सकती।

(3) **स्पष्टता व निश्चितता लाना** (It brings clarity and certainty)–वर्गीकरण से सांख्यिकीय तथ्यों की समानता स्पष्ट हो जाती है। फिर, समंकों को समानता एवं असमानता के आधार पर कुछ निश्चित वर्गों में बाँटने से उनमें अनिश्चितता समाप्त होती है।

(4) **तर्कपूर्ण व्यवस्था प्रदान करना** (It provides logical arrangement)–वर्गीकरण समंकों को वैज्ञानिक एवं तर्कपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करने की सुविधा प्रदान करता है। उदाहरणार्थ, जनगणना समंकों को बिना किसी आधार के लिखने की बजाय उन्हें आयु, लिंग, जाति, धर्म, राज्य आदि वर्गों में बाँटकर व्यक्त करना नि:सन्देह एक तर्कपूर्ण किया है।

(5) **सम्बन्ध अध्ययन में सहायक**–(It helps to study the relationship)–समंकों का दो या दो से अधिक गुणों या मापदण्डों के आधार पर किया गया वर्गीकरण, उनके बीच पाये जाने वाले सम्बन्ध के अध्ययन को सम्भव बनाता है। उदाहरणार्थ, विद्यार्थियों की संख्या को लिंग तथा संकाय में बाँटकर, इन गुणों के पारस्परिक सम्बन्ध का अध्ययन हम आसानी से कर सकते हैं।

(6) **सारणीयन का आधार प्रस्तुत करना** (It provides basis of tabulation)–वर्गीकरण की क्रिया, सारणीयन तथा सांख्यिकीय विश्लेषण की अन्य क्रियाओं के लिये आधार प्रस्तुत करती है। बिना वर्गीकरण के सारणीयन असम्भव है और सारणीयन के अभाव में सांख्यिकीय विश्लेषण अव्यवहारिक है।

1.20 आदर्श वर्गीकरण के आवश्यक तत्व

यद्यपि वर्गीकरण, समंकों के विश्लेषण की एक महत्वपूर्ण तकनीक हैं किन्तु इसके लिये कोई निश्चित व कठोर नियम निर्धारित नहीं किये जा सकते क्योंकि किसी भी सांख्यिकीय अनुसन्धान में समंकों का वर्गीकरण मुख्यत: समंकों के स्वरूप और जाँच के उद्देश्य पर निर्भर करता है। तथापि एक आदर्श वर्गीकरण के लिये निम्न मार्गदर्शक नियमों को ध्यान में रखना आवश्यक है–

(1) **असंदिग्धता तथा स्पष्टता** (Unambiguity and Clarity)–विभिन्न वर्गों (classes) की परिभाषा अथवा निर्धारण इस प्रकार किया जाना चाहिये कि उनमें स्पष्टता व असंदग्धिता

नोट

के गुण मौजूद हों। कोई इकाई, किस वर्ग में रखी जाये इस बारे में किसी भी प्रकार की अनिश्चितात या कठिनाई नहीं होनी चाहिये। उदाहरणार्थ, यदि हमें व्यक्तियों के एक समूह को 'साक्षर' तथा 'निरक्षर' में वर्गीकृत करना है तो यह आवश्यक है कि इसे स्पष्टत: परिभाषित कर लिया जाये कि साक्षर तथा निरक्षर से हमारा क्या अभिप्राय है।

(2) **व्यापकता** (Comprehensiveness)—वर्गीकरण अपने-आप में इतना व्यापक होना चाहिये कि समग्र की प्रत्येक इकाई का किसी-न-किसी वर्ग में अवश्य समावेश हो जाये, अर्थात् कोई भी इकाई छुटनी नहीं चाहिये। उदाहरणार्थ, यदि वैवाहिक-स्थित (marital status) वे आधार पर 'विवाहित' तथा 'अविवाहित' केवल दो ही वर्ग बनाये गए हैं तो फिर ऐसी हालत में विधुर, विधवा, तलाक शुदा आदि इकाइयों का इस वर्गीकरण में समावेश नहीं हो पाएगा और यह अपूर्ण वर्गीकरण होगा। अत: वर्गीकरण करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि वर्ग पूर्ण अथवा व्यापक हों।

फिर, एक आदर्श वर्गीकरण के लिये यह भी आवश्यक है कि उसमें "अवशेष वर्ग" (residual class) जैसे 'अन्य' या 'विविध' न तैयार किये जायें क्योंकि ऐसे वर्ग समंकों की विशेषताओं को पूरी तरह से स्पष्ट नहीं कर पाते। हाँ! यदि वर्गों की संख्या बहुत अधिक है तो फिर अवशेष वर्ग तैयार किया जा सकता है अन्यथा वर्गीकरण का उद्देश्य (अर्थात् समंकों का संक्षिप्तीकनण) पूरा न हो पायेगा।

(3) **परस्पर अपवर्जी** (Mutually Exclusive)—विभिन्न वर्ग परस्पर अपवर्जी अथवा अपरस्परव्यापी (non- overlapping) होने चाहियें ताकि एक इकाई, केवल ही वर्ग-विशेष में शामिल हो। उदाहरणार्थ, यदि कालिज के विद्यार्थियों को लिंग के आधार पर 'पुरुष' तथा 'स्त्रियों' में बाँटा गया है तोये दोनों वर्ग परस्पर अपवर्जी हैं। परन्तु यदि इसी समूह को 'पुरुष' 'स्त्रियाँ' और 'नशीली वस्तु के आदी' वर्गों में बाँटा जाये तो यह वर्गीकरण त्रुटिपूर्ण होगा क्योंकि 'नशीली वस्तु के आदी' वर्ग में पुरुष तथा स्त्री, दोनों ही शामिल हैं। अत: ऐसी स्थिति में उचित यह होगा कि वर्गीकरण दो मानदण्डों (criteria) के आधार पर तैयार किया जाये। जेसे पहला पुरुष तथा स्त्री, और दूसरा इन दोनों वर्गों के विद्यार्थियों को पुन: नशीली वस्तु के आदी तथा गैर-आदी (non-addicts) में बाँटा जाए।

(4) **स्थिरता** (Stability)—परिणामों की अर्थपूर्ण तुलना के लिये वर्गीकरण में स्थिरता का होना आवश्यक है। दूसरे शब्दों में, पूरे जाँच कार्य के दौरान और उसी विषय की प्रत्येक अगली जाँच में, वर्गीकरण का एक ही ढांचा (आधार) रहना चाहिये अन्यथा आँकड़े तुलना-योग्य नहीं रहते। उदाहरणार्थ, भारत की पिछली तीन जनगणनाओं में जनसंख्या का पेशेवार वर्गीकरण भिन्न-भिन्न आधारों पर किया गया है जिसके कारण ये समंक तुलना के योग्य नहीं हैं।

(5) **अनुकूलता या उपयुक्तता** (Suitability)—वर्गों की रचना अनुसन्धान के उद्देश्य के अनुकूल होनी चाहिये। उदाहरणार्थ, यदि हम उच्च शिक्षा और लिंग में सम्बन्ध का अध्ययन करना चाहते हैं तो विद्यार्थियों का आयु और धर्म के अनुसार वर्गीकरण निरर्थक होगा। इसी प्रकार औद्योगिक श्रमिकों की आर्थिक स्थिति का पता लगाने के लिये उनकी आयु तथा वैवाहिक स्थिति के अनुसार वर्गीकरण करना व्यर्थ होगा। ऐसी स्थिति में 'आय' के आधार पर वर्गों की रचना की जानी चाहिये।

नोट

(6) **लचनशीलता** (Flexibilty)–एक उत्तम वर्गीकरण में लचनशीलता का गुण होना भी जरूरी है। लचनशीलता से आशय यह है कि नई परिस्थितियों के तद्नरूप विभिन्न वर्गों में संशोधन या समायोजन किया जा सके। कोई भी वर्गीकरण हमेशा के लिए उपयुक्त नहीं होता क्योंकि समय के साथ-साथ परिस्थितियों में परिवर्तन होता रहता है। उल्लेखनीय यह है कि यहाँ लचनशीलता का अर्थ वर्गीकरण की अस्थिरता (instability) से न लगाकर, वर्गों में संशोधन की सम्भावना से लगाया जाना चाहिए।

(7) **सजातीयता** (Homogeneity)–सजातीयता से आशय यह है कि प्रत्येक वर्ग की सभी इकाइयाँ इस गुण के तद्नरूप होनी चाहियें जिसके आधार पर वर्गीकरण किया गया है।

1.21 आँकड़ों के वर्गीकरण के प्रकार/पद्धतियाँ/विचार

आँकड़ों को चार समूहों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

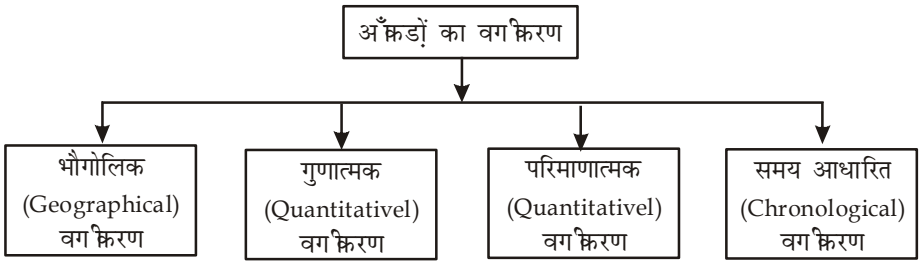

1. भौगोलिक वर्गीकरण (Geographical Classification)–जब संकलित आँकड़े क्षेत्र अथवा जगह के अनुसार वर्गीकृत किये जाते हैं, तो इसे भौगोलिक वर्गीकरण कहा जाता है। जनसंख्या का वितरण राज्यों, शहरों, कस्बों आदि में किया जाता है, जिसे भौगोलिक वर्गीकरण कहते हैं।

2. गुणात्मक वर्गीकरण (Qualitative Classification)–लिंग, ईमानदारी, रंग, दक्षता आदि के अनुसार आँकड़ों के वर्गीकरण को गुणात्मक वर्गीकरण कहा जाता है।

3. परिमाणात्मक वर्गीकरण (Quantitative Classification)–जब आँकड़े ऊँचाई, भार, अंक, आय व्यय, परिवार में बच्चों की संख्या आदि के आधार पर वर्गीकृत किये जाते हैं, तो इस प्रकार के वर्गीकरण को परिमाणात्मक वर्गीकरण कहते हैं।

4. समय आधारित वर्गीकरण (Chronological Classification)–समय अवधि के आधार पर वर्गीकरण समय आधारित (Chronological) वर्गीकरण का एक उदाहरण है।

1.22 आवृत्ति बंटन

एक आवृत्ति बंटन का आशय, किसी मापनीय चर (variable) के आधार पर समंकों के वर्गीकरण से है। मौरिस हमबर्ग के शब्दों में, "एक आवृत्ति वितरण आवृत्ति तालिका मात्र एक तालिका है जिसमें समंकों को वर्गों के रूप में समूहित किया जाता है और प्रत्येक वर्ग में आने वाली इकाइयों की संख्या को अंकित कर लिया जाता है, जो उन वर्गों की आवृत्तियाँ कहलाती हैं।" इस प्रकार मूल्यों या वर्गों और उनकी आवृत्तियों के क्रमबद्ध विन्यास को ही आवृत्ति बंटन कहते हैं। स्पष्ट है कि आवृत्ति वितरण की रचना के लिए दो तत्व आवश्यक है–(i) चर तथा (ii) आवृत्ति।

चर (Variable or Variate)–संख्यात्मक तथ्यों को चर कहते हैं। चर वह संख्यात्मक अभिलक्षण है जो मात्रा अथवा आकार में घटता-बढ़ता रहता है जैसे व्यक्तियों की आयु, लम्बाई, वजन, आय, मूल्य, मजदूरी, प्राप्तांक इत्यादि। हाँ!

नोट

यह ध्यान रहे भिन्न-भिन्न चरों की माप भिन्न-भिन्न इकाइयों में की जाती है जैसे आयु की माप वर्षों में, लम्बाई की माप सैन्टीमीटर में और आय की माप रुपयों में। चर दो प्रकार के होते हैं–(i) अखण्डित या सतत चर तथा (ii) खण्डित चर।

(i) अखण्डित या सतत चर (Continuous Variables)–सतत चर वह चर है जो निश्चित नहीं होता अर्थात् जिसका निश्चित सीमाओं के अन्तर्गत कोई भी मूल्य हो सकता है। दूसरे शब्दों में वह चर, जो एक सुनिश्चित सीमा में सभी सम्भाव्य मूल्यों (पूर्णांक तथा भिन्नात्मक) को शामिल कर लेता है, सतत चर कहलाता है। ग्रीगोरी एवं वार्ड के शब्दों में "अखण्डित चर वे हैं जो माप की इकाइयों में होते हैं, जिन्हें अनन्त स्तरों में बाँटा जा सकता है जैसे तापमान एक डिग्री दशमलवाँश तक, लम्बाइ एक इंच के दशमलवांश तक।" अत: स्पष्ट है कि सतत चर के अन्तर्गत समंक, अंकात्मक माप द्वारा प्रापत किये जाते हैं न कि गिनती द्वारा। उदाहरणार्थ, किसी स्कूल के विद्यार्थियों की आयु सतत चर है क्योंकि यह एक निश्चित सीमा, माना 3–15 वर्ष, के बीच कोई भी मूल्य (वर्ष, महीना, दिन आदि) हो सकती है।

(ii) खण्डित चर (Discrete Variables)–अखण्डित के विपरीत खण्डित चर वे हैं जिनके मूल्य निश्चित और खण्डित होते हैं। अर्थात इनमें विस्तार नहीं होता बल्कि एक मूल्य से दूसरे मूल्य के बीच कुछ सुनिश्चित अन्तर (definite break or gap) होता है। इस प्रकार खण्डित चर की इकाइयाँ विभाज्य नहीं होतीं अर्थात विस्तार रहित होती हैं। उदाहरणार्थ, दुर्घटनाओं की संख्या 0, 1, 2, 3, होगी, आधी, चौथाई या दशमलवांश में नहीं। इसी प्रकार परिवार में बच्चों की संख्या, क्रिकेट रनों की संख्या, प्रति पृष्ठ गलतियों की संख्या आदि खण्डित चर के उदाहरण हैं। तुलना की दृष्टि से नीचे दोनों प्रकार के चरों पर आधारित आवृति वितरण दिखाया गया है–

अखण्डित आवृत्ति वितरण		**खण्डित आवृत्ति वितरण**	
भार (किलो. में)	**व्यक्तियों की संख्या**	**बच्चों की संख्या**	**परिवारों की संख्या**
40–50	30	0	10
50–60	145	1	22
60–70	210	2	75
70–80	60	3	160
80–90	10	4	140
90–100	5	5	43
योग	460	योग	450

नोट–सतत चर से बनने वाली श्रेणियों को सतत रेणियाँ कहते हैं और खण्डित चरों द्वारा व्यक्त श्रेणियाँ, खण्डित रेणियाँ कहलाती हैं।

1.23 आवृत्ति वितरण की रचना

नोट

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि आवृत्ति-वितरण, खण्डित एवं अखण्डित चरों का सुबोध एवं संक्षिपत रूप में प्रस्तुतीकरण है। इस दृष्टि से आवृत्ति-वितरण की रचना भी निम्न दो रूपों में की जाती है–1. खण्डित आवृत्ति वितरण तथा 2. अखण्डित आवृत्ति वितरण।

1. **खण्डित आवृत्ति वितरण** (Discrete frequency distribution)–जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, इस वितरण में खण्डित चरों के आधार पर आवृत्ति तालिका का निर्माण किया जाता है। इसकी रचना-विधि बहुत सरल है–
   (i) सर्व प्रथम अव्यवस्थित समंकों (raw data) को आरोही (ascending) या अवरोही (descending) कम में सजा लिया जाता है। इस क्रिया को क्रम-विन्यास (array) कहते हैं।
   (ii) फिर, चर के सभी सम्भाव्य मूल्य (अर्थात् सबसे छोटे से लेकर सबसे बड़ा मूल्य) तालिका के प्रथम कॉलम में क्रम-वार लिख लिये जाते हैं। इन्हें पद-मूल्य कहते हैं।
   (iii) इसके बाद 'मिलान-चिह्नों' या 'टैली-बार' (Tally-marks or Tally-bars) की सहायता से प्रत्येक पद-मूल्य की आवृत्ति ज्ञात कर ली जाती है। इसे नीचे दिये गये उदाहरण से समझा जा सकता है।

उदाहरण (Illustration) 1: इन्दौर के एक शो-रूम द्वारा किसी एक दिन बेची गयी 30 कमीजों के साइज (सेमी. में) इस प्रकार हैं–

34	32	36	30	33	34	34	29	36	35	30	30	32	35	33
31	31	34	35	34	35	30	36	32	32	32	29	34	34	33

उपर्युक्त की सहायता से एक खण्डित आवृत्ति वितरण तैयार कीजिये।

हल (Solution)**:** चूँकि कमीज का सबसे छोटा साइज 29 सेमी. और सबसे बड़ा साइज 36 सेमी. है। अत: पहले 29 से 36 तक के पद-मूल्य बढ़ते हुए क्रम में लिख लिये जायेंगे। अब यह देखना है कि किस-किस साइज की कितनी-कितनी कमीजें बिकी हैं, अर्थात् प्रत्येक पद-मूल्य की आवृत्ति क्या है? सबसे पहली कमीज 34 नं. की बिकी हैं। अत: 34 साईज के सामने मिलान रेखाओं वाले कॉलम में एक 'बार' या 'खड़ी लकीर' खींच देंगे। इसके बाद दूसरी संख्या लेते हैं, जोकि 32 है। इसके लिये 32 साइज के सामने एक 'बार' खींच दी जायेगी। यही क्रिया अन्य सभी पदों के लिये दोहरायी जायेगी। अन्त में टैली-बार का अलग-अलग योग किया जाता हैं यही पद-मूल्यों की आवृत्तियाँ हैं। तालिका से स्पष्ट है कि साइज 29 की आवृत्ति 2 है, साइज 30 की आवृत्ति 4 है और कुल आवृत्तियों का योग 30 है, जोकि कमीजों की कुल संख्या (N) के बराबर है।

योग	मिलान-रेखायें (Tally-bars)	आवृत्ति (frequency)
29	||	2
30	||||	4
31	||	2
32	𝍸	5
33	|||	3
34	𝍸 ||	7

35						4
36					3
	योग	**30**

नोट

नोट–हाँ! टैली-बार लगाते समय, जब कोई मूल्य चार बार आ जाता है तो उसके पाँचवीं बार आने (occurrence) पर, हम पहली चार मिलान-रेखाओं को एक तिरछी बार (Cross tally mark) द्वारा काट देते हैं, जिसमें हमें 5 का एक समूह या खण्ड (block) प्राप्त हो जाता है। यद्यपि इसका कोई सैद्धान्तिक महत्व नहीं है, किन्तु पदों की संख्या अधिक होने पर इस क्रिया से, मिलान-रेखाओं की गणना करने में काफी सुविधा हो जाती है।

2. **सतत या अखण्डित आवृत्ति वितरण** (Continuous frequency distribution)–यह आवृत्ति वितरण वर्गान्तरों के अनुसार वर्गीकण पर आधारित है और इसकी रचना सतत चरों की सहायता से की जाती है। सबसे पहले चर-मूल्यों को आरोही या अवरोही क्रम में सजाया जाता है। फिर, सबसे छोटे तथा सबसे बड़े पद मूल्य के अन्तर (range) को, उपयुक्त संख्या के समान वर्गों या वर्गान्तरों में विभाजित कर दिया जाता है। इसके बाद मिलान-रेखाओं की सहायता से प्रत्येक वर्ग में पड़ने वाली इकाइयों की संख्या अर्थात् आवृत्ति ज्ञात कर ली जाती है। आवृत्ति वितरण की रचना निम्न उदाहरण से स्पष्ट की गयी है।

उदाहरण (Illustration) 2: किसी कारखाने में कार्यरत् 40 श्रमिकों की दैनिक आय (रु. में) निम्नलिखित है–

25	34	26	38	32	31	36	42	30	34
20	35	35	39	40	28	33	39	40	29
35	30	30	41	35	39	27	22	43	28
38	34	32	32	25	30	31	29	38	44

उपर्युक्त आँकड़ों से एक वर्गीकृत बारम्बारता वंटन सारणी बनाइये, जिसका प्रारम्भ 20-25 से हो और वर्ग-अन्तराल हमेशा 5 रहे।

हल (Solution): चूँकि प्रश्न में प्रथम-वर्गान्तर 20-25 और वर्ग-विस्तार 5 रखने के लिये कहा गया हैं अत: उसी के अनुसार वर्गान्तर तैयार किये जायेंगे–

सतत आवृत्ति वितरण तालिका की रचना

आय (रु. में) (X)	मिलान-रेखायें (Tally-bars)	आवृत्ति (*f*)
20–25	||	2
25–30	𝍸 |||	8
30–35	𝍸 𝍸 |||	13
35–40	𝍸 𝍸		11
40–45	𝍸		6
योग	**40**	**40**

व्याख्या (Explanation)–(i) दिये गये समंकों का पहला मूल्य 25 है। इसे 20–25 वर्ग के बजाय 25–30 वर्ग में शामिल किया जायेगा, क्योंकि वर्गान्तरों की रचना अपवर्जी रीति (exclusive method) के अनुसार की गई है। इसी आधार पर अन्य मूल्यों का वर्गीकरण किया गया है।

(ii) चूँकि सबसे बड़ा मूल्य 44 है, इसलिये अन्तिम वर्गान्तर 40–45 बनाया गया है। यदि प्रश्न में कोई पद-मूल्य 44 से बड़ा, माना 45 या 46 दिया गया होता, तो फिर हमें एक अतिरिक्त वर्गान्तर 45-50 तैयार करना पड़ता।

नोट

उदाहरण (Illustration) 3: सांख्यिकी में 100 में से 50 छात्रों के प्राप्तांक नीचे दिये गये हैं–

70	25	55	36	31	59	42	63	57	39
45	65	60	45	47	49	63	54	53	64
33	75	65	42	39	41	82	52	55	35
64	30	58	35	61	15	65	48	42	26
50	20	52	40	53	55	45	46	45	18

10–10 प्राप्तांकों का वर्ग-विस्तार लेते हुए एक आवृत्ति वितरण की रचना कीजिये। प्रथम वर्गान्तर 0–10 रखिये।

हल (Solution): सर्व-प्रथम अव्यवस्थित ढंग से दिये गए इन समंकों को आरोही क्रम में विन्यासित किया जायेगा।

15	30	36	42	45	49	53	57	63	65
18	31	39	42	45	50	54	58	63	65
20	33	39	42	46	52	55	59	64	70
25	35	40	45	47	52	55	60	64	75
26	35	41	45	48	53	55	61	65	82

चूंकि प्रश्न में प्रथम-वर्गान्तर 0–10 और वर्ग-विस्तार 10 रखने के लिये कहा गया है। अतः उसी के अनुसार वर्गान्तर तैयार किये जायेंगे–

सतत आवृत्ति बंटन की रचना

प्राप्तांक	टैली-बार	आवृत्ति
0–10		0
10–20	| |	2
20–30	| | |	3
30–40	𝍸 | | |	8
40–50	𝍸 𝍸 | | |	13
50–60	𝍸 𝍸 | |	12
60–70	𝍸 | | | |	9
70–80	| |	2
80–90	|	1
योग	**50**	$\Sigma f = 50$

नोट–यदि परीक्षक द्वारा प्रथम वर्गान्तर 0–10 लेने का निर्देश न दिया होता, तब प्रथम वर्गान्तर 10–20 होगा क्योंकि 0–10 के बीच का कोई पद-मूल्य नहीं है।

नोट

सतत आवृत्ति बंटन से सम्बन्धित आपकी कुछ शंकायें व उनके समाधान–उपरोक्त आवृत्ति तालिका को देखने के बाद विद्यार्थियों के मन में अनेक प्रकार की शंकायें या प्रश्न उठ सकते हैं। जैसे वर्गों की संख्या कितनी होनी चाहिये? अथवा यहाँ 9 वर्ग-ही क्यों बनाये गये हैं? वर्गों का विस्तार क्या रखा जाये? अथवा यहाँ वर्ग-विस्तार 10 ही क्यों रखा गया है, 15 या 20 क्यों नहीं रखा गया है? फिर, 30 पद को तीसरे वर्ग (20–30) में क्यों नहीं रखा गया, 30–40 में ही क्यों रखा गया है? जब संमक माला का अधिकतम मूल्य 82 है तब वर्ग 90 तक क्यों बनाये गये हैं? इत्यादि-इत्यादि। इन सभी प्रश्नों का उत्तर हम इसी अध्याय में थोड़ा आगे चलकर सविस्तार रूप में देंगे।

वर्गान्तरों के अनुसार वर्गीकरण की रीतियाँ (Methods of Classification According to Class Intervals)–वर्गान्तरों के अनुसार समंकों के वर्गीकरण की निम्न दो रीतियाँ हैं–(i) अपवर्जी रीति (exclusive metod) तथा (ii) समावेशी रीति (inclusive method)।

(i) अपवर्जी रीति (Exclusive Method)–वर्गान्तर-रचना की इस रीति में एक वर्ग की 'ऊपरी सीमा' (Upper limit) उससे अगलेवर्ग की 'निचली सीमा' (Lower limit) के बराबर (equal) होती है। दूसरे शब्दों में एक वर्ग की ऊपरी सीमा, उससे अगले वर्ग की निचली सीमा होती है। नीचे उदाहरण से यह स्पष्ट है कि प्रत्येक वर्ग की ऊपरी सीमा, उससे अगले वर्ग की निचली सीमा के बाबर है। इसको अपवर्जी इसलिये कहा जाता है कि यदि कोई पद (item) किसी वर्ग की ऊपरी सीमा के बराबर है तो वह पद उस वर्ग में सम्मिलित न होकर, उससे अगले वर्ग में शामिल किया जाता है। जैसे 20 अंक प्राप्त करने वाले विद्यार्थी को 10.20 वर्ग के बजाय, 20.30 वर्ग में शामिल किया जायेगा क्योंकि 10.20 वर्गान्तर, 10 से लेकर परन्तु 20 से कम मूल्य के पदों का समावेश अपने अन्दर करता है। अपवर्जी रीति की मान्यता यह है कि किसी वर्ग की 'निचली सीमा' के बराबर वाला पद-मूल्य उसी वर्ग में शामिल होता है जबकि 'ऊपरी सीमा' के बराबर वाला पद-मूल्य उस वर्ग से बाहर हो जाता है। यह उल्लेखनीय है कि वर्गान्तरों को अपवर्जी रीति के अनुसार व्यक्त करने का अच्छा तरीका नीचे स्थिति-II के अनुसार है–

I **Marks**	**II** **Marks**	**प्राप्तांक**
10–20	10 but under 20	10 परन्तु 20 से कम
20–30	20 ,, ,, 30	20 ,, 30 ,, ,,
30–40 or	30 ,, ,, 40 or	30 ,, 40 ,, ,,
40–50	40 ,, ,, 50	40 ,, 50 ,, ,,
50–60	50 ,, ,, 60	50 ,, 60 ,, ,,

(ii) समावेशी रीति (Inclusive Method)–समावेशी वर्ग के होते हैं जिनमें, उनकी निचली तथा ऊपरी दोनों सीमाओं का समावेश होता है। इस प्रकार अपवर्जी वर्गीकरण के विपरीत, समावेशी वर्गीकरण में किसी वर्ग की ऊपरी सीमा के बराबर का पद-मूल्य भी उसी वर्ग में शामिल हो जाता है। पृष्ठ 107 पर दिये उदाहरण की स्थिति-I में, पहले वर्ग (10-19)

में उसकी दोनों सीमाएँ 10 तथा 19 शामिल हैं। समावेशी वर्गों को स्थिति-प्प के अनुसार भी व्यक्त किया जा सकता हैं समावेशी वर्गीकरण की पहचान यह है कि (i) एक वर्ग की ऊपरी सीमा और उससे अगले वर्ग की निचली सीमा बराबर नहीं होती, और (ii) उनमें अधिकतम अन्तर 1 का होता है।

नोट

तकनीकी टिप्पणी (Technical Note)–यह निर्णय लेना कि वर्गान्तरों की रचना अपवर्जी रीति द्वारा की जाये अथवा समावेशी रीति द्वारा, यह इस बात पर निर्भर करता है कि विचाराधीन चर (variable) की प्रकृति क्या है अर्थात्, वह अखण्डित चर (continuous) है या खण्डित चर (discrete variable)। स्मरण रहे, अखण्डित चरों जैसे प्राप्तांक, आयु, लम्बाई, भार आदि के मामले में अपवर्जी रीति का प्रयोग किया जाना चाहिए। इसके विपरीत खण्डित चरों जैसे श्रमिकों की संख्या के अनुसार फैक्ट्रियों का वर्गीकरण, निवास या परिवारों के अनुसार सदस्य-संख्या आदि के लिये समावेशी रीति का ही प्रयोग किया जाता है।

I	II	Conversion	
10–19	11–20	9.5–19.5	10.5–20.5
20–29	21–30	19.5–29.5	20.5–30.5
30–39	31–40	29.5–39.5	30.5–40.5
40–49	41–50	39.5–49.5	40.5–50.5
50–59	51–60	49.5–59.5	50.5–60.5
60–69	61–70	59.5–69.5	60.5–70.5

एक कठिनाई–उपरोक्त वर्गीकरण की एक कठिनाई यह है कि इसमें 19 से 20 के बीच के दशमलव मूल्यों (जैसे 19.6) का समायोजन नहीं हो सकता। अत: ऐसी स्थिति में समावेशी वर्गान्तरों को अपवर्जी वर्गानतरों में बदल लेना चाहिये।

समावेशी वर्गान्तरों को अपवर्जी बनाने की विधि–इसके लिये एक वर्ग की ऊपरी सीमा और उससे अगले वग्र की निचली सीमा के अन्तर का आधा करके, उसे निचली सीमाओं में से घटा दिया जाता है और ऊपरी सीमाओं में जोड़ दिया जाता है। इस परिवर्तन (conversion) से एक तो गणना-क्रिया आसान हो जाती है, दूसरा बहुलक व मध्यका के आगणन के लिये वह परिवर्तन जरूरी होता है। सूत्रानूसार–

$d = 20 - 19 = 1$ या $21 - 20 = 1 \Rightarrow \frac{d}{2} = 0.5$

$d/2$ को संशोधन कारक (correction factor) कहते हैं।

ऊपर दिये गये समावेशी वर्गान्तरों को अपवर्जी बनाकर दिखाया गया है। हाँ! इन नये अपवर्जी वर्गों की निचली तथा ऊपरी सीमाओं को, **'वर्ग सीमायें'** (class boundries) कहते हैं।

अपवर्जी तथा समावेशी रीति में अन्तर–इन दोनों रीतियों में मुख्य अन्तर इस प्रकार हैं–(i) अपवर्जी रीति में एक वर्ग की ऊपरी सीमा उससे अगले वर्ग की निचली सीमा के बराबर होती है, जबकि समावेशी रीति में इन दोनों सीमाओं में अन्तर होता है और यह अन्तर अधिकतर 1 का होता है। (ii) इस प्रकार अपवर्जी वर्गों में जहाँ निरनतरता या अविच्छिन्नता (continuity) पायी जाती है, वहाँ समावेशी वर्गान्तरों में विच्छिन्नता (discontinuity) होती है। (iii) अपवर्जी रीति में एक वर्ग

नोट

की ऊपरी सीमा के बराबर मूल्य की इकाई, उस वर्ग में शामिल नहीं की जाती, बल्कि उससे अगले वर्गान्तर में शामिल की जाती है। किन्तु इसके विपरीत समावेशी रीति में ऊपरी सीमा के बराबर मूल्य की इकाई का भी, उसी वर्ग में समावेश होता है। (iv) किसी भी सांख्यिकीय माप की गणना के लिये अपवर्जी वर्गान्तरों में संशोधन करने की कोई आवश्यकता नहीं होती। किन्तु समावेशी वर्गान्तरों में बहुलक तथा मध्यका का आगणन करते समय उनमें संशोधन करना जरूरी होता है, अर्थात् उन्हें अपवर्जी वर्गान्तरों में बदलना पड़ता है। (v) जब दिये हुये मूल्य पूर्णांकों में हों तो समावेशी रीति अधिक उपयुक्त होती है, अन्यथा अपवर्जी रीति अच्छी समझी जाती है।

उदाहरण (Illustration) **4:** रांची के एक पल्बिक स्कूल के 30 बच्चों का भार (fdyksxzke) में इस प्रकार है–

8	7	16	15	14	12	10	10	9	11	13	13	17	16	12
13	16	14	13	12	11	9	8	16	17	18	19	20	20	21

उपर्युक्त समंकों की सहायता से अपवर्जी तथा समावेशी रीति द्वारा 3.3 का वर्ग-विस्तार लेते हुये सतत आवृत्ति वितरण तैयार कीजिये।

हल (Solution): सर्वप्रथम समंकों को आरोही क्रम में विन्यासित किया जायेगा।

7	8	8	9	9	10	10	11	11	12	12	12	13	13	13
13	14	14	15	16	16	16	16	17	17	18	19	20	20	21

अब 3 का वर्ग-विस्तार (i) लेकर वर्गान्तरों की रचना की जायेगी–

अपवर्जी तथा समावेशी रीति द्वारा सतत आवृत्ति बंटन की रचना

अपवर्जी रीति			**अपवर्जी रीति**		
Weights	**Tallies**	***f***	**Weights**	**Tallies**	***f***
6–9	|||	3	7–9	||||	5
9–12	|||| |	6	10–12	|||| ||	7
12–15	|||| ||||	9	13–15	|||| ||	7
15–18	|||| ||	7	16–18	|||| ||	7
18–21	||||	4	19–21	||||	4
21–24	|	1	22–24	—	0
N or $\Sigma f = 30$					N or $\Sigma f = 30$

ऊपर समावेशी रीति के कॉलम में केवल पाँच वर्गान्तर ही तैयार किये जायेंगे, क्योंकि अन्तिम वर्ग की आवृत्ति शून्य है। हाँ! यदि वर्ग-सीमायें 6-8, 8-11, ...रखी जायें, तब 6 वर्ग तैयार होंगे और उनकी आवृत्तियाँ क्रमशः 3, 6, 9, 7, 4 व 1 होंगी।

1.24 साधारण अथवा संचयी आवृत्ति श्रृंखला

संचयी आवृत्ति श्रृंखला (Cumulative Frequency Series) पहले वाले समूह में या अगले समूह में इकाइयाँ जोड़कर बनाई जाती है। यह विभिन्न समूहों की आवृत्तियों का योग है। यह श्रृंखला या तो (i) "से कम" (Less than) अथवा (ii) "से अधिक" (More than) के रूप में तैयार की जाती

है। उपरोक्त उदाहरण लेकर हम दोनों प्रकार की संचयी आवृत्तियों की शृंखला निम्नलिखित रूप से तैयार कर सकते हैं–

नोट

"से कम" संचयी आवृत्ति तालिका (Less than Cumulative Frequency Table)

प्राप्त अंक (Marks Obtained)	मिलान रेखायें (Tally-Bars)	विद्यार्थियों की संख्या (No. of Students)
250 से कम	||	02
300 " "	|||| |||	08
350 " "	|||| |||| ||||	15
400 " "	|||| |||| |||| ||||	20
450 " "	|||| |||| |||| |||| ||||	25

"से अधिक" संचयी आवृत्ति तालिका (More than Cumulative Frequency Table)

प्राप्त अंक (Marks Obtained)	मिलान रेखायें (Tally-Bars)	विद्यार्थियों की संख्या (No. of Students)
250 से कम	|||| |||| |||| |||| ||||	
250 " "	|||| |||| |||| |||| |	21
300 " "	|||| |||| ||||	14
350 " "	|||| ||||	09
400 " "	||||	04
450 " "	—	—

1.25 सारणीयन

समंकों का वर्गीकरण करने के बाद उन्हें व्यवस्थित ढंग से सारणियों के रूप में प्रस्तुत करना आवश्यक होता है ताकि आंकड़ों से यथोचित निष्कर्ष निकाले जा सकें। क्राक्सटन एवं काउडेन का कहना है कि "स्वयं अपने प्रयोग हेतु या अन्य लोगों द्वारा प्रयोग किये जाने के उद्देश्य से समंकों को किसी उपयुक्त रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिये। आमतौर पर समंक या तो सारणियों में क्रमबद्ध किये जाते हैं या आरेखीय (graphic) विधियों द्वारा उनका चित्रण किया जाता है।"

जहाँ तक सारणीयन के अर्थ का प्रश्न है सारणीयन, समंकों को प्रस्तुत करने की एक व्यवस्थिति पद्धति है। **प्रो. ब्लेयर** के शब्दों में, "विस्तृत अर्थ में, सारणीयन समंकों की खानों (columns) और पंक्तियों (तवे) के रूप में एक क्रमबद्ध व्यवस्था है।"

प्रो. कौनर के मतानुसार, "सारणीयन किसी विचाराधीन समस्या को स्पष्ट करने के उद्देश्य से किया जाने वाला सांख्यिकीय तथ्यों का क्रमबद्ध एवं सुव्यवस्थित प्रस्तुतीकरण है।"

उद्देश्य (Objects)–सारणीयन के तीन उद्देश्य हैं–(i) समंकों को व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करना (ii) आंकड़ों को संक्षिप्त ढंग से प्रकट करना, तथा (iii) समस्या को अधिक सरल व स्पष्ट बनाना।

सारणीयन का महत्व या लाभ

नोट

(1) **सरलता**–सारणीयन से समंकों की जटिलता समाप्त हो जाती है और फलस्वरूप आवश्यक सूचनायें जल्दी तथा आसानी से समझ में आ जाती हैं।

(2) **स्थान व समय की बचत**–सरणीयन द्वारा विशाल तथ्यों को थोड़े व संक्षिप्त रूप में व्यक्त किया जाता है, जिससे समय तथा स्थान की बचत होती है।

(3) **तुलनात्मक अध्ययन की सुविधा**–सारणीयन-क्रिया तुलनात्मक अध्ययन को सम्भव बनाती है क्योंकि इसमें समान व तुलना-योग्य समंकों को परस्पर निकटवर्ती खानों में रखा जाता है।

(4) **आकर्षक प्रदर्शन**–सारणीयन के फलस्वरूप नीरस आँकड़े भी आकर्षक लगने लगते हैं।

(5) **सांख्यिकी विवेचन में सहायक**–सारणीबद्ध समंकों का सांख्यिकीय विवेचन जैसे माध्य, अपकिरण, विषमता, सह-सम्बन्ध आदि आसानी से ज्ञात किया जा सकता है।

1.26 सारणीयन व वर्गीकरण में अन्तर

वर्गीकरण तथा सारणीयन में काफी अन्तर है। **प्रथम,** सारणीयन समंकों के वर्गीकरण के बाद की एक स्थिति है। सर्वप्रथम आँकड़ों को वर्गीकृत किया जाता है, तत्पश्चात् उन्हें विभिन्न सारणियों में प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रकार वर्गीकरण, सारणीयन का आधार है। **द्वितीय,** वर्गीकरण में संकलित समंकों को उनके समान व असमान गुणों के आधार पर विभिन्न वर्गों (classes) या श्रेणियों (series) में बाँटा जाता है जबकि सारणीयन में उन्हीं वर्गीकृत तथ्यों को खानों और पंक्तियों में प्रस्तुत किया जाता है। इस दृष्टि से सारणीयन वर्गीकरण का एक यन्त्रात्मक पहलू (mechanical aspect) है। **तृतीय**, वर्गीकरण सांख्यिकीय विश्लेषण की एक विधि है जबकि सारणीयन समंकों के प्रस्तुतीकरण की एक प्रक्रिया है।

1.27 सारणी के प्रमुख अंग

(1) **शीर्षक** (Title)–प्रत्येक सारणी का एक संक्षिप्त, स्पष्ट एवं पूर्ण शीर्षक होना चाहिये ताकि समंकों की एक ही दृष्टि में जानकारी हो सके।

(2) **खाने की पंक्तियाँ** (Columns and Rows)–खानों व पंक्तियों की संख्या सारणीयन के उद्देश्य एवं प्रस्तुत सामग्री के आकार को ध्यान में रखकर पहले ही निश्चित कर लेनी चाहिये। ध्यान रहे, खानों की संख्या अधिक होने से समस्या जटिल व अस्पष्ट हो सकती है। प्रत्येक खाने का उपशीर्षक (capction) देना आवश्यक है। उपशीर्षक यथासम्भव संक्षिप्त होना चाहिए और प्रत्येक खाने पर क्रम संख्या लिख देनी चाहिये।

(3) **खानों का रूलिंग** (Ruling of Columns)–विषय-सामग्री का महत्वपूर्ण भाग मोटी या दोहरी रेखाओं से बनाना चाहिये जिससे कि द्रष्टा का ध्यान तुरनत आकर्षित हो सके। कम महत्व के खानों को हल्की रेखाओं द्वारा प्रदर्शित किया जाना चाहिये।

(4) **तुलनात्मक अध्ययन** (Comparative Study)–ध्यान रहे, अजिन समंकों की परस्पर तुलना करनी होवे पास-पास रक्खे जायें।

(5) **पदों की व्यवस्था** (Arrangement of Items)–एक आदर्श सारणी की दृष्टि से यह आवश्यक होगा कि विभिन्न पदों को उनके महत्व के अनुसार सारणी में स्थान दिया जाय अर्थात महत्वपूर्ण पदों को पहले और कम महत्व वाले पदों को बाद में रखा जाये।

नोट

अधिकतर उन पदों को पहला स्थान दिया जाता है जिनको कई वर्गों में विभक्त करना होता है।

(6) **टिप्पणियाँ** (Foot-notes)–यदि समंकों से सम्बन्धित कोई आवश्यक सूचना सारणी में देने से रह गई है, अथवा किसी तथ्य से सम्बन्धित विशेष स्पष्टीकरण की आवश्यकता है तो उसके लिये सारणी के नीचे व्याख्यात्मक टिप्पणी (explanatory note) दे देनी चाहिये।

(7) **स्त्रोत** (Source)–सारणी को संदेहरहित व प्रभावशाली बनाने के लिये समंकों का स्त्रोत अवश्य स्पष्ट कर देना चाहिये।

(8) **योग** (Total)–सारणी में प्रयुक्त होने वाले समंकों के योग व अन्तर्योग की व्यवस्था इस प्रकार की जानी चाहिये कि खानों व पंक्तियों के योग की जाँच व स्पष्टीकरण (verification) स्वत: ही हो सके।

(9) **इकाई एवं व्युत्पन्न समंक** (Unit Derivatives)–समंकों के माप की इकाई को सम्बन्धित खानों के ऊपर लिख देना चाहिये। इसी प्रकार प्रतिशत, अनुपात, गुणक व माध्य आदि व्युत्पन्न समंकों को मूल्य समंकों के पास वाले खाने में रखना चाहिये।

(10) **सामान्य नियम** (General Rules)–इसके अलावा सारणी का आकर्षक होना आवश्यक है तथा उसका आकार दिये हुए स्थान अर्थात् कागज के अनुकूल हो। सारणी स्वयं में समंकों की एक मुंह बोलती तस्वीर होनी चाहिये। **डॉ. बाउले** का कहना है कि "एक सामान्य व्यक्ति का सारणी को समझने के लिये किया गया विशेष प्रयत्न, सही अर्थों में, सारणी की दोषपूर्ण रचना समझी जानी चाहिये।" वास्तव में सारणी समंकों का एक ऐसा दर्पण है जिसमें झाँकने पर वस्तु-स्थिति की पूर्ण जानकारी तुरन्त हो जानी चाहिये।

ध्यान रहे, सारणीयन एक सरल नहीं वरन् तानित्रक कार्य है। **श्री हैरी जरोम** (Harry Jerome) के मतानुसार "एक आदर्श सांख्यिकीय सारणी निपुणता व प्राविधि की कसौटी है और स्पष्ट रूप से प्रस्तुत की गई सूचनाओं तथा स्थान की मितव्ययिता की सर्वोत्कृष्ट कला-कृति है।" संक्षेप में सारंणीयन के कार्य में निपुणता, अनुभव व सामान्य विवेक का होना अतयन्त आवश्यक है। **डॉ. बाउले का** कहना है कि "संकलन तथा सारणीयन में सामान्य विवेक एक प्रमुख आवश्यकता है तो अनुभव प्रमुख शिक्षक।"

सारणी के प्रमुख 'भाग' निम्न प्रारूप में स्पष्ट किये गए हैं–

तालिका 3.1 शीर्षक (Title)

(शीर्ष संकेत)

Stub Heading	Caption				Total
	Sub-Heads		Sub-Heads		
	Heading Head	Heading Head	Heading Head	Heading Head	
Head					

Source Foot note

1.28 सारणियों के प्रकार

सांख्यिकीय सारणियों का वर्गीकरण मुख्य रूप से (अ) उद्देय, (ब) मौलिकता एवं (स) रचना के आधार पर किया जाता है।

नोट

(अ) उद्देश्य के आधार पर सारणीयन–उद्देश्य के आधार पर सारणियाँ दो प्रकार की होती हैं–(i) **सामान्य उद्देश्य वाली सारणी** (General Pupose Table) तथा (ii) विशेष उद्देश्य वाली सारणी (Special Purpose Table)। सामान्य उद्देश्य वाली अाविा सन्दर्भ सारणी का प्राथमिक उद्देश्य समंकों को इस प्रकार प्रस्तुत करना होता है कि व्यक्तिगत इकाइयों का पाठकों द्वारा तुरन्त पता लगाया जा सके (क्राक्स्टन एवं काउडेन)। यह सारणी अत्यधिक उपयुक्त नहीं समझी जाती है। यही कारण है कि इसका प्रयोग अधिकतर सरकारी रिपोर्टों के सन्दर्भ में किया जाता है। इसके विपरीत विशेष उद्देश्य वाली अथवा सारांश सारणी (Summary Table) किसी उद्देश्य विशेष की पूर्ति के लिए तैयार की जाती है तथा इसका आधार सामान्य सारणी से अपेक्षाकृत छोटा होता है।

(ब) मौलिकता के आधार पर सारणीयन–मौलिकता के आधार पर सारणियाँ दो प्रकार की होती हैं–(i) मौलिक या प्राथमिक सारणी (Original of Primary Table) तथा (ii) व्युत्पन्न सारणी (Derivative Table)। मौलिक सारणी में समंकों को उनके मौलिक रूप में रखा जाता है जबकि व्युत्पन्न सारणी में समंकों के योग, प्रतिशत, अनुपात, गुणांक व माध्य आदि मूल्यों को प्रस्तुत किया जाता है।

(स) रचना के आधार पर सारणीयन–रचना अथवा बनावट के आधार पर सारणियाँ दो प्रकार की होती हैं–

(1) सरल सारणी (Simple Table)–जब समंकों को केवल एक ही गुण अथवा विशेषता के आधार पर प्रस्तुत किया जाता है, तो उसे सरल सारणी कहते हैं, जैसे जनसंख्या का आयु (age) अथवा लिंग (sex) अथवा राज्यों के अनुसार वितरण। सरल अर्थात् एक-गुण सारणी का उदाहरण नीचे दिया गया है–

उदाहरण:

Distribution of Population by Age-groups.

Age-Groups (Years)	Numbers of Persons Millions
0-20	... ...
20-50	... ...
over 50	... ...
Total	... ...

(2) जटिल सारणी (Complex Table)–जब समंकों को एक से अधिक विशेषताओं के आधार पर प्रस्तुत किया जाता है तो उसे जटिल सारणी कहते हैं। जटिल सारणी पुन: तीन रूपों में विभाजित की जा सकती है–

(i) **द्विगुण सारणी** (Double or Two-way Table)–द्विगुण सारणी उसे कहते हैं जिसमें समंकों की केवल दो विशेषताओं का समावेश किया जाता है जैसे

जनसंख्या का आयु तथा लिंग (Age and Sex) आधार पर वितरण। इस दृष्टि से द्विगुण सारणी का उदाहरण इस प्रकार होगा–

नोट

उदाहरण:

Distribution of Population by Age and Sex

Age-Groups (Years)	Numbers of Persons (Millions)		
	Male	Female	Total
0-20	...	...	...
20-50	...	...	...
over 50	...	...	...
Total	...	...	...

(ii) त्रिगुण सारणी (Treble or Three-way Table)–त्रिगुण सारणी में एक साथ तीन गुणों के आधार पर समंकों को प्रदर्शित किया जाता है जैसे जनसंख्या का आयु, लिंग तथा साक्षरता (Age, Sex and Literacy) के अनुसार वितरण।

(iii) बहुगुण सारणी (Manifold or Higher Order Table)–जब समंकों को तीन से अधिक विशेषताओं के आधार पर प्रस्तुत किया जाता है तो उसे बहुगुण सारणी कहते हैं। उदाहरण के लिये जनसंख्या को आयु, लिंग, साक्षरता तथा राज्यों में वितरण के आधार पर इस प्रकार दिखाया जायेगा–

उदाहरण:

जनसंख्या का राज्य, आयु लिंग व साक्षरता के अनुसार वितरण

(Distribution of Population by States, Age, Sex and Literacy)

राज्य States	आयु-वर्ग Age-Groups	व्यक्तियों की संख्या (मिलियन)								
		पुरुष (Male)			स्त्री (Female)			योग (Total)		
		L	IL	T	L	IL	T	साक्षर	निरक्षर	योग
1. Assam असम	0–20	20–50 over 50								Total
2. Bihar बिहार	0–20	20–50 over 50								Total

इस सारणी को इसी प्रकार अन्य प्रान्तों के लिए बढ़ाया जा सकता है।

उदाहरण (Illustration) 5 : एक रिक्त सारणी बनाइये जिसमें जनशक्ति समंकों का वितरण आयु (age), लिंग (sex) तथा ग्रामीण-शहरी निवास (rural-urban characterof residence) के आधार पर दिखाया जा सके।

हल (Solution): प्रस्तुत प्रश्न के लिए त्रिगुण सारणी तैयार की जायेगी। आयु-वर्ग चार माने गये हैं। जनशक्ति का आयु, लिंग तथा ग्रामीण-शहरी निवास के अनुरूप वितरण (Distribution of Manpower by Age, Sex and Character of Residence)

नोट

Age-Groups आयु वर्ग	Urban (शहरी)			Rural (ग्रामीण)			Total (योग)		
	Male	Female	Total	Male	Female	Total	Male	Female	Total
0-20									
20-40									
40-60 over 60									
Total									

1.29 सारांश

सांख्यिकी का मूल उद्देश्य अनुसन्धान कार्य की विभिन्न समस्याओं का अध्ययन, उनके कारण एवं परिणामों का विश्लेषण करना है। सांख्यिकी रीतियों के द्वारा ही किसी समस्या से सम्बन्धित भूतकाल के समंकों को एकत्र करके उनकी वर्तमान परिस्थितियों से सापेक्षिक तुलना की जाती है। इन्हीं संमकों के द्वारा घटनाओं में होने वाले परिवर्तनों के कारणों और उनके परिणामों का विश्लेषण किया जाता है।

आधुनिक समय में सांख्यिकी की लगातार बढ़ती हुई महत्ता का मुख्य कारण उसके द्वारा विज्ञान की विभिन्न शाखाओं के महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न होना है। किसी भी क्षेत्र में सांख्यिकी रीतियों द्वारा समंकों को एकत्रित करने तथा उनका विश्लेषण करके उचित निष्कर्ष निकालने वाले व्यक्ति को सांख्यिक (Statistician) कहते हैं।

शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है। उसका मूलभूत उद्देश्य व्यक्ति में ऐसे परिवर्तन लाना होता है, जो सामाजिक विकास एवं व्यक्ति के जीवन को उन्नतशील बनाने के दृष्टिकोण से अनिवार्य होते हैं। तृतीय अनुसंधान सर्वेक्षण में डॉ. शिव के. मित्रा ने सुझाव दिया है कि उन समस्याओं को अनुसंधान हेतु प्राथमिकता दी जानी चाहिए, जिनकी राष्ट्रीय शिक्षा-नीतियों में उठाई गई समस्याओं के समाधान उपलब्ध कराने हेतु तत्काल आवश्यकता है।

समाजशास्त्र में शोध की विधियाँ दो तरह की होती हैं–परिमाणात्मक पद्धतियाँ तथा गुणात्मक पद्धतियाँ। परिमाणात्मक अध्ययन पद्धतियाँ मूर्त तथ्यों को संख्यात्मक आधार पर स्पष्ट करती हैं तथा गुणात्मक पद्धतियाँ अमूर्त तथ्यों को गुणात्मक आधार पर स्पष्ट करती हैं। गुणात्मक पद्धतियों के अंतर्गत आगमन और निगमन पद्धति या विधि, वैयक्तिक जीवन अध्ययन विधि तथा समाजमिति आते हैं।

इस प्रविधि का संबंध संचार के अथवा भावागत अभिव्यक्तियों द्वारा प्राप्त तथ्यों के अंतर्वस्तु से होता है। गुणात्मक विषयों का परिमाणात्मक अध्ययन करना इस प्रविधि की सहायता से संभव होता है।

वर्गीकरण वह प्रक्रिया है जिसमें एकत्रित समंकों को उनकी विविध विशेषताओं एवं गुणों के आधार पर अलग-अलग वर्गों में बाँटा जाता है। वर्गीकरण के अन्तर्गत संकलित समंकों को विभिन्न वर्गों में बाँटा जाता है। वर्गों का निर्धारण जाँच के उद्देश्य, क्षेत्र एवं स्वरूप पर निर्भर करता है। वर्गीकरण की क्रिया, सारणीयन तथा सांख्यिकीय विश्लेषण की अन्य क्रियाओं के लिये आधार प्रस्तुत करती है। बिना वर्गीकरण के सारणीयन असम्भव है और सारणीयन के अभाव में सांख्यिकीय विश्लेषण अव्यवहारिक है।

नोट

शिक्षा तथा मनोविज्ञान में मापन की प्रक्रिया निरपेक्ष तथा अप्रत्यक्ष होती है। निरपेक्ष का अर्थ होता है कि भौतिक मापन की भाँति शून्य का मान निरपेक्ष नहीं होता है अपितु शून्य का मान सापेक्ष होता है। जैसे किसी विषय के परीक्षण में एक छात्र के अंक शून्य प्राप्त हुए इसका अर्थ यह नहीं है कि उस विषय में उसे कुछ भी ज्ञान नहीं है अपितु परीक्षण में सम्मिलित प्रश्नों का ज्ञान नहीं है। व्यावहारिक विज्ञानों में शून्य सन्दर्भ बिन्दु नहीं होता है अपितु समूह का निष्पादन सन्दर्भ बिन्दु माना जाता है। क्योंकि मापन की प्रक्रिया सापेक्ष होती है।

भौतिक विज्ञान में मापन प्रत्यक्ष होता है और शिक्षा तथा मनोविज्ञान में सामान्यत: अप्रत्यक्ष होता है। भौतिक विज्ञान में जिस पक्ष का मापन करना होता है उस पर मापनी रख कर माप लेते हैं। किसी की लम्बाई, ऊँचाई ज्ञात करने के लिये पैमाना रखकर माप लेते हैं जबकि शिक्षा तथा मनोविज्ञान में जिस गुण। चर का मापन करना हो उस पर प्रत्यक्ष मापनी नहीं रख सकते क्योंकि वह चर अमूर्त होता है।

सामान्यत: प्रत्यय एवं संरचना का एक ही अर्थ होता है। किसी अमूर्त के सामान्यीकरण की अभिव्यक्ति को प्रत्यय कहते हैं। जैसे बुद्धि, निष्पत्ति, व्यक्तित्व ऊर्जा, अभिप्रेरण, आवश्यकता आदि। विशिष्ट व्यावहारों के अवलोकन से अमूर्त का स्वरूप भी निर्धारित करते हैं। उसे संरचना कहते हैं।

1.30 अभ्यास-प्रश्न

1. सांख्यिकी की परिभाषा एवं कार्यों की व्याख्या कीजिए।
2. सांख्यिकी के महत्त्व का वर्णन कीजिए।
3. सांख्यिकी की सीमाओं का विश्लेषणात्मक विवेचन कीजिए।
4. शैक्षिक अनुसंधान से आप क्या समझते हैं?
5. शिक्षा के क्षेत्र में शैक्षिक अनुसंधान की आवश्यकता पर प्रकाश डालें।
6. शैक्षिक अनुसंधान के क्षेत्र का वर्णन करें।
7. अनुसंधान की भावी आवश्यकताओं पर टिप्पणी लिखें।
8. समाजशास्त्र में शोध विधियों के कितने प्रकार हैं?
9. आगमन विधि का अर्थ बताएँ।
10. आगमन विधि के गुण दोषों का वर्णन करें।
11. निगमन विधि का क्या-क्या अर्थ है?
12. वैयक्तिक अध्ययन विधि क्या है?
13. अंतर्वस्तु विश्लेषण प्रविधि की क्या विशेषतायें हैं?
14. अंतर्वस्तु विश्लेषण प्रविधि की सीमाएँ क्या हैं? उल्लेख करें।
15. अंतर्वस्तु विश्लेषण प्रविधि का क्या महत्त्व है?
16. प्रत्यय, संरचना तथा चर का अर्थ बताइए तथा इनमें अन्तर भी स्पष्ट कीजिए। चरों के प्रकार बताइए।
17. असतत् चर तथा सतत् चर में अन्तर बताइए और मापन में इनके महत्त्व का वर्णन कीजिए।
18. मापन के स्तर, अनुमापनी तथा चर में सम्बन्ध स्पष्ट कीजिए। अनुमापनियों का अर्थ बताइए और तुलना कीजिए।

19. मापन की क्रियाओं के सोपान बताइए। इन सोपानों की क्रियाओं तथा समस्याओं का वर्णन कीजिए।
20. वर्गीकरण की परिभाषा दीजिए तथा उसके उद्देश्य एवं विभिन्न प्रकारों पर प्रकाश डालिए।
21. आदर्श वर्गीकरण के आवश्यक तत्व बताइए।
22. वर्गीकरण और सारणीयन को परिभाषित कीजिए तथा सांख्यिकीय विश्लेषण में उनका महत्व बताइए। वर्गीकरण एवं सारणीयन में अंतर स्पष्ट कीजिए।
23. सारणीयन को परिभाषित कीजिए तथा सारणीयन के उद्देश्यों एवं रीतियों को समझाइए।
24. सारणी के कौन-कौन से अंग हैं? सारणी तैयार करते समय किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिए?

नोट

1.31 संदर्भ पुस्तकें

- मनोविज्ञान–डॉ. सरयू प्रसाद, आगरा बुक स्टोर, आगरा।
- मनोविज्ञान–मानव व्यवहार का अध्ययन–ब्रजकुमार मिश्र, पी.एच.आई. लर्निंग, नई दिल्ली।
- शिक्षा मनोविज्ञान–एस.के. मंगल, पी.एच.आई. लर्निंग प्रा. लि., नई दिल्ली।
- अधिगमकर्त्ता का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया–ए. के. वर्मा, हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली।

अध्याय-2

सांख्यिकी पद्धति-1

नोट

(Structure)

2.1 उद्देश्य
2.2 प्रस्तावना
2.3 विषय-वस्तु : सांख्यिकीय पद्धति का अर्थ एवं विशेषताएँ
2.4 सामान्य प्रवृत्तियों की माप
2.5 सांख्यिकीय माध्य
2.6 माध्यों के प्रकार
2.7 खण्डित श्रेणी में समान्तर माध्य निकालना
2.8 अखण्डित (सतत) श्रेणी का माध्य निकालना
2.9 समान्तर माध्य के गुण
2.10 समान्तर माध्य के दोष
2.11 माध्यिका या मध्याँक
2.12 मध्यांक निकालने की विधि
2.13 बहुलक
2.14 विचलन या विक्षेपण की माप
2.15 चतुर्थांशीय विचलन
2.16 चतुर्थांशीय विचलन का गुणांक
2.17 माध्य विचलन
2.18 माध्य विचलन की गणना
2.19 सरल श्रेणी
2.20 खंडित श्रेणी
2.21 मानक विचलन
2.22 विचलन का महत्त्व
2.23 समवितरण की विशेषताएँ
2.24 सम-सम्भावना वक्र
2.25 समवितरण का प्रयोग
2.26 सम-सम्भावना-वितरण-तालिका का प्रयोग
2.27 आँकड़ों के वितरण की विषमता का परिमापन
2.28 सारांश
2.29 अभ्यास-प्रश्न
2.30 संदर्भ पुस्तकें

नोट

2.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- सांख्यिकीय पद्धति का समाजशास्त्र में प्रयोग;
- सांख्यिकीय पद्धति का अर्थ एवं विशेषताएँ;
- जटिल श्रेणियों तथा अंकों की श्रेणियों का संक्षिप्तीकरण करना;
- विशाल समूह को संक्षिप्त चित्रों द्वारा विश्लेषण करना;
- विशाल संख्याओं की तुलना करने में आसानी होती है;
- विचलन के अर्थ की जानकारी;
- समवितरण की विशेषताओं को समझने में;
- सम-संभावना वक्र को समझने में।

2.2 प्रस्तावना

पद्धति का तात्पर्य उस प्रणाली से है जिसे कि एक वैज्ञानिक अपनी अध्ययन वस्तु के संबंध में तथ्ययुक्त (factual) निष्कर्ष निकालने के लिए उपयोग में लाता है। तथ्ययुक्त निष्कर्ष निकालने का कोई संक्षिप्त मार्ग (short-cut) नहीं है। इसके लिए निरीक्षण, वर्गीकरण, प्रयोग, परीक्षण, तुलना तथा निष्कर्षीकरण के कठिन मार्ग को ही अपनाना पड़ता है। इन सबको मिलाकर जिस अध्ययन-प्रणाली की प्राप्ति होती है उसी को वैज्ञानिक पद्धति कहते हैं। यह प्रणाली अथवा पद्धति सभी विज्ञानों में एक सी होती है क्योंकि प्रत्येक विज्ञान को आधारभूत कार्य (function) तथ्ययुक्त निष्कर्ष निकालना और उसी आधार पर नियमों को प्रतिपादित करना होता है और ऐसा करने के लिए निरीक्षण, परीक्षण, वर्गीकरण, तुलना आदि के कठिन मार्ग से गुजरना ही पड़ता है। श्री उल्फ (Wolfe) ने लिखा है कि 'कोई भी अनुसंधान प्रणाली जिसके द्वारा विज्ञान का निर्माण हुआ हो और उसका विकास हो रहा हो, वैज्ञानिक पद्धति कहलाने को अधिकारी हैं।'

सामाजिक अनुसंधान के दौरान जो सांख्यिकीय तथ्य एकत्रित किए जाते हैं उनसे किसी निष्कर्ष पर पहुँचा नहीं जा सकता। इसके लिए उन तथ्यों या आँकड़ों का वर्गीकरण तथा सारणीयन करना अनिवार्य होता है। इसके बाद भी उन्हें और सरस एवं बोधगम्य बनाने के लिए चित्रों एवं ग्राफों की सहायता ली जाती है। लेकिन चित्रों एवं ग्राफों के माध्यम से तथ्यों का अध्ययन कितना परिशुद्ध होगा, यह अनुसंधानकर्ता की दृष्टि पर निर्भर करता है, जो व्यक्तिनिष्ठ कारक है। इसीलिए हमें तथ्यों की श्रेणी में से एक ऐसी संख्या का पता लगाना अनिवार्य है, जो उस श्रेणी का उपयुक्त प्रतिनिधित्व कर सके। इससे तुलनात्मक अध्ययन करना आसान हो जाता है। वह मूल्य जो हमें समूह की योग्यता को संक्षिप्त रूप से एक ही अंक में बता देते हैं, केंद्रीय प्रवृत्ति के माप कहलाते हैं। इन मूल्यों को सांख्यिकी में माध्य कहते हैं। इस इकाई में हम इसी की विवेचना करेंगे।

विचलन तथ्यों की एक श्रेणी में पाए जाने वाले समान, अभिन्न व स्थिर तथ्यों को प्रकट करता है। विचलन की सहायता से ही सामाजिक अनुसंधान में इस सामाजिक घटनाओं के समान व स्थिर तत्वों की जानकारी करते हैं और उसी के आधार पर भिन्नताओं के संबंध में भी एक स्पष्ट धारणा को पनपाते हैं। विचलन हमारी भविष्यवाणी करने की शक्ति को बढ़ा देता है अर्थात् विचलन का ज्ञान हो जाने पर एक तथ्य के भविष्य के विषय में अनुमान लगाना हमारे लिए सरल हो जाता है। विचलन हमें अपने सुनिश्चित निष्कर्ष से विचलित होने से बचाता है, बचाता है भ्रमपूर्ण ज्ञान से

जब किसी तालिका के मध्यमान (Mean) के दोनों ओर आँकड़े इस प्रकार स्थित हों कि यदि हम उन्हें एक वक्र-चित्र द्वारा दिखायें और निम्न प्रकार की घन्टी की आकृति (bell-shape) का चित्र बने तो हम उस प्रकार के अंक-वितरण को सम अंक-वितरण (normal distribution) कहते हैं।

नोट

2.3 विषय-वस्तु : सांख्यिकीय पद्धति का अर्थ एवं विशेषताएँ

वर्तमान में समाजशास्त्र में सांख्यिकीय पद्धति का प्रयोग काफी मात्रा में किया जाने लगा है। समाजशास्त्र में इस पद्धति की सहायता से सामाजिक तथ्यों को परिमाणात्मक या संख्यात्मक रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इस पद्धति के प्रयोग से समाजशास्त्र को अब बहुत से लोग एक यथार्थ विज्ञान मानने लगे हैं। यह सामाजिक घटनाओं या तथ्यों को गणितीय रूप में मापने की एक प्रणाली है।

सांख्यिकी पद्धति का अर्थ स्पष्ट करते हुए सेलिगमेन ने लिखा है, "सांख्यिकी वह विज्ञान है जो उन संख्यात्मक तथ्यों के संकलन, प्रस्तुतीकरण, तुलना तथा निर्वचन की विधियों से संबंधित है जिनको जाँच के किसी भी क्षेत्र पर प्रकाश डालने के लिए एकत्रित किया गया है।"

राबर्टसन ने लिखा है, "सांख्यिकी एक ऐसा उपकरण या साधन है जिसे आनुभविक अनुसंधान के लगभग प्रत्येक क्षेत्र में उत्पन्न होने वाली समस्याओं पर आक्रमण करने या उनके निराकरण के लिए काम में लिया जा सकता है।"

केण्डल ने बताया है कि सांख्यिकी वैज्ञानिक पद्धति की वह शाखा है जो कई पदार्थों के समूह की विशेषताओं को मापकर अथवा गणना द्वारा प्राप्त की गयी सामग्री से संबंधित है। उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि सांख्यिकी वह पद्धति है जो तथ्यों को संख्यात्मक रूप में प्रस्तुत कर परिमाणात्मक निष्कर्ष प्रदान करती है।

समाजशास्त्र में विभिन्न घटनाओं को गुणात्मक के अतिरिक्त परिमाणात्मक रूप में प्रस्तुत करना भी आवश्यक रहता है। उदाहरण के रूप में, जनसंख्या के आकार और बनावट, पारिवारिक विघटन, तलाक की दर, अपराध व बाल-अपराध की घटनाएँ, संयुक्त परिवारों की संख्या का घटना या बढ़ना, गाँवों और नगरों की जनसंख्या, शिक्षा का प्रतिशत, औद्योगीकरण एवं नगरीकरण की प्रवृत्ति आदि का अध्ययन सांख्यिकी पद्धति की सहायता से सुगमता से किया जा सकता है। ऐसे अध्ययनों से प्राप्त निष्कर्ष संख्या, औसत, प्रतिशत या परिमाणात्मक रूप से प्रस्तुत किये जाते हैं। यह पद्धति गुणात्मक प्रकृति के सामाजिक तथ्यों की परिमाणात्मक व्याख्या करने में भी सफल हुई है।

यदि हम सांख्यिकी पद्धति की कार्यप्रणाली पर ध्यान दें तो पता चलेगा कि इसमें सबसे पहले क्षेत्र का निर्धारण कर समग्र (Universe) में से निदर्शन प्रणाली की सहायता से कुछ प्रतिनिधि इकाइयों का चुनाव किया जाता है। फिर प्रश्नावली या अनुसूची विधि की सहायता से आंकड़े एकत्रित किये जाते हैं। आंकड़ों का संकलन करते समय काफी सावधानी रखने की आवश्यकता पड़ती है ताकि सही जानकारी प्राप्त हो सके। इसके बाद एकत्रित आंकड़ों का वर्गीकरण एवं सारणीयन किया जाता है। यहाँ कार्य-कारण संबंधों की व्याख्या संख्या या प्रतिशत के आधार पर की जाती है। इसके बाद विभिन्न औसतों की सहायता से आवृत्तियों को सरल बनाया तथा उन्हें ग्राफ व चार्ट के रूप में व्यक्त किया जाता है। इस प्रकार इस पद्धति की सहायता से निकाले गये निष्कर्ष अधिक प्रामाणिक एवं स्पष्ट होते हैं। बेकारी, निर्धनता, अपराध, बाल-अपराध आदि सामाजिक समस्याओं को समझने में सांख्यिकी पद्धति द्वारा प्राप्त निष्कर्ष काफी योग देते हैं। इस पद्धति में पक्षपात की संभावना बहुत कम हो जाती है। यह पद्धति कई समस्याओं पर एक साथ प्रकाश डालने में सफल सिद्ध हुई है।

इस पद्धति की सबसे बड़ी कमी यह है कि इसके द्वारा केवल सामाजिक घटनाओं के संख्यात्मक या परिमाणात्मक पक्ष पर ही जोर दिया जाता है, गुणात्मक पक्ष पर नहीं। यदि हम वर्तमान में लोगों

नोट

के विश्वासों, मूल्यों और मनोवृत्तियों में होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन करना चाहें तो यह पद्धति उपयोगी नहीं होगी। सामाजिक घटनाओं या समस्याओं के कार्य-कारण संबंधों को गहराई के साथ समझने में भी यह पद्धति विशेष सहायक नहीं है। इसके लिए हमें गुणात्मक पद्धतियों का सहारा लेना पड़ेगा। इन सीमाओं के बावजूद भी गणित पर आधारित होने के कारण इसे वैज्ञानिक पद्धति माना जाता है और समाजशास्त्र में इसका प्रयोग बढ़ता ही जा रहा है।

2.4 सामान्य प्रवृत्तियों की माप

सामाजिक अनुसन्धान के दौरान जो सांख्यिकीय तथ्य (statistical data) एकत्रित किये जाते हैं। उनसे किसी निष्कर्ष पर पहुँचा नहीं जा सकता। इसके लिए उन तथ्यों या आँकड़ों का वर्गीकरण तथा सारणीयन करना आवश्यक होता है। इसके बाद भी उन्हें और सरल व बोधगम्य बनाने के लिये चित्रों (diagrams) तथा ग्राफों की सहायता ली जाती है। पर चित्रों तथा ग्राफ के माध्यम से तथ्यों का अध्ययन परिशुद्ध होगा अथवा नहीं, यह बात अनुसन्धानकर्ता की निगाहों की यथार्थता पर निर्भर करती है। पर निगाह, जैसा कि हम जानते हैं, एक अनिश्चित कारक (uncertain factor) है। इसलिए इसकी सहायता से किए गए अध्ययन व निकाले गए निष्कर्ष अविश्वसनीय भी हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त, तथ्यों या आँकड़ों को, वर्गीकरण तथा सारणीयन के बाद भी, और अधिक संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करना सम्भव है। यदि हमें तथ्यों की एक श्रेणी में से कोई ऐसा अंक या संख्या पता लग जाये जो कि उस श्रेणी का उचित प्रतिनिधित्व कर सके तो विभिन्न श्रेणियों का तुलनात्मक अध्ययन करना हमारे लिए वास्तव में सरल हो जाए। यह स्वीकार किया जाता है कि यद्यपि अनुसन्धानकर्ता को जो आँकड़े प्राप्त होते हैं उनके मूल्य भिन्न-भिन्न होते हैं, फिर भी सभी आँकड़ों में से एक ऐसी 'योग्यता' मूल्य अथवा अंक मालूम किया जा सकता है जो कि सभी व्यक्ति आँकड़ों का उचित प्रतिनिधित्व कर सके। ऐसी योग्यता या मूल्य को ही माध्य प्रवृत्ति (central tendency) कहते हैं। माध्य प्रवृत्ति अलग-अलग आँकड़ों या तथ्यों या व्यक्तियों की योग्यता या मूल्य पर प्रकाश नहीं डालती, बल्कि वह सामूहिक रूप से सम्पूर्ण वर्ग या श्रेणी की योग्यता का प्रतिनिधित्व करती है और इस प्रकार वह पूरे समूह की प्रवृत्ति या मूल्य की ओर संकेत करती है। उदाहरणार्थ, यदि किसी परीक्षण में पाँच छात्रों को क्रमशः 7, 9, 5, 6 और 8 अंक प्राप्त होते हैं तो ऊपरी तौर पर यही कहा जाएगा कि पाँच छात्रों की योग्यता एक-दूसरे से भिन्न है। परन्तु इन प्राप्तांकों को ध्यानपूर्वक देखने से मालूम होगा कि 7 एक ऐसा अंक है जिसके आसपास अन्य अंक स्थित हैं। दो अंक 7 से छोटे और दो 7 से बड़े हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि 7 इस पूरे समूह का प्रतिनिधित्व करने वाला अंक है। इसलिए यद्यपि इस समूह के प्रत्येक छात्र की अलग-अलग योग्यता एक-दूसरे से भिन्न है, फिर भी सामूहिक रूप में उनकी योग्यता 7 ही समझी जायेगी क्योंकि यह मूल्य सभी मूल्यों के केन्द्र में स्थित है और अन्य मूल्यों का झुकाव इसी केन्द्रीय मूल्य 7 की ओर है। इसलिये हम 7 को उपरोक्त पाँचों प्राप्तांकों को केन्द्रीय प्रवृत्ति कहेंगे।

2.5 सांख्यिकीय माध्य

माध्य का अर्थ

सर्वश्री घोष और **चौधरी** (Ghosh and Chaudhry) के अनुसार, "माध्य एक ऐसी अकेली सरल अभिव्यक्ति है जिसमें एक जटिल समूह अथवा विशाल संख्याओं का वास्तविक परिणाम या सार केन्द्रित है।"

नोट

श्री एलहान्स (Elhance) के मतानुसार, "यह स्पष्ट है कि एक ऐसी संख्या जिसका कि प्रयोग सम्पूर्ण श्रेणियों का प्रतिनिधित्व करने के लिए किया जाता है वह श्रेणी में न तो न्यूनतम मूल्य रखती है और न ही उच्चतम मूल्य, अपितु वह मूल्य तो इन दोनों सीमाओं के बीच का एक मूल्य होता है और सम्भवत: इस मूल्य की स्थिति वह केन्द्र होता है जहाँ श्रेणियों की अधिकांश इकाइयाँ एकत्रित हो जाती हैं। ऐसे अंक केन्द्रीय प्रवृत्ति का माप अथवा माध्य कहलाते हैं।"

उपरोक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट है कि माध्य सम्पूर्ण श्रेणियों का प्रतिनिधित्व करने वाला और केन्द्रीय मूल्य को प्रगट करने वाला एक अंक होता है जो कि उन श्रेणियों के न्यूनतम एवं अधिकतम मूल्य के बीच की एक स्थिति में होता है। इस प्रकार माध्य को देखकर ही सम्पूर्ण श्रेणियों की केन्द्रीय विशेषता या मूल्य का पता लगाना हमारे लिए सरल होता है। इस अर्थ में माध्य विशाल संख्याओं का संक्षिप्तीकरण करने का एक साधन बन जाता है।

माध्यों की उपयोगिता एवं उद्देश्य

सामाजिक अनुसन्धान में तथ्यों की विवेचना, विश्लेषण या निष्कर्षीकरण में माध्यों की उपयोगिता उल्लेखनीय है। निम्नलिखित विवेचना से माध्यों की उपयोगिता एवं उद्देश्य और भी स्पष्ट हो जायेंगे–

(1) माध्यों का सर्वप्रथम उद्देश्य जटिल श्रेणियों तथा अंकों की श्रेणियों का संक्षिप्तीकरण करना है। माध्य के द्वारा बिखरे हुए विभिन्न गुणों वाले तथ्यों को संक्षिप्त रूप प्रदान किया जा सकता है। अंकों के ढेरों से कुछ भी पता नहीं चलता, पर माध्य एक अंक में होते हुए भी अंकों के ढेरों के केन्द्रीय गुण या मूल्य को प्रगट करता है।

(2) माध्यों का एक और उद्देश्य या उपयोगिता यह है कि इसके द्वारा तथ्यों की तुलना अत्यधिक सरल हो जाती है। अनेक अंकों वाली श्रेणियों की तुलना बहुत कठिन होती है परन्तु यदि उन्हें एक अंक का रूप प्रदान कर दिया जाए तो तुलना का काम स्वत: ही सरल हो जाता है। वास्तव में जटिल व विशाल संख्याओं की तुलना करने के उद्देश्य से ही माध्य निकाले जाते हैं।

(3) जैसा कि सर्वश्री घोष तथा चौधरी ने लिखा है कि विशाल समूह का एक संक्षिप्त चित्र प्रदर्शित करना है जिससे विश्लेषण का काम हमारे लिए सरल हो जाए। वास्तविकता तो यह है कि विशाल समूह का एक संक्षिप्त रूप प्रगट करके विश्लेषण व व्याख्या के कार्य को सरल बनाना माध्य का एक उल्लेखनीय उद्देश्य है।

(4) माध्य के द्वारा अंकों की दो या अधिक श्रेणियों का समूहों के बीच पाये जाने वाले सम्बन्धों तथा अनुपात का अनुमान लगाया जाता है। वैज्ञानिक विश्लेषण व व्याख्या के लिए इस प्रकार के संबंधों व अनुपात की जानकारी आवश्यक होती है। माध्य इस कार्य में हमारी मदद करता है।

(5) माध्यों की एक उपयोगिता यह भी है कि ये हमारे अध्ययन-कार्य को संक्षिप्त बनाने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। एक समुदाय की समग्र इकाइयों का अध्ययन हमारे लिए सम्भव नहीं होता और इसीलिए हम निदर्शन-प्रणाली (Sampling Method) के द्वारा कुछ इकाइयों से सम्बन्धित तथ्यों को एकत्रित करते हैं। इन तथ्यों को और आगे संक्षिप्त करने के लिए माध्यों का उपयोग किया जा सकता है। इस प्रकार निदर्शन तथ्यों की सहायता से माध्य सम्पूर्ण समूहों का चित्र उपस्थित करने में सहायक होते हैं।

2.6 माध्यों के प्रकार

सर्वश्री घोष और चौधरी (Ghosh and Chaudhry) ने माध्यों के अग्रलिखित प्रकारों का उल्लेख किया है–

नोट

I. स्थिति माध्य (Average of Position)

(1) बहुलक (Mode)

(2) मध्यांक (Median)

II. गणितीय माध्य (Mathematical Averages)

(1) समान्तर माध्य (Arithmetic Averages or Mean)

(2) ज्यामितीय या गुणोत्तर माध्य (Geometric Mean)

(3) हरात्मक माध्य (Harmonic Mean)

(4) सर्मीकरण माध्य (Quadratic Mean)

III. अन्य व्यावहारिक माध्य (Other of Business Averages)

(1) भ्रमित माध्य (Moving Average)

(2) प्रगतिशील माध्य (Progressive Average)

उपरोक्त प्रकार के माध्यों में से केवल उन्हीं विषय में विवेचना करेंगे जिनका कि सामाजिक अनुसन्धान-कार्य से तथ्यों के विश्लेषण व व्याख्या के लिए विशेष रूप में प्रयोग किया जाता है।

समान्तर माध्य

सर्वश्री घोष तथा चौधरी के अनुसार, ''समान्तर माध्य जिसे कि समान्तर माध्य या केवल माध्य भी कहते हैं वह परिणाम है जो कि किसी चल (variable) में पदों के मूल्यों के योग को उनकी संख्या से भाग देकर प्राप्त होता है।''

उपरोक्त परिभाषा से यह स्पष्ट है कि समान्तर माध्य वास्तव में औसत निकालना है जिसके विषय में छोटी कक्षाओं के विद्यार्थियों को पढ़ाया जाता है। यदि हमें प्रत्येक इकाई का मूल्य अलग-अलग मालूम है तो समान्तर माध्य या औसत निकालने के लिए उन सभी इकाइयों को जोड़कर इकाइयों की संख्या से भाग दे देंगे। भाग देने से जो परिणाम प्राप्त होगा उसे औसत या समान्तर माध्य कहते हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि समान्तर माध्य की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं–

(अ) समान्तर माध्य कुल पदों के माप के योग को पदों की संख्या से भाग देकर निकाला जाता है।

(ब) इसमें समस्त पद मूल्यों का उपयोग किया जाता है अर्थात् समस्त पदों को समान महत्त्व दिया जाता है। किसी मूल्य की न तो उपेक्षा की जाती है और न महत्त्व दिया जाता है। पद की गणना केवल एक बार होती है।

(स) यदि समान्तर माध्य तथा पदों की संख्या ज्ञात हो तो कुल पदों का वास्तविक योग जाना जा सकता है। इसी प्रकार पदों की संख्या भी जानी जा सकती है।

(द) समान्तर माध्य आवृत्तियों पर निर्भर नहीं रहता बल्कि समस्त पदों के मूल्य पर निर्भर रहता है।

समान्तर माध्य निकालने की विधि

समान्तर माध्य दो सम्भावित प्रणालियों द्वारा निकाला जा सकता है–(अ) प्रत्यक्ष विधि (Direct Method) और (ब) संक्षिप्त विधि (Short-cut Method)। हम एक-एक करके यहाँ दोनों विधियों के सम्बन्ध में विवेचना करेंगे।

सरल श्रेणी में माध्यक निकालना

नोट

प्रत्यक्ष विधि (Direct Method)–इस विधि के द्वारा समान्तर माध्य निकालने के लिये सर्वप्रथम समस्त पदों के मूल्यों को जोड़ लिया जाता है। फिर उसमें पदों की संख्या को भाग दिया जाता है। प्राप्त उपलब्धि समान्तर माध्य होता है। निम्नलिखित उदाहरण से इस बात का स्पष्टीकरण किया जा सकता है–

उदाहरण 1. नीचे 10 विद्यार्थियों की लम्बाई का विवरण दिया गया है। उनका समान्तर माध्य प्रत्यक्ष विधि द्वारा ज्ञात कीजिये–

लम्बाई (सेन्टीमीटर में)–155, 153, 168, 160, 162, 166, 164, 180, 157 और 165 ।

हल–उपरोक्त लम्बाइयों के आधार पर समान्तर माध्य निकालने के लिये प्रत्यक्ष विधि इस प्रकार होगी–

लम्बाइयों का योग $6 \times \Sigma x = 155 + 153 + 168 + 160 + 162 + 166 + 164 + 180 + 157 + 165 = 1630$

$\therefore \quad 6 \times \Sigma x = 1630$

विद्यार्थियों की संख्या $(n) = 10$

समान्तर माध्य (M) का सूत्र $= \frac{6 \times \Sigma x}{n}$

$\therefore \quad M = \frac{6 \times \Sigma x}{n}$

$= \frac{1630}{10} = 163$

अतः समान्तर माध्य $(M) = 163$ सेन्टीमीटर

हों तो प्रत्यक्ष विधि से समान्तर माध्य निकालने में जोड़ने आदि के काम में काफी परेशानी होती है। इसीलिये परिश्रम तथा समय बचाने के उद्देश्य से एक संक्षिप्त विधि का उपयोग किया जाता है। इस विधि में दिये गये किसी मूल्य को भी माध्य मान लिया जाता है, फिर प्रत्येक दिये हुये मूल्य का इस कल्पित माध्य से विचलन (deviation) ज्ञात कर लिया जाता है। अर्थात् कल्पित माध्य और पदों के मूल्यों में जो अन्तर है उसे अलग-अलग मालूम किया जाता है। यदि पद का मूल्य कल्पित माध्य के मूल्य से कम है तो इस अन्तर को ऋण चिह्न (–) से दिखाया जाता है पर यदि पद का मूल्य कल्पित माध्य के मूल्य से ज्यादा है तो अन्तर को धन चिह्न (+) से प्रदर्शित किया जाता है। इसी प्रकार प्रत्येक पद मूल्य का विचलन या अन्तर मालूम कर लिया जाता है। फिर इन समस्त विचलनों के योग को पदों की संख्या से भाग देकर जो लब्धि आती है उसे कल्पित माध्य में जोड़ दिया जाता है, यही वास्तविक माध्य होता है। निम्नलिखित उदाहरण से इस विधि का और भी स्पष्टीकरण हो सकेगा।

उदाहरण 2. उदाहरण 1 में 10 विद्यार्थियों की लम्बाई का समान्तर माध्य संक्षिप्त विधि द्वारा ज्ञात कीजिये।

हल–संक्षिप्त विधि द्वारा समान्तर माध्य ज्ञात करने के लिये सर्वप्रथम किसी भी लम्बाई का कल्पित माध्य लेना होगा और फिर अन्य सभी लम्बाइयों के इस कल्पित माध्य से विचलन को ज्ञात

करना होगा, जैसा कि निम्नलिखित सारणी में दिखाया गया है जिसमें कि लम्बाई 160 को कल्पित माध्य माना गया है।

सारणी 2.1. संक्षिप्त विधि द्वारा समांतर माध्य ज्ञात करना

नोट

लम्बाई (x)	कल्पित माध्य 160 से विचलन (d)
155	(155–160) = – 5
153	(153–160) = – 7
168	(168–160) = + 8
160 A	(160–160) = 0
162	(162–160) = + 2
166	(166–160) = + 6
164	(164–160) = + 4
180	(180–160) = + 20
157	(157–160) = – 3
165	(165–160) = + 5
$n = 10$	Σd = (48–18) = 30

संक्षिप्त विधि द्वारा समान्तर माध्य (M) का सूत्र–

$$M = A + \frac{\Sigma d}{n}$$

यहाँ कल्पित माध्य $A = 160$

$\Sigma d = 30$

$n = 10$ (क्योंकि लम्बाई 10 विद्यार्थियों के हैं)

अत: $$M = 160 + \frac{30}{10}$$

$$= 160 + 3 = 163$$

अत: 10 विद्यार्थियों की लम्बाई का समान्तर माध्य = 163 सेंटीमीटर

2.7 खण्डित श्रेणी में समान्तर माध्य निकालना

(अ) **प्रत्यक्ष विधि (Direct Method)**–समांतर माध्य उस अवस्था में निकाला जा सकता है जबकि विभिन्न पद खण्डित श्रेणियों में हों। ऐसी स्थिति में माध्य ज्ञात करने की विधि के निम्नलिखित चरण हैं–

(क) प्रत्येक आवृत्ति को उसके सम्बन्धित पद के मूल्य से गुणा कीजिये।

(ख) इस प्रकार सभी गुणनफल के योग को मालूम कीजिये।

(ग) इन गुणनफलों के योगों को आवृत्तियों के योग से भाग दीजिये।

(घ) प्राप्त लब्धि समान्तर माध्य होगा।

इस विधि को विभिन्न चिह्नों द्वारा एक सूत्र के रूप में भी प्रस्तुत किया जा सकता है–

यदि हम यह मान लें कि–

पद का मूल्य – x

आवृत्ति – f

पद का मूल्य × आवृत्ति – fx

आवृत्तियों का योग – Σf

(पद का मूल्य × आवृत्ति) का योग – Σfx

तो उपरोक्त विधि के अनुसार–

$$M = \frac{\Sigma fx}{\Sigma f}$$

अर्थात् माध्य $(M) = \dfrac{\text{पदों के मूल्य और आवृत्तियों के गुणनफल का योग}}{\text{आवृत्तियों का योग}}$

उदाहरण 3. कुछ परिवारों में प्रति परिवार पैदा हुए बच्चों की संख्या निम्नवत् है। आप प्रत्यक्ष प्रणाली द्वारा प्रति परिवार पैदा हुए बच्चों की संख्या के समान्तर माध्य की गणना कीजिये।

प्रति परिवार पैदा हुए बच्चों की संख्या	परिवारों की संख्या
0	96
1	108
2	154
3	126
4	95
5	62
6	45
7	20
8	11
9	6
10	5
11	5
12	1
13	1

हल–प्रत्यक्ष विधि द्वारा समान्तर माध्य ज्ञात करने के लिये पद मूल्य (प्रति परिवार पैदा हुए बच्चों की संख्या) और उस पद से सम्बन्धित आवृत्ति (परिवारों की संख्या) के गुणनफल का योग तथा आवृत्तियों का योग मालूम करना होगा, जैसा कि निम्नलिखित सारणी में दर्शाया गया है–

नोट

नोट

सारणी 2.2. प्रत्यक्ष विधि द्वारा प्रति परिवार पैदा हुए बच्चों की संख्या के समान्तर माध्य की गणना

प्रति परिवार पैदा हुए बच्चों की संख्या (x)	परिवारों की संख्या Frequency (f)	fx गुणनफल
0	96	(0 × 96) = 0
1	108	(1 × 108) = 108
2	154	(2 × 154) = 308
3	126	(3 × 126) = 378
4	95	(4 × 95) = 380
5	62	(5 × 62) = 310
6	45	(6 × 45) = 270
7	20	(7 × 20) = 140
8	11	(8 × 11) = 88
9	6	(9 × 6) = 54
10	5	(10 × 5) = 50
11	5	(11 × 5) = 55
12	1	(12 × 1) = 12
13	1	(13 × 1) = 13
कुल योग	$\Sigma f = 735$	$\Sigma fx = 2166$

समान्तर माध्य (M) का सूत्र $= \frac{\Sigma fx}{\Sigma f}$

यहाँ परिवारों की कुल संख्या (Σf) = 735

इन परिवारों में पैदा हुए बच्चों की कुल संख्या (Σfx) = 2166

$\therefore \quad M = \frac{\Sigma fx}{\Sigma f}$

$= \frac{2166}{735}$

= 2.9 अर्थात् 3 बच्चे

अत: प्रति परिवार पैदा हुए बच्चों की संख्या का समान्तर माध्य = 3 बच्चे।

(ब) संक्षिप्त विधि (Shor-cut Method)–संक्षिप्त विधि द्वारा समान्तर माध्य निकालने के लिए निम्नलिखित चरण होते हैं–

(क) सर्वप्रथम खण्डित श्रेणियों (discrete series) में से किसी भी एक पद को कल्पित माध्य मानकर पद मूल्यों का उस कल्पित माध्य से विचलन (deviation) मालूम किया जाता है।

(ख) तत्पश्चात् प्रत्येक आवृत्ति से उससे सम्बन्धित विचलन को गुणा करके सभी गुणनफलों के योग को मालूम किया जाता है।

(ग) इस प्रकार प्राप्त योग को आवृत्ति के योग से भाग देकर लब्धि को ज्ञात किया जाता है। इस उपलब्धि को कल्पित माध्य में जोड़ दिया जाता है।

(घ) यही जोड़ समांतर माध्य होता है।

नोट

यदि कल्पित माध्य को A, आवृत्तियों के योग को दए आवृत्ति (f) व विचलन (d) के गुणनफलों के योग को Σfd मान लिया जाए तो उपरोक्त संक्षिप्त विधि को एक सूत्र के रूप में हम इस प्रकार लिख सकते हैं–

$$M = A + \frac{\Sigma fd}{n}$$

अगर आवृत्तियों के योग को संकेताक्षर n के स्थान पर Σf के रूप में दर्शायें तो सूत्र इस प्रकार होगा–

$$M = A + \frac{\Sigma fd}{\Sigma f}$$

अर्थात् माध्य = कल्पित माध्य + $\frac{\text{आवृत्ति व विचलन के गुणनफलों का योग}}{\text{आवृत्तियों का योग}}$

उदाहरण 4. उदाहरण 3 में दी गई सारणी के आधार पर प्रति परिवार पैदा हुए बच्चों की संख्या का समान्तर माध्य संक्षिप्त विधि द्वारा ज्ञात कीजिये।

हल–संक्षिप्त विधि द्वारा प्रति परिवार पैदा हुए बच्चों की संख्या के समान्तर माध्य की गणना।

प्रति परिवार पैदा हुए बच्चों की संख्या (x)	परिवारों की संख्या (f)	कल्पित माध्य ($A = 6$) से विचलन (d)	कुल विचलन (fd)
0	96	(0–6) = – 6	(96 × –6) = – 576
1	108	(1–6) = – 5	(108 × –5) = – 540
2	154	(2–6) = – 4	(154 × –4) = – 616
3	126	(3–6) = – 3	(126 × –3) = – 378
4	95	(4–6) = – 2	(95 × –2) = – 190
5	62	(5–6) = – 1	(62 × –1) = – 62
6(A)	45	(6–6) = 0	(45 × 0) = 0
7	20	(7–6) = + 1	(20 × 1) = 20
8	11	(8–6) = + 2	(11 × 2) = 22
9	6	(9–6) = + 3	(6 × 3) = 18
10	5	(10–6) = + 4	(5 × 4) = 20
11	5	(11–6) = + 5	(5 × 5) = 25
12	1	(12–6) = + 6	(1 × 6) = 6
13	1	(13–6) = + 7	(1 × 7) = 7
कुल योग	Σf = 729		Σfd = (–2362 + 118) = – 2244

नोट

$$M = A + \frac{\Sigma fd}{\Sigma f}$$

जहाँ कल्पित माध्य $A = 6$

$\Sigma fd = -2244$

$\Sigma f = 735$ (अर्थात् परिवारों की कुल संख्या)

अतः
$$M = 6 + \frac{-2244}{735}$$
$$= 6 - 3.05$$
$= 2.95$ अर्थात् 3 बच्चे

अतः प्रति परिवार पैदा हुए बच्चों की संख्या का समान्तर माध्य = 3 बच्चे।

2.8 अखण्डित (सतत) श्रेणी का माध्य निकालना

यदि वर्गान्तरों (class intervals) की आवृत्ति या बारम्बारता (frequency) दी हुई है तो भी माध्य निकालने की दो विधियाँ हैं–एक तो प्रत्यक्ष विधि और दूसरी संक्षिप्त या लघु विधि। इन दोनों विधियों के सम्बन्ध में यहाँ अलग-अलग विवेचना की जा सकती है।

(अ) प्रत्यक्ष विधि (Direct Method)–प्रत्यक्ष विधि द्वारा अखण्डित श्रेणियों का माध्य बिल्कुल उसी तरह निकाला जाता है।

इस प्रकार प्रत्यक्ष विधि को हम निम्न रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं–

(क) प्रत्येक वर्गान्तर का मध्यमान मालूम कीजिए। यह मध्यमान किसी वर्गान्तर की उच्चतर सीमा (upper limit) तथा निम्नतर सीमा (lower limit) के योग का आधा होता है। इस प्रकार यदि कोई वर्गान्तर 10 + 15 सीमा (class interval) 10–15 है तो इसका मध्यमान 2 $\frac{10 + 15}{2}$ = 12.5 होगा।

(ख) प्रत्येक वर्गान्तर की आवृत्ति (f) से उसी वर्गान्तर के मध्यमान (x) को गुणा कीजिए और उनका गुणनफल (fx) मालूम कीजिए।

(ग) तत्पश्चात् उपरोक्त गुणनफलों का योग (Σfx) तथा आवृत्तियों का योग (Σf) अर्थात् n ज्ञात कीजिए।

(घ) गुणनफलों के योग (Σfx) का आवृत्तियों के योग (n) से भाग देकर लब्धि मालूम कीजिए।

(ङ) यही लब्धि माध्य होगा।

अत: संक्षिप्त विधि के सूत्र को हम इस प्रकार लिख सकते हैं–

माध्य $$M = \frac{\sum fd}{\sum n}$$

यदि संकेताक्षर n के स्थान पर $\sum f$ का प्रयोग किया जाये तो माध्य का सूत्र इस प्रकार होगा–

$$M = \frac{\sum fx}{\sum n}$$

उपरोक्त दो सूत्रों में से किसी भी सूत्र की सहायता से माध्य की गणना की जा सकती है। उत्तर या परिणाम एक ही होगा।

उदाहरण 5. निम्न सारणी में भारत इलैक्ट्रोनिक्स लि० के 65 कर्मचारियों की साप्ताहिक मजदूरी का आवृत्ति बंटन दिया हुआ है। प्रत्यक्ष विधि द्वारा समान्तर माध्य की गणना कीजिए।

नोट

मजदूरी (रुपयों में)	कर्मचारियों की संख्या
50–60	8
60–70	10
70–80	16
80–90	14
90–100	10
100–110	5
110–120	2

हल–प्रत्यक्ष विधि (जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया गया है) द्वारा समान्तर माध्य ज्ञात करने के लिये हमें सर्वप्रथम मध्यमान (x) ज्ञात करके उसी आधार पर fx और फिर Σfx एवं Σf अर्थात् n मालूम करना होगा। यह कार्य उपरोक्त सारणी को इस प्रकार करने पर सम्भव होगा–

सारणी 2.3

मजदूरी (रुपयों में)	कर्मचारियों की संख्या (f)	मजदूरी वर्गों के मध्यमान (x)	मजदूरी (मध्यमान) और कर्मचारियों का गुणनफल (fx)
50–60	8	$\left(\frac{50+60}{2}\right)$ = 55	(8 × 55) = 440
60–70	10	$\left(\frac{60+70}{2}\right)$ = 65	(10 × 65) = 650
70–80	16	$\left(\frac{70+80}{2}\right)$ = 75	(16 × 75) = 1200
80–90	14	$\left(\frac{80+90}{2}\right)$ = 85	(14 × 85) = 1190
90–100	10	$\left(\frac{90+100}{2}\right)$ = 95	(10 × 95) = 950
100–110	5	$\left(\frac{100+110}{2}\right)$ = 105	(5 × 105) = 525
110–120	2	$\left(\frac{110+120}{2}\right)$ = 115	(2 × 115) = 230
योग	Σf अर्थात् n = 65		Σfx = 5185

नोट

वास्तविक विधि द्वारा समान्तर माध्य (M) का सूत्र–

$$M = \frac{\sum fx}{\sum f} \text{ अथवा } M = \frac{\sum fx}{\sum f}$$

$$= \frac{5185}{65}$$

$$= 79.77$$

अतः औसत साप्ताहिक मजदूरी = 79.77 रुपए

संक्षिप्त विधि

यह संक्षिप्त विधि भी खंडित श्रेणियों का माध्य निकालने के लिए प्रयोग की जाने वाली संक्षिप्त विधि के ही समान है, केवल इसमें भी वर्गांतरों का मध्यमान निकाल दिया जाता है। अतः इस संक्षिप्त विधि को हम इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं–

(क) प्रत्येक वर्गांतर (Class interval) का मध्यमान (x) ज्ञात कीजिए। यह मध्यमान किसी वर्गांतर की उच्चतर सीमा तथा निम्नतर सीमा के योग का आधा होगा।

(ख) किसी वर्गांतर के मध्यमान को कल्पित माध्य (A) मान लीजिए। पर ऐसा करते समय दो बातों का ध्यान रखिए–प्रथम तो यह कि वह कल्पित माध्य उस वर्गांतर का मध्यमान हो जिसकी बारंबारता अर्थात् आवृत्ति (frequency) सबसे अधिक हो और द्वितीय वह कल्पित माध्य उस वर्गांतर का मध्यमान हो जो दिए हुए वर्गांतरों के लगभग माध्य में हों।

(ग) प्रत्येक वर्गांतर (Class interval) के मध्यमान (x) तथा कल्पित माध्य (A) का अंतर ($x - A$) ज्ञात कीजिए अर्थात् कल्पित माध्य से वर्गांतर के मध्यमानों का विचन (क) मालूम करना होगा।

(घ) तत्पश्चात् प्रत्येक आवृत्ति (f) से उससे संबंधित विचलन (d) को गुणा करके सभी गुणनफलों (fd) के योग (Σfd) को मालूम कीजिए।

(ङ) इस प्रकार प्राप्त योग (Σfd) को आवृत्तियों के योग (Σf अर्थात् v) से भाग देकर लब्धि ज्ञात कीजिए। इस लब्धि को कल्पित माध्य (A) के साथ जोड़ दीजिए।

(च) यही जोड़ समानांतर माध्य होगा।

इसी विधि को यदि सूत्र द्वारा प्रदर्शित किया जाए तो वह इस प्रकार होगा–

$$M = A + \frac{\sum fd}{N}, \text{ अथवा } A + \frac{\sum fd}{\sum f}$$

उदाहरण 6. अनाज की उपज के निम्न आंकड़ों से संक्षिप्त विधि द्वारा समान्तर माध्या ज्ञात कीजिए।

उपज	0.5–4.5	4.5–8.5	8.5–12.5	12.5–16.5	16.5–20.5	20.5–24.5
खेतों की संख्या	4	8	5	10	8	9

हल–उपरोक्त प्रश्न को हल करने के लिए हमें दिये गये आंकडों के आधार पर निम्नलिखित सारणी तैयार करनी होगी–

सारणी 2.4

वजन	बोरों की संख्या (f)	वजन वर्गों के मध्यमान (x)	कल्पित माध्य (A=10.5) से मध्यमानों का विचलन $(x–A)=d$	विचलन तथा बोरों की संख्या (आवृत्ति) का गुणनफल (fd)
0.5–4.5	4	$\left(\frac{4.5+8.5}{2}\right) = 2.5$	(2.5–10.5) = – 8	(8 × –4) = – 32
4.5–8.5	8	$\left(\frac{4.5+8.5}{2}\right) = 6.5$	(6.5–10.5) = – 4	(8 × –4) = – 32
8.5–12.5	5	$\left(\frac{8.5+12.5}{2}\right) = 10.5$	(10.5–10.5) = 0	(5 × 0) = 0
12.5–16.5	10	$\left(\frac{12.5+16.5}{2}\right) = 14.5$	(14.5–10.5) = + 4	(10 × 4) = + 40
16.5–20.5	8	$\left(\frac{16.5+20.5}{2}\right) = 18.5$	(18.5–10.5) = + 8	(8 × 8) = + 64
20.5–24.5	9	$\left(\frac{20.5+24.5}{2}\right) = 22.5$	(22.5–10.5) = + 2	(9 × 12) = + 108
	Σf अर्थात् = + 148		Σfd = (212–64)	$n = 44$

संक्षिप्त विधि द्वारा समान्तर माध्य (M) का सूत्र–

$$M = A + \frac{\Sigma fd}{n} \text{ अथवा } A + \frac{\Sigma fd}{\Sigma f}$$

जहाँ $A = 10.5$ (कल्पित माध्य)

$$\Sigma fd = +148$$

$$\Sigma f \text{ या } n = 44 \text{ (बोरों की कुल संख्या)}$$

$$\therefore \quad M = 10.5 + \frac{148}{44} = 10.5 + \frac{37}{11}$$

$$= 10.5 + 3.36 = 13.86$$

2.9 समान्तर माध्य के गुण

माध्य प्रवृत्ति को मापने के साधन के रूप में समान्तर माध्य के महत्त्व को सभी स्वीकार करते हैं क्योंकि इसके निम्न गुण हैं–

नोट

नोट

(1) समान्तर माध्य स्पष्टत: परिभाषित होता है और इसीलिये उसके सम्बन्ध में किसी को भी कोई सन्देह नहीं होता।

(2) समान्तर माध्य की गणना अत्यन्त सरल होती है और इसीलिये माध्य निकालने के लिये गणित सम्बन्धी उच्चस्तरीय ज्ञान की आवश्यकता नहीं होती है।

(3) चूँकि समान्तर माध्य की गणना अत्यन्त सरल होती है। इसलिये इससे अधिकाधिक व्यक्ति लाभ उठा सकते हैं। क्योंकि सामान्य गणित जानने से भी वे माध्य निकाल सकते हैं।

(4) समान्तर माध्य निकालने के लिये विभिन्न श्रेणियों के अंकों को किसी व्यवस्थित क्रम में रखने की आवश्यकता नहीं पड़ती। अंक जैसे भी दिए होते हैं उसी रूप में उनका प्रयोग करके माध्य निकाला जा सकता है। क्योंकि इसमें जोड़ने, भाग देने और घटाने का ही काम केवल करना पड़ता है।

(5) समान्तर माध्य निकालने के लिए श्रेणियों (series) के सभी पदों के बारे में जानकारी आवश्यक नहीं है। यदि अंकों का अथवा पद के परिणामों का कुल योग एवं उनकी संख्या भी मालूम है तो उनके द्वारा समान्तर माध्य ज्ञात किया जा सकता है। इसी प्रकार यदि दो या दो से अधिक श्रेणियों में प्रत्येक का समान्तर माध्य ज्ञात हो तो सभी श्रेणियों का सम्मिलित (combined) समान्तर माध्य ज्ञात किया जा सकता है।

(6) समांतर माध्य में श्रेणियों के छोटे एवं बड़े सभी प्रकार के पदों के परिणामों को महत्त्व दिया जाता है और प्रत्येक पद की गणना केवल एक बार होती है। किसी पद मूल्य की न तो उपेक्षा की जाती है और न अधिक महत्त्व दिया जाता है।

(7) समांतर माध्य तुलनात्मक अध्ययन के लिए अत्यन्त उपयोगी होता है।

2.10 समान्तर माध्य के दोष

उपरोक्त गुणों के होते हुए भी समान्तर माध्य के कुछ अपने दोष हैं जो कि इस प्रकार हैं–

(अ) यह सम्भव है कि समांतर माध्य ऐसे परिणामों को प्रस्तुत करें जो कि वास्तव में असम्भव हों जैसे किसी स्टेशन पर प्रतिदिन उतरने वाले यात्रियों की संख्या का समान्तर माध्य 200. 45 हो सकता है। किंतु वास्तव में 200.45 व्यक्ति किसी भी स्टेशन पर कभी भी नहीं उतरते होंगे। उसी प्रकार प्रति माँ बच्चों की संख्या का माध्य 2.7 हो सकता है जो कि वास्तव में असम्भव है क्योंकि बच्चों की संख्या पूर्णांक में ही होती है, न कि .7 ।

(ब) समान्तर माध्य पर असाधारण इकाई का अनुचित प्रभाव पड़ता है, विशेषकर यदि ऐसी असाधारण इकाइयाँ बहुत बड़ी या बहुत छोटी हैं। उदाहरणार्थ, किसी कक्षा में यदि एक विद्यार्थी ने गणित में 100 अंक प्राप्त किए तथा शेष 6 विद्यार्थियों ने 20, 25, 19, 24, 15 आदि 28 अंक प्राप्त किए हों तो इसका समान्तर माध्य = 100 + 20 + 25 + 19 + 24 + 15 + 28 = 231 ÷ 7 = 33 होगा। यदि 100 अंक प्राप्त करने वाले विद्यार्थी को सम्मिलित न किया जाए तो समान्तर माध्य = 20 + 25 + 19 + 24 + 15 + 28 = 131 ÷ 6 = 22 के लगभग होगा। अत: स्पष्ट है कि यदि श्रेणियों में कोई बहुत बड़ी या बहुत छोटी आ जाए तो समान्तर माध्य समूह का वास्तविक चित्र प्रस्तुत करता है।

(स) यदि पदों की संख्या अधिक है तो इसे निरीक्षण मात्र से ही ज्ञात नहीं किया जा सकता। बड़ी संख्या में बड़े-बड़े जोड़, गुणा, भाग आदि करने की आवश्यकता होती है जो कि साधारण व्यक्ति के लिए सरल नहीं होता है।

(द) समांतर माध्य निकालने के लिये यह आवश्यक है कि पदमाला के समस्त पदों के मापों का योग अथवा अलग-अलग माप मालूम हो। यदि थोड़े से पद छूट जाएँ तो माध्य ज्ञात नहीं किया जा सकता जबकि माध्यिका अथवा मध्यांक (Median) और बहुलक (Mode) ज्ञात किया जा सकता है।

(य) समान्तर माध्य प्रगतिशील (progressive) तथा प्रतीयगामी (regressive) प्रवृत्तियों अर्थात् बढ़ती हुई या घटती हुई प्रवृत्तियों की ओर संकेत नहीं करता है और कभी-कभी तो इससे भ्रामक परिणाम प्राप्त होते हैं। उदाहरणार्थ, यदि एक विद्यार्थी को तिमाही, छमाही तथा वार्षिक परीक्षा में क्रमशः कुल अंक 381, 427 और 502 मिले और एक अन्य विद्यार्थी को यही अंक क्रमशः 502, 427, और 381 मिले तो दोनों का माध्य प्राप्तांक यद्यपि एक ही होगा पर उससे यह पता नहीं चलेगा कि एक के प्राप्तांक क्रमशः बढ़ते गए। इस प्रकार घटने-बढ़ने की प्रवृत्तियाँ माध्य द्वारा स्पष्ट नहीं हो सकतीं।

नोट

2.11 माध्यिका या मध्याँक

माध्यिका या मध्यांक किसी पदशृंखला से वह बिन्दु होता है जो सम्पूर्णशृंखला व श्रेणी (series) को दो बराबर भागों में विभाजित कर देता है। इस प्रकार 50 प्रतिशत पद मूल्य मध्यांक के ऊपर और शेष 50 प्रतिशत पद मूल्य उसके नीचे होते हैं। परन्तु ऐसा होने के लिये यह आवश्यक है कि सभी पद मूल्यों या चलराशि के मानों (values of variable quantities) को आरोही या अवरोही क्रमों (ascending or descending order) में रखा जाए। इस सन्दर्भ में यह स्मरणीय है कि मध्यांक कभी कोई विशिष्ट पद नहीं होता बल्कि मध्य पद का परिणाम अथवा माप ही मध्यांक है।

मध्यांक का अर्थ व विशेषताएं

डॉ० चतुर्वेदी (Chaturvedi) के अनुसार, ''यदि एक श्रेणी (series) के पदों को उनके परिणामों के आधार पर आरोही अथवा अवरोही क्रमों से लगाया जाए तो बिलकुल बीच वाली राशि के मान या माप को माध्यिका या मध्यांक कहते हैं।''

सर्वश्री घोष तथा **चौधरी** (Ghosh and Chowdhury) के अनुसार, ''मध्यांक श्रेणी में उस पद का मूल्य है जो कि श्रेणी को दो बराबर भागों में बाँटता है जिसमें से एक भाग में मध्यांक से कम और दूसरे भाग में मध्यांक से अधिक मूल्य होते हैं।''

उपरोक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट है कि मध्यांक दी हुई चलराशि के मानों के बीच वाली राशि का मान होता है। उदाहरणार्थ, किसी कक्षा के 31 विद्यार्थियों को उनकी ऊँचाई के अनुसार एक पंक्ति में खड़ा करने पर 16वाँ विद्यार्थी बिल्कुल बीच का विद्यार्थी होगा और उसी की ऊँचाई उन 31 विद्यार्थियों की ऊँचाई की माध्यिका होगी क्योंकि ऊँचाई यहाँ पर चल राशि (variable quantity) है। स्मरण रहे कि 16वाँ विद्यार्थी यद्यपि बिल्कुल बीच का विद्यार्थी है, पर 16 संख्या या राशि मध्यांक नहीं है बल्कि इस 16वें राशि के मान या माप को मध्यांक कहेंगे। इस प्रकार बीच वाला पद या राशि स्वयं मध्यांक का नहीं होता, उसे तो मध्यांक का मापदण्ड (scale of measurement) समझना चाहिए।

उपरोक्त विवेचना के आधार पर मध्यांक की निम्नलिखित विशेषताएँ स्पष्ट हैं–

(अ) मध्यांक बिलकुल बीच वाला पद नहीं होता है बल्कि उस पद का मान या मूल्य होता है।

(ब) मध्यांक सम्पूर्ण श्रेणी को दो भागों में विभाजित कर देता है जिसमें से एक भाग में इससे कम और दूसरे भाग में इससे अधिक मूल्य होते हैं।

(स) मध्यांक निकालने के लिये पदों को आरोही अथवा अवरोही क्रम से सजा लेना जरूरी होता है।

नोट

2.12 मध्यांक निकालने की विधि

मध्यांक ज्ञात करने की सामान्य विधि यह है कि पदों को आरोही अथवा अवरोही क्रम में लगा लिया जाये जैसे–1, 2, 3, 4, 5 अथवा 5, 4, 3, 2, 1. इसके बाद मध्य पद को मालूम किया जाता है; इस मध्य पद का मूल्य, मान अथवा माप ही मध्यांक होता है। अथवा यदि पदों की संख्या सम (even number) में है तो मध्य में कोई पद न होने के कारण मध्य के पदों के मूल्यों को जोड़कर आधा करने से मध्यांक ज्ञात होता है।

सरल श्रेणी का मध्यांक

सरल श्रेणी का मध्यांक निकालने के लिये निम्नलिखित दो सूत्रों का प्रयोग किया जाता है।

यदि किसी श्रेणी में कुल पदों की संख्या को n मान लिया जाये, तो मध्यांक का सूत्र इस प्रकार होगा–

(अ) यदि n सम संख्या (odd number) में है तो

$$\text{मध्यांक } Md = \frac{n+1}{2} \text{ वें पद का मान}$$

(ब) यदि n विषम संख्या (even number) में है तो

$$\text{मध्यांक } Md \frac{1}{2}\left[\frac{n}{2} \text{ वें पद का मान} + \left(\frac{n}{2}+1\right) \text{ वें पद का मान}\right]$$

उदाहरण 7. एक परीक्षा में 9 विद्यार्थियों के निम्न प्राप्तांकों का मध्यांक निर्धारित कीजिए– 25, 15, 23, 40, 27, 25, 23, 25, 20

हल–उपरोक्त प्रश्न के आधार पर मध्यांक ज्ञात करने के लिये हम सर्वप्रथम उक्त प्राप्तांकों को आरोही क्रम (Ascending order) में रखेंगे। ऐसा तब किया जायेगा जबकि कुल पदों की संख्या (n) विषम (odd number) में हो। प्राप्तांकों को आरोही क्रम में रखने से स्थिति इस प्रकार होगी–

क्रम संख्या	पद-मूल्य
1	15
2	20
3	23
4	23
5	25
6	25
7	25
8	27
9	40
$n = 9$	

चूँकि यहाँ पदों की कुल संख्या विषम (odd) अर्थात् 9 है, इसलिये मध्यांक निर्धारित करने का सूत्र होगा–

नोट

$$Me = \frac{n+1}{2} \text{ वें पद का मान}$$

$$= \frac{9+1}{2} \text{ वें पद का मान}$$

$$= \frac{10}{2} \text{ वें पद का मान} = 5 \text{ वें पद का मान अर्थात् } 25$$

मध्यांक $Me = 25$

खण्डित श्रेणी का मध्यांक

खण्डित श्रेणी का मध्यांक निकालने के लिये उसी सूत्र का प्रयोग किया जाता है जिसका कि सरल श्रेणी (विषम संख्या) में। अर्थात् $Me = \frac{n+1}{2}$वें पद का मान होता है। इसमें केवल पदों की कुल संख्या (n) मालूम करने के लिये संचयी आवृत्ति (cumulative frequency) निकालनी पड़ती है। निम्नलिखित उदाहरण द्वारा यह बात और भी स्पष्ट हो जायेगी–

उदाहरण 8. एक कारखाने के श्रमिकों की साप्ताहिक मजदूरी निम्नवत है। आप उससे मजदूरी का मध्यांक ज्ञात कीजिए–

साप्ताहिक मजदूरी (डालरों में)	श्रमिकों की संख्या
25	25
26	70
27	210
28	275
29	430
30	550
31	340
32	130
33	90
34	55
35	25

हल–चूँकि उपरोक्त सारणी में साप्ताहिक मजदूरी आरोही क्रम (ascending order) से दिया हुआ है, इसलिये मजदूरी का मध्यांक निकालने के लिये हमें केवल श्रमिकों की संख्या की संचयी आवृत्ति निकालनी होगी। अंतिम संचयी आवृत्ति स्वभावत: ही आवृत्तियों का कुल योग (n) होगा। इस प्रकार n मालूम हो जाने के बाद सूत्र $\frac{n+1}{2}$ के आधार पर हम उस पद को मालूम कर लेंगे जिसका मान या मूल्य ही मजदूरी का मध्यांक होगा। यह पद मालूम हो जाने के बाद हम यह

नोट

देखते हैं कि उस पद की स्थिति संचयी आवृत्ति की किस संख्या में है। उसी संख्या के सामने जो मजदूरी है, वही उस पद का मान अर्थात् मजदूरी का मध्यांक होगा। निम्नलिखित हल (solution) से इस स्थिति का और भी स्पष्टीकरण हो सकेगा–

सूत्र– $Me = \frac{n+1}{2}$ वें पद का मान

$= \frac{2200+1}{2} = \frac{2201}{2}$ वें पद का मान

$= 1100.5$ वें पद का मान

सारणी 2.5

साप्ताहिक मजदूरी (डालरों में)	श्रमिकों की संख्या (आवृत्ति)	संचयी आवृत्ति
25	25	25
26	70	(25 + 70) = 95
27	210	(95 + 210) = 305
28	275	(305 + 275) = 580
29	430	(580 + 430) = 1010
30	550	(1010 + 550) = 1560
31	340	(1560 + 340) = 1900
32	130	(1900 + 130) = 2030
33	90	(2030 + 90) = 2120
34	55	(2120 + 55) = 2175
35	25	(2175 + 25) = 2200
	$n = 2200$	

चूँकि 1100.5वां पद संचयी आवृत्ति के 1.560 वाले पद में सम्मिलित है (क्योंकि उससे ऊपर 1010 है जो कि 1100.5 से छोटा है), इसीलिये इसी 1560वें पद से संबंधित मजदूरी अर्थात् 30 डॉलर मध्यांक हुआ। इस रूप में मजदूरियों का मध्यांक = 30 डॉलर

अखण्डित श्रेणी का मध्यांक

अखण्डित श्रेणी का मध्यांक निकालने के लिये सर्वप्रथम खण्डित श्रेणी की तरह $\frac{n}{2}$ (formula) के आधार पर न कि $\frac{n+1}{2}$ सूत्र के आधार पर वर्गान्तर में मध्यांक की स्थिति ज्ञात की जाती है। जिस वर्गान्तर में मध्यांक स्थित होता है उसे मध्यांक वर्गान्तर कहते हैं। मध्यांक वर्गान्तर (Median class interval) पता लग जाने के बाद अखण्डित श्रेणी का मध्यांक निम्न सूत्र द्वारा निकाला जाता है–

$$Me = L + \frac{\frac{n}{2} - F}{f} \times i$$

नोट

उपरोक्त सूत्र में Me = मध्यांक

L = मध्यांक वर्गान्तर की निम्नतर सीमा

n = आवृत्तियों का कुल योग

f = मध्यांक वर्गान्तर की आवृत्ति

F = मध्यांक वर्गान्तर से पूर्व वर्ग की संचयी आवृत्ति

i = मध्यांक वर्गान्तर की उच्चतर व निम्नतर सीमाओं का अंतर

उदाहरण 9. अग्रलिखित बंटन में मध्यांक के मान ज्ञात कीजिये–

आय (रुपयों में)	व्यक्तियों की संख्या
100–200	15
200–300	33
300–400	63
400–500	83
500–600	100

हल–उपरोक्त सारणी के आधार पर मध्यांक की गणना करने के लिये सर्वप्रथम संचयी आवृत्ति का पता लगाना होगा, जैसा कि निम्नलिखित सारणी में दिखलाया गया है–

आय (रुपयों में)	व्यक्तियों की संख्या (आवृत्ति)	संचयी आवृत्ति
100–200	15	15
200–300	33	(15 + 33) = 48
300–400	63	(48 + 63) = 111
400–500	83	(111 + 83) = 194
500–600	100	(194 + 100) = 294
	$n = 294$	

उपरोक्त गणना के आधार पर अब हम मध्यांक वर्गान्तर का पता लगा सकते हैं अर्थात् उस वर्गान्तर को ज्ञात कर सकते हैं जिसमें कि मध्यांक की स्थिति है।

मध्यांक, वर्गान्तर $= \frac{n}{2}$ वें पद का मान

$= \frac{294}{2} = 147$वें पद का मान

इस 147वें पद की स्थिति संचयी आवृत्ति में 194 में है जिसका कि वर्गान्तर 400–500 है। यही मध्यांक वर्गान्तर है। अब मध्यांक की गणना हम निम्न सूत्र के आधार पर कर सकते हैं–

$$Me = L + \frac{\frac{n}{2} - F}{f} \times i$$

उपरोक्त गणना के आधार पर–

L = मध्यांक वर्गान्तर की निम्नतर सीमा = 400

n = आवृत्तियों का कुल योग = 294

नोट

F = मध्यांक वर्गान्तर से पूर्व वर्ग की संचयी आवृत्ति = 111

i = मध्यांक वर्गान्तर की उच्चतर व निम्नतर सीमाओं का अंतर

= (500–400) = 100

f = मध्यांक वर्गान्तर की आवृत्ति = 83

$$Mdn = 400 + \frac{\frac{294}{2} - 111}{83} \times 100$$

$$= 400 + \frac{147 - 111}{83} \times 100$$

$$= 400 + \frac{36}{83} = 400 + \frac{3600}{83}$$

$$= 400 + 43.37 = 443.37$$

अत: आय का मध्यांक = 443.37 रुपये।

उदाहरण 10. उपरोक्त उदाहरण में दिये गये प्रश्न को हम मध्यांक गणना के एक अन्य लोकप्रिय सूत्र के आधार पर भी हल कर सकते हैं। इस सूत्र को ही आजकल अधिक प्रयोग में लाया जाता है जो कि इस प्रकार है–

$Mdn = l + \frac{i}{f}(m - c)$ अथवा $Mdn = l + \frac{i}{f}\left(\frac{n}{2} - c\right)$ जबकि इस सूत्र में

l = मध्यांक वर्गान्तर की निम्नतर सीमा (lower limit of median class)

t = मध्यांक वर्गान्तर की उच्चतर व निम्नतर सीमाओं का अंतर
(class interval of median class)

f = मध्यांक वर्गान्तर की आवृत्ति (frequency of the median class)

m = मध्यांक संख्या (median number i.e., n/2)

c = मध्यांक वर्गान्तर से तुरंत पूर्व वर्ग की संचयी आवृत्ति स्मरण रहे कि अखण्डित

श्रेणी में वर्गान्तर में मध्यांक की स्थिति $\frac{n+1}{2}$ सूत्र के आधार पर नहीं अपितु $n/2$ सूत्र के आधार पर ज्ञात की जाती है।

हल–अब हम उपरोक्त आधार पर दिये गये प्रश्न को निम्न प्रकार से हल कर सकते हैं–

आय (रुपयों में)	व्यक्तियों की संख्या (आवृत्ति)	संचयी आवृत्ति
100–200	15	15
200–300	33	48
300–400	63	111
400–500	83	194
500–600	100	294
	n = 294	

$$\therefore \quad \text{मध्यांक वर्गान्तर} = \frac{n}{2} \text{वें पद का मान}$$

$$= \frac{294}{2} = 147\text{वें पद का मान}$$

नोट

इस 147वें पद की स्थिति संचयी आवृत्ति में 194 में है जिसका कि वर्गान्तर 400–500 है। यही मध्यांक वर्गान्तर होगा। अब मध्यांक की गणना उपरोक्त सूत्र के आधार पर इस प्रकार की जायेगी–

$$Mo = l + \frac{i}{f}(m - c)$$

यहाँ l = 400 (मध्यांक वर्गान्तर की निम्नतर सीमा)

i = 100 (मध्यांक वर्गान्तर की उच्चतर व निम्नतर सीमाओं का अंतर)

(500–400 = 100)

f = 83 (मध्यांक वर्गान्तर की आवृत्ति)

m = 147 (मध्यांक संख्या $\frac{n}{2}$)

c = 111 (मध्यांक वर्गान्तर से ठीक पूर्व वर्गान्तर की संचयी आवृत्ति)

$$Mo = 400 + \frac{100}{83}(147 - 111)$$

$$" = 400 + \frac{100}{83} \times 36 = 400 + \frac{3600}{83}$$

$$= 400 + 43.37 = 443.37$$

अत: आय का मध्यांक = 443.37 रुपये।

मध्यांक के गुण

मध्यांक के कुछ गुण निम्नलिखित हैं–

(1) मध्यांक बहुत सरलता से मालूम किया जा सकता है; और साथ ही इसे समझना भी आसान है। पदों को एक क्रम से लगा देने पर मध्यांक की स्थिति का मान आसानी से ज्ञात हो सकता है क्योंकि इसकी स्थिति बीचोंबीच में होती है।

(2) मध्यांक दिये हुए पदों का ही एक अंश होता है। इसलिये वह सम्पूर्ण समूहों का उचित प्रतिनिधित्व करता है। इसका मान सभी पदों पर आधारित होता है।

(3) यदि पदों की संख्या मालूम हो तो बिना समस्त पदों का परिणाम जाने ही मध्यांक ज्ञात किया जा सकता है। मध्यांक मालूम करने के लिये अन्तिम पदों की आवृत्तियाँ जानना भी आवश्यक नहीं है, केवल पदों की संख्या मालूम होनी चाहिये।

(4) समान्तर माध्य की भाँति मध्यांक पर किसी बहुत बड़ी संख्या या छोटी संख्या का अनुचित प्रभाव नहीं पड़ता है।

(5) कुछ अधिक पदों को जोड़ देने पर भी मध्यांक का आकार अधिक बदल नहीं जाता है।

(6) मध्यांक उस समय अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होता है जबकि अध्ययन का विषय या तथ्य की प्रकृति ऐसी हो जिसे कि निश्चित इकाइयों में मापा नहीं जाता है; जैसे कि बच्चे की बुद्धि आदि।

नोट

मध्यांक के दोष

उपरोक्त गुण होते हुए भी मध्यांक के कुछ अपने दोष निम्नवत् हैं–

(क) बीजगणितीय तरीकों से मध्यांक ज्ञात नहीं किया जा सकता अर्थात् यदि दो या दो से अधिक श्रेणियों का केवल मध्यांक अलग-अलग ज्ञात हो तो उनका सम्मिलित मध्यांक ज्ञात नहीं किया जा सकता। दूसरे शब्दों में, उन विभिन्न मध्यांकों से कोई एक ऐसा सामान्य मध्यांक नहीं निकाला जा सकता जो उन सभी श्रेणियों का उचित प्रतिनिधित्व कर सके। इसका कारण यह है कि एक श्रेणी का मध्यांक, जो उस श्रेणी का मध्य मूल्य होता है, दूसरी श्रेणी के मध्य मूल्य से पूर्णतया पृथक् होगा।

(ख) समान्तर माध्य की भाँति मध्यांक भी कभी-कभी वास्तविक स्थिति का निरूपण नहीं करता है अर्थात् मध्यांक किसी भी इकाई पर पूर्णरूप से लागू न हो क्योंकि श्रेणी में मध्यांक की स्थिति एक ऐसे स्थान पर हो सकती है जहाँ पर बहुत कम या कोई भी पद उसे मिलता-जुलता न हो।

(ग) पदमाला में बहुत ज्यादा अन्तर या विचलन होने पर कभी-कभी मध्यांक प्रतिनिधि मात्र नहीं होता अर्थात् पदों के विस्तार में बहुत ज्यादा भिन्नता होने पर परिणाम भ्रामक हो सकता है।

2.13 बहुलक

किसी पदमाला या श्रेणी श्रृंखला में जिस मूल्य की आवृत्ति सबसे अधिक होती है उसी मूल्य को बहुलक (Mode) कहते हैं। इस प्रकार बहुलक पदमाला का सर्वाधिक सामान्य मूल्य होता है। यह पदमाला का ऐसा मूल्य या परिणाम है जो दिए हुए आँकड़ों में सबसे अधिक बार आता है अथवा वह परिमाण है जिसके आसपास पदमाला के मूल्य अधिक बार एकत्रित रहते हैं। बहुलक का सबसे सरल अभिप्राय यह है कि उस मूल्य को प्राप्त करने वाले सबसे अधिक व्यक्ति हैं। उदाहरणार्थ, यदि किसी परीक्षा में दस विद्यार्थियों को क्रमशः 7, 9, 7, 5, 8, 12, 7, 6, 8 अंक प्राप्त हुए हों तो 7 बहुलक कहलाएगा क्योंकि यह संख्या सबसे अधिक बार प्राप्त की गई है या इसे प्राप्त करने वाले बालकों की संख्या सबसे अधिक है। निम्नलिखित परिभाषाओं से बहुलक का अर्थ और भी स्पष्ट हो जाएगा।

बहुलक की परिभाषा

श्री गिलफोर्ड (Gilford) ने बहुलक की परिभाषा इस प्रकार दी है– "बहुलक माप के पैमाने पर वह बिन्दु है जहाँ कि एक वितरण में सर्वाधिक आवृत्ति होती है।"

डॉ० चतुर्वेदी (Chaturvedi) ने लिखा है कि "बहुलक को चल (variable) का वह आकार जो सर्वाधिक बार आया है या सर्वाधिक आवृत्ति की बिन्दु अथवा सर्वाधिक घनत्व की बिन्दु कहकर परिभाषित किया जाता है। किसी श्रेणी (series) में बहुलक उस पद का वह मूल्य है जो कि सबसे अधिक विशिष्ट (characteristic) या सामान्य है।"

अपने दैनिक जीवन में हम लोगों को कहते हुए सुनते हैं कि एक भारतीय की औसत ऊँचाई 5' 6'' है; भारतीयों का रंग काला होता है; औसतन आदमी ईमानदार होता है; औसतन पृष्ठ में

300 शब्द होते हैं इत्यादि। इन सभी वाक्यों में 'औसत' शब्द वास्तव में बहुलक को ही प्रदर्शित करते हैं। उदाहरणार्थ, जब हम यह कहते हैं कि भारतीय की औसत ऊँचाई 5' 6'' होती है तो उसका तात्पर्य यह है कि भारतवासियों की ऊँचाई सबसे अधिक बार सम्मिलित है अथवा 5' 6'' ऊँचाई वाले भारतवासियों की संख्या भारत में सबसे अधिक है।

नोट

बहुलक की विशेषतायें

उपरोक्त परिभाषाओं व विवेचना के आधार पर बहुलक की निम्नलिखित विशेषताओं का उल्लेख किया जा सकता है–

(1) बहुलक एक श्रेणी (series) के सभी पदों पर आधारित होता है अत: उस पर पदमाला की बहुत छोटी या बहुत बड़ी संख्या (मूल्य) का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

(2) बहुलक आवृत्ति पर निर्भर है। इसीलिये पदों की अपेक्षा आवृत्ति का पदमूल्य होता है जिसकी आवृत्ति या बारम्बारता (frequency) सर्वाधिक है। अत: यह सबसे छोटा अधिक महत्त्व बहुलक ज्ञात करने में होता है।

(3) बहुलक पदमाला का सबसे अधिक मूल्य वाला पद नहीं होता, अपितु वह पदमूल्य भी हो सकता है।

(4) एक पदमाला में अधिकतम समान आवृत्ति वाले कई पदमूल्य होने पर बहुलक ज्ञात करना कठिन होता है। ऐसी स्थिति में एक से अधिक बहुलक का उल्लेख करना पड़ता है। जैसे– 1, 3, 4, 4, 6, 7, 6, 10, 7, 4, 7 में दो बहुलक 4 तथा 7 हैं।

बहुलक निकालना

सामान्य रूप से कहा जा सकता है कि बहुलक की गणना अपेक्षाकृत सरल है क्योंकि यह उस पद का मूल्य है जिसकी आवृत्ति एक पदमाला में सबसे अधिक है। अत: किसी भी पदमाला को व्यवस्थित ढंग से सजा लेने पर यह पता लग सकता है कि किस पद की आवृत्ति सबसे अधिक है। निम्नलिखित उदाहरणों द्वारा हम बहुलक निकालने की विधियों पर प्रकाश डालेंगे।

सरल श्रेणी का बहुलक

सरल श्रेणी का बहुलक निकालना अत्यन्त सरल है क्योंकि इसके लिये केवल विभिन्न पदों के मान अनुसार पदों को क्रम से लगा लेना होता है और जिस पद की बारम्बारता या आवृत्ति सबसे अधिक होती है वही बहुलक कहलाता है। निम्नलिखित उदाहरण से यह और भी स्पष्ट हो जाएगा–

उदाहरण 11. निम्न पद-मूल्यों से बहुलक ज्ञात कीजिए–

33, 20, 35, 50, 37, 33, 35, 25, 35, 34 और 35

हल–पद-मूल्यों को एक क्रम से रखने पर स्थिति इस प्रकार होगी–

20, 25, 33, 33, 34, 35, 35, 35, 35, 37, 50

उपरोक्त क्रम से यह स्पष्ट है कि 35 सबसे अधिक बार प्रयोग हुआ है अर्थात् इसकी आवृत्ति सर्वाधिक है। अत: उपरोक्त पद-मूल्यों का यही 35 बहुलक होगा।

खण्डित श्रेणी का बहुलक

खण्डित श्रेणी में बहुलक को दो रीति या विधि से हल किया जा सकता है–

(अ) निरीक्षण या परिदर्शन विधि (Inspection Method)

(ब) समूहन या समूहीकरण विधि (Grouping Method)

नोट

निरीक्षण या परिदर्शन विधि–इस विधि में आवृत्तियों पर नजर डालकर यह देख लिया जाता है कि कौन-सी आवृत्ति सबसे अधिक है। उस सर्वाधिक आवृत्ति का जो मान या मूल्य होता है, वही बहुलक होता है। निम्नलिखित उदाहरण से यह बात और भी स्पष्ट हो जायेगी।

समूहीकरण विधि को लागू करते हुए खण्डित श्रेणी का बहुलक निकालने के लिए सबसे पहले पदों को एक क्रम से लगा लिया जाता है, उसके पश्चात् इनके सम्मुख आवृत्तियाँ लिख दी जाती हैं। पहले आवृत्तियों को दो-दो करके, फिर तीन-तीन करके, फिर अधिक जोड़कर विभिन्न कालमों (खानों) में लिख देते हैं। इस प्रकार वर्गों में बाँट देने से यह पता लग जाता है कि किस पद की आवृत्ति सबसे अधिक है।

उदाहरण 12. निम्नलिखित सारणी से बहुलक की गणना कीजिए–

पदों का मान	आवृत्ति
5	1
9	7
13	11
17	5
7	2
11	9
19	4
15	8

(अ) निरीक्षण या परिदर्शन विधि (Inspection Method) द्वारा बहुलक की गणना करने के लिये, जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, हम सर्वप्रथम यह देखेंगे कि कौन-सी आवृत्ति (frequency) सबसे अधिक है। जो आवृत्ति सबसे अधिक होगी उसका जो मान या मूल्य दिया होगा, वही बहुलक भी होगा। उपरोक्त प्रश्न में 11 आवृत्ति सबसे अधिक है। अतः आवृत्ति 11 का जो पद-मान 13 × है, वही हमारा बहुलक होगा।

अतः $Mo = 13$ उत्तर

(ब) समूहन या समूहीकरण विधि (Grouping Method) द्वारा बहुलक की गणना निम्नलिखित रूप में की जायेगी। पर यहाँ यह स्मरणीय है कि बहुलक की गणना चाहे वह निरीक्षण (परिदर्शन) विधि से किया जाए अथवा समूह (समूहीकरण) विधि से; दोनों ही दशा में उत्तर एक-सा ही होगा। यह बात निम्नलिखित गणना से स्पष्ट हो जाएगी–

आवृत्तियाँ

	1	2	3	4	5	6
5	1					
		3		10		
7	2					
			9		18	
9	7					

नोट

		16				27
11	9					
			[20]	[28]		
13	[11]					
		[19]			24	
15	8					
			13			
17	5					17
		9				
19	4					

(1) सबसे पहले दिए हुए पदों के मान को एक क्रम से (जैसे 5, 7, 9, 11 इत्यादि) सजाकर लिख लिया और उनके प्रत्येक के सामने संबंधित आवृत्ति को लिख दिया जैसे कि कालम 1 में किया गया है।

(2) फिर आवृत्तियों के दो-दो के जोड़े लेकर उनके योग को कालम 2 में लिख दिया। जैसे – $1 + 2 = 3$; $7 + 9 = 16$; $11 + 8 = 19$ आदि।

(3) तत्पश्चात् प्रथम आवृत्ति को छोड़कर फिर दो-दो के जोड़े लेकर उन आवृत्ति के योग को कालम 3 में लिख दिया। जैसे प्रथम आवृत्ति 1 है, उसे छोड़कर दो-दो का जोड़ा $2 + 7 = 9$, $9 + 11 = 20$, $8 + 5 = 13$ कालम 3 में लिखा गया है। चूँकि अंत की आवृत्ति 4 का कोई जोड़ा नहीं है इसलिये उसे छोड़ दिया गया है।

(4) इसके बाद आवृत्तियों के तीन-तीन के जोड़े लेकर उनके योग को कालम 4 में रख दिया। जैसे $1 + 2 + 7 = 10$, $9 + 11 + 8 = 28$ कालम 4 में लिखे गये हैं। चूँकि आवृत्ति 5 और 4 का तीसरा जोड़ा नहीं है इसलिये इसको छोड़ दिया गया है।

(5) तत्पश्चात् प्रथम आवृत्ति को छोड़कर फिर तीन-तीन के जोड़ों का योग कालम 5 में लिख दिया। जैसे प्रथम आवृत्ति 1 है, उसे छोड़कर तीन-तीन का जोड़ा $3 + 7 + 9 = 19$, $11 + 8 + 5 = 24$ कालम 5 में लिखा गया है। अंत की आवृत्ति 4 का जोड़ा न बनने के कारण छोड़ दिया गया है।

(6) इसके बाद प्रथम दो आवृत्तियों को छोड़कर फिर तीन-तीन के जोड़े का योग कालम 6 में लिख दिया। जैसे प्रथम दो आवृत्ति 1 और 2 को छोड़ दिया और फिर तीन-तीन का जोड़ा बनाकर $7 + 9 + 11 = 27$, $8 + 5 + 4 = 17$ कालम 6 में लिख दिया गया।

(7) इस प्रकार पूर्ण सारणी बन जाने के बाद हम उससे यह पता कर सकते हैं कि प्रत्येक कालम में आवृत्तियों की कौन-सी संख्या सबसे बड़ी है। कालम 1 में 11 सबसे बड़ी संख्या है, कालम 2 में 19 सबसे बड़ी संख्या है, कालम 3 में 20, कालम 4 में 28; कालम 5 में 24 और कालम 6 में 27 सबसे बड़ी संख्या हैं जिन्हें कि हमने उपरोक्त सारणी में एक कोष्ठक के अंदर दिखाया है। इनमें से प्रत्येक संख्या के सामने पदों के जो मान हैं उन्हें हम निम्नलिखित सारणी में इस प्रकार दिखा सकते हैं–

नोट

सारणी 2.6. विश्लेषण सारणी

कालम नं॰	अधिकतम आवृत्ति वाले पद का मान				
1			13		
2			13	15	
3		11	13		
4		11	13	15	
5			13	15	17
6	9	11	13		
आवृत्ति संख्या	1	3	6	3	1

उपरोक्त सारणी 17 B इस प्रकार तैयार की गई है–

सारणी के कालम 1 की आवृत्तियों को देखने से पता चलता है कि 11 सबसे बड़ी संख्या है इसलिये उपरोक्त सारणी में उसके सामने वाले पद का मान 13 सारणी के कालम 1 के सामने लिख दिया गया है। कालम 2 में 19 सबसे बड़ी संख्या है जोकि 11 और 8 का योग है और इन 11 और 8 के सामने के पदों का मान क्रमशः 13 और 15 है। इसीलिये उपरोक्त सारणी में कालम 2 के सामने 13 और लिखा गया है। कालम 3 में 20 सबसे बड़ी संख्या है जोकि 9 और 11 का योग है और उनसे संबंधित पदों का मान क्रमशः 11 और 13 है जिसे सारणी में कालम 3 के सामने लिख दिया गया है। सारणी के कालम 4 में आवृत्तियों की सबसे बड़ी संख्या 28 है जो कि 9, 11 और 8 का योग है और इनसे संबंधित पदों का मान 11, 13 और 15 है जिन्हें कि सारणी में कालम 4 के सामने लिख दिया गया है। इसी प्रकार कालम 5 और 6 को भी भर लिया गया है और फिर आवृत्ति संख्याओं के योग को सारणी के सबसे नीचे दिखाया गया है। इस योग से पता चलता है कि 13 की आवृत्ति सबसे अधिक 6 बार हुई है। अतः 13 बहुलक है।

बहुलक की गणना प्रस्तुत करने का एक दूसरा तरीका–

उदाहरण 14. निम्नलिखित वितरण का बहुलक ज्ञात कीजिये–

आकार : 10 12 18 30 32 35 27 33 36 45 50

आवृत्ति : 4 7 3 2 5 9 8 3 5 2 6

उपरोक्त प्रश्न का हल एक ही सारणी के माध्यम से इस प्रकार भी प्रस्तुत किया जा सकता है–

आकार	आवृत्ति (*f*)	दो-दो के जोड़े (दो बार)		तीन-तीन के जोड़े (तीन बार)			विश्लेषण (Analysis)
	(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)
10	4						
		11					
12	7		10	14			
18	3				12		
		5				10	I = 1
30	2						III = 3
32	5		7				IIII = 6

नोट

		14		16			IIII = 4
35	9				22	20	
27	8		17				II = 2
		11					
33	3			16			I = 1
		7			10	13	
37	5		8				
45	2						
			8				
50	6						

उपरोक्त सारणी से ज्ञात होता है कि आवृत्तियों का विश्लेषण करने पर आवृत्ति 9 की विश्लेषण संख्या 6 बार आती है, जो कि सबसे अधिक है, अतः आवृत्ति 9 का मूल्य ही बहुलक होगा।

$\therefore$ Mo = 35

उपरोक्त रूप में प्रश्न को हल करने की विधि–

(1) सर्वप्रथम आवृत्ति के दो-दो जोड़े लेकर उनके योग को कालम 2 में लिखना होगा, जैसे $4 + 7 = 11, 3 + 2 = 5$ आदि। यदि अंत में दो का जोड़ा नहीं बन पाये, तो उप पद या संख्या को छोड़ दिया जायेगा। जैसे अंतिम संख्या 7 को छोड़ दिया गया है।

(2) इसके पश्चात् प्रथम आवृत्ति को छोड़कर दूसरी बार फिर दो-दो के जोड़े लेकर उसके योग को कालम 3 में लिखा जायेगा। जैसे उपरोक्त सारणी में प्रथम आवृत्ति 4 है, तो उसे छोड़कर आगे की आवृत्तियों का दो-दो का जोड़ा अर्थात् $2 + 5 = 7$ आदि कालम 3 में लिखेंगे। इसमें भी यदि अंत में जोड़ा नहीं गया तो उसे छोड़ देंगे।

(3) उसके बाद आवृत्तियों के तीन-तीन के जोड़े लेकर उनका योग कालम 4 में लिखेंगे, जैसे $4 + 7 + 3 = 14, 2 + 5 + 9 = 16$ इत्यादि। ऐसा करते हुए यदि अंत में तीन का जोड़ा नहीं बनता, अर्थात् आवृत्ति केवल एक या दो ही रह जाती है, तो उसे छोड़ दिया जायेगा।

(4) इसके बाद प्रथम आवृत्ति को छोड़कर फिर तीन-तीन के जोड़े लेकर उसका योग कालम 5 में लिखा जायेगा जैसे $7 + 3 + 2 = 12$ आदि। इसमें भी यदि अंत में तीन-तीन का जोड़ा नहीं बनता है, तो उसे छोड़ दिया जायेगा।

(5) इसके बाद प्रथम दो आवृत्तियों को छोड़कर तीसरी बार फिर तीन-तीन के जोड़े लेकर उसके योग को कालम 6 में लिखा जायेगा जैसे $3 + 2 + 5 = 10] 9 + 8 + 3 = 20$ आदि। इसमें भी यदि अंत में तीन-तीन का जोड़ा न बन पाये तो उसे छोड़ देंगे।

(6) तत्पश्चात् विश्लेषण करते समय कालम 1 से कालम 6 तक की आवृत्तियों को ध्यान में रखना होगा। कालम 1 में जो आवृत्ति सबसे अधिक होगी, विश्लेषण करते समय कालम 7 में उसके सामने एक निशान लगायेंगे। उदाहरणार्थ, कालम 1 में 9 आवृत्ति सबसे अधिक है, अतः 9 के सामने कालम 7 में एक निशान लगायेंगे। इसके बाद कालम 2, 3, 4, 5, 6 में जिन आवृत्तियों का योग सबसे अधिक होगा और वह जोड़ कालम 1 में दिये गये जिन आवृत्तियों के सामने कालम 7 में एक-एक निशान लगायेंगे। उदाहरणार्थ, कालम 2 में योग 14 सबसे अधिक है और यह योग कालम 1 के 5 और 9 का है, इसलिये 5 और 9 के आगे कालम 7 में एक-एक निशान लगायेंगे। उसी प्रकार कालम 3 में योग 17 सबसे अधिक है और यह योग कालम 1 के 9 और 8 का है, इसलिये 9 और 8 के आगे कालम 7 में एक-एक निशान लगाया जायेगा।

(7) इस प्रकार विश्लेषण करने के पश्चात् कालम 7 में जिस आवृत्ति के सामने अधिक निशान होंगे, उसका जो पद-मूल्य या मान (Value) होगा, वही हमारा बहुलक होगा। उदाहरणार्थ, उपरोक्त सारणी में विश्लेषण वाले कॉलम में सर्वाधिक 6 निशान 9 आवृत्ति के सामने लगाये गये हैं। अत: 9 का मूल्य जोकि उपरोक्त सारणी में 35 है, वही बहुलक होगा।

नोट

अखण्डित श्रेणी का बहुलक

अखण्डित श्रेणी का बहुलक मालूम करने के लिये सबसे पहले निरीक्षण द्वारा उस वर्गान्तर (class interval) का पता लगाना चाहिये जिसमें बहुलक स्थित है। यदि बहुलक एक से अधिक है या निरीक्षण द्वारा बहुलक का पता नहीं चल रहा है तो उपरोक्त विधि, जैसा कि सारणी में दिखाया गया है, से बहुलक के वर्गान्तर का पता लगाना चाहिये। तत्पश्चात् निम्नलिखित सूत्र द्वारा बहुलक ज्ञात करना चाहिए।

$$Mo = L + \frac{f - f_1}{2f - f_1 - f_2} \times i$$

इस सूत्र में–

Mo = बहुलक

L = बहुलक वर्गान्तर की निम्न सीमा

i = बहुलक वर्गान्तर की उच्चतम और निम्नतम सीमाओं का अंतर

f = बहुलक वर्गान्तर की आवृत्ति

f_1 = बहुलक वर्गान्तर से पहले वाले वर्गान्तर की आवृत्ति

f_2 = बहुलक वर्गान्तर से अगले वाले वर्गान्तर की आवृत्ति

उदाहरण 14. निम्नांकित तालिका में एक कक्षा के 40 विद्यार्थियों के प्राप्तांक दिये गये हैं। आप निरीक्षण विधि (Inspection Method) तथा समूहीकरण विधि (Grouping Method) द्वारा बहुलक ज्ञात कीजिये।

प्राप्तांक	0–10	10–20	20–30	30–40	40–50	50–60	60–70	70–80
विद्यार्थियों की संख्या	5	4	8	6	2	6	7	2

हल–(अ) निरीक्षण विधि द्वारा बहुलक की गणना इस प्रकार की जाएगी–

प्राप्तांक	विद्यार्थियों की संख्या (f)
0–10	5
10–20	4 (f_1)
20–30	8 (f)
30–40	6 (f_2)
40–50	2
50–60	6
60–70	7
70–80	2

प्रस्तुत प्रश्न में सबसे अधिक आवृत्ति 8 है, और इस आवृत्ति का मूल्य 20–30 वर्गान्तर में दिया हुआ है।

अत: इस वर्गान्तर का वास्तविक मूल्य निकालने के लिये निम्न सूत्र का प्रयोग किया जायेगा।

नोट

$$Mo = L + \frac{f - f_1}{2f - f_1 - f_2} \times I$$

इस प्रकार L = 20 (बहुलक वर्गान्तर की निम्नतम सीमा)

f = 8 (बहुलक वर्गान्तर की आवृत्ति)

f_1 = 4 (बहुलक वर्गान्तर से पहले वाले वर्गान्तर की आवृत्ति)

f_2 = 6 (बहुलक वर्गान्तर से अगले वाले वर्गान्तर की आवृत्ति)

I = 10 (बहुलक वर्गान्तर का अंतर (30 – 20 = 10)।

उपरोक्त मान को सूत्र में रखने पर–

$$Mo = 20 + \frac{8-4}{28-4-6} \times 10$$

$$\therefore \quad Mo = 20 + \frac{4}{16-4-6} = 10$$

$$\therefore \quad Mo = 20 + \frac{41}{6}$$

$$\therefore \quad Mo = 20 + 6.67 = 26.67$$

अत: बहुलक $(Mo) = 26.67$

(ब) समूहन या समूहीकरण विधि द्वारा बहुलक की गणना इस प्रकार की जायेगी–

वर्गान्तर	विद्यार्थियों की संख्या		दो-दो के जोड़े (दो बार)		तीन-तीन के जोड़े (तीन बार)			विश्लेषण (Analysis)
	(f)	(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)
0–10	5							I =1
			9					
10–20	4	(f_1)			17			II =2
				12				
20–30	8	(f)				18		IIII I =5
			14					
30–40	6	(f_2)		8			16	III =3
40–50	2		8		4			I =1
50–60	6					15		I =1
60–70	7			13				
70–80	2						15	I =1

उपरोक्त सारणी में आवृत्ति 8 का विश्लेषण 5 बार आया है, जो कि सबसे अधिक है। अत: इसका मूल्य 20–30 (जोकि वर्गान्तर में है) में वास्तविक मूल्य ज्ञात करने के लिये अग्रांकित सूत्र का प्रयोग किया जायेगा।

नोट

$$Mo = L + \frac{f - f_1}{2f - f_1 - f_2} \times i$$

$$Mo = 20 + \frac{8-4}{8\times 2-4-6} \times 10$$

$$\therefore \quad Mo = 20 + \frac{4}{16-4-6} \times 10$$

$$Mo = 20 + \frac{40}{6}$$

$$\therefore \quad Mo = 20 + 6.67$$

$$\text{अत: बहुलक} \quad (Mo) = 26.67$$

बहुलक के गुण

(1) बहुलक पदमाला का सर्वाधिक प्रतिनिधि मान होता है क्योंकि बहुलक वही होता है जिसकी आवृत्ति पदमाला में सर्वाधिक होती है।

(2) इसका अर्थ सरलता से समझा जा सकता है। बहुलक वह अंक है जो कि सबसे अधिक मात्रा में एक पदमाला में पाया जाता है।

(3) बहुलक की गणना शीघ्रता, सरलता एवं यथार्थता से की जा सकती है।

(4) बहुलक का एक उल्लेखनीय गुण यह है कि इस पर श्रेणी माला में विद्यमान कोई बहुत बड़ी संख्या या बहुत छोटी संख्या का कोई प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि बहुलक तो वह है जो सबसे अधिक बार एक श्रेणी में सम्मिलित है।

(5) न्यूनतम एवं अधिकतम पदों की संख्या व मान को मालूम किये बिना ही बहुलक मालूम किया जा सकता है बशर्ते कि वे पद बहुलक वर्ग के पद नहीं हैं।

(6) बहुलक की गणना ग्राफ की सहायता से बहुत सरलता से की जा सकती है।

(7) बड़े पैमाने में उत्पादन करने वाले उत्पादकों के लिये बहुलक अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होता है क्योंकि बहुलक के आधार पर ही वह उत्पादन के आकार को निर्धारित करते हैं। उदाहरण के लिये, बाजार में हमें उन मापों के जूते ही देखने को मिलते हैं जोकि अधिकांश लोगों के पैर में फिट हो सकते हैं। यदि किसी का पैर अस्वाभाविक रूप से बड़ा है तो उसे बाजार में जूता नहीं मिलता। यही बात सिले-सिलाये कपड़े के बारे में कही जा सकती है।

बहुलक के दोष

(1) बहुलक पर बीजगणित का प्रयोग नहीं किया जा सकता क्योंकि इसकी गणना आवृत्तियों के आधार पर की जाती है।

(2) बहुलक में न्यूनतम और अधिकतम पदमूल्यों की अवहेलना की जाती है जिसके फलस्वरूप बहुलक से इनके विषय में कोई अनुमान नहीं लगाया जाता।

(3) कभी-कभी बहुलक का निश्चित माप सरलता से ज्ञात नहीं होता है। कठिनाई उस अवस्था में विशेष रूप से पड़ती है जबकि एक पदमाला में एक से अधिक बहुलक होते हैं।

(4) बहुलक पदमाला के सभी पदमूल्यों का प्रतिनिधित्व नहीं करता बल्कि उन्हीं का करता है जिनकी कि आवृत्ति सबसे अधिक हो। उदाहरणार्थ, 100 विद्यार्थियों में 5 विद्यार्थियों के अंक तीन-तीन हैं जबकि अन्य सभी विद्यार्थियों के अंक एक-दूसरे से अलग-अलग हैं, परन्तु तीन से बहुत अधिक हैं। उस अवस्था में बहुलक 3 होगा जोकि केवल 5 विद्यार्थियों के अंकों का प्रतिनिधित्व करेगा, न कि शेष 95 विद्यार्थियों का।

नोट

उपरोक्त विवेचना से यह स्पष्ट है कि माध्य, मध्यांक तथा बहुलक उन प्रतिनिधि अंकों के द्योतक हैं जोकि अनेक आंकड़ों के बीच की स्थिति को व्यक्त करते हैं और इस बात की ओर संकेत करते हैं कि उन आँकड़ों की माध्य प्रवृत्ति क्या है। जब अनेक आँकड़ों के बीच हमारा निष्कर्ष एक ठोस स्थिति को प्राप्त करने में हिचकिचाता है। उस अवस्था में माध्य प्रवृत्तियाँ हमारे लिये मार्गदर्शक का कार्य करती हैं, हमें अपनी सुनिश्चित निष्कर्ष से विचलित होने से बचाती हैं तथा भ्रमपूर्ण ज्ञान से और अवैज्ञानिकता के अन्धकार से बचाती हैं। एक वैज्ञानिक अनुसन्धान के लिये यह कितनी बड़ी आवश्यकता है, यह तो वही जानते हैं जोकि वास्तव में वैज्ञानिक हैं, वैतालिक नहीं।

2.14 विचलन या विक्षेपण की माप

विचलन अथवा विक्षेपण (Dispersion) वह गुण है जिससे यह ज्ञात होता है कि पदों के मान उनके मध्यमानों (या माध्य, मूल्यों) से किस सीमा तक विचलित हैं। यह सच है कि माध्य मूल्यों (माध्य, मध्यांक व बहुलक) से सम्पूर्ण श्रेणी की केन्द्रीय प्रवृत्ति का पता लग जाता है। परन्तु इसके द्व ारा श्रेणी के विभिन्न पदमूल्यों का पूर्ण तथा निश्चित ज्ञान विशेषकर उस अवस्था में नहीं हो पाता है जबकि मध्यमान तथा अन्य पदमूल्यों में अधिक अन्तर होता है। व्यावहारिक दृष्टिकोण से देखा जाये तो अनेक स्थल ऐसे आते हैं जहाँ मध्यमान भ्रामक परिणाम प्रदान करता है। उदाहरणार्थ : यदि किसी परिवार के पांच व्यक्तियों की आमदनी क्रमशः 20, 60, 200, 50 और 70 रुपये हो तो उनकी आमदनी का मध्यमान 80 रु० हुआ। यदि हमें इन पांचों आंकड़ों का पृथक्-पृथक् ज्ञान न हो तो मध्यमान के आधार पर हम यही समझेंगे कि परिवार के प्रत्येक व्यक्ति की आमदनी 80 या 80 रुपये के आसपास होगी जबकि वास्तविक स्थिति इससे कहीं भिन्न है। अतः ऐसी दशाओं में किसी ऐसे माप (Measure) की आवश्यकता पड़ती है जो अधिक-से-अधिक पदमूल्यों की जानकारी करा दे अर्थात् पदमूल्यों का मध्यमान से कितना विचलन है। इन्हीं मापों को विचलन के माप कहा जाता है।

विचलन के अर्थ को एक और उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। मान लीजिए, दो विद्यार्थियों के चार विषयों में प्राप्तांक 28, 60, 60, 92 और 56, 60, 60, 64 हैं जबकि प्रत्येक विषय में पूर्णांक 100 और पास होने के लिये 33 अंक आवश्यक हैं। इन विद्यार्थियों के स्तर को जानने के लिए यदि समान्तर माध्य ज्ञात करें तो उसका मान दोनों विद्यार्थियों के लिए 60 आता है। अतः इस आधार पर दोनों विद्यार्थियों का स्तर समान प्रतीत होता है, जबकि वास्तव में ऐसा नहीं है क्योंकि पहला विद्यार्थी पहले विषय में अनुत्तीर्ण (failed) है, जबकि दूसरा विद्यार्थी प्रत्येक विषय में उत्तीर्ण है। अतः स्पष्ट है कि केवल मध्यमान के आधार पर ही श्रेणी के स्परूप का पूर्ण ज्ञान नहीं हो सकता।

विचलन की मापें

विचलन की मुख्य मापें इस प्रकार हैं–

(1) परिसर

नोट

(2) चतुर्थांशीय विचलन

(3) माध्य विचलन

(क) समान्तर माध्य से

(ख) मध्यांक से

(ग) बहुलक से

(4) मानक विचलन

परिसर

किसी श्रेणी या पदमाला के उच्चतम तथा निम्नतम पदों के अन्तर को परिसर कहते हैं। उदाहरणार्थ, यदि किसी समूह में 17, 10, 13, 5, 8, 20 और 25 अंक हैं तो उच्चतम पद अर्थात् 25 और निम्नतम पद अर्थात् 5 का अन्तर (25–5)=20 अंक इस श्रेणी का परिसर है।

परिसर की अपनी उपयोगिताएं हैं, जैसे (1) किसी श्रेणी से उसका प्रसार बहुत ही शीघ्रता से ज्ञात किया जा सकता है। केवल उच्चतम व न्यूनतम अंकों को ही ढूँढ़ना पड़ता है। (2) प्रसार के आधार पर यह जाना जा सकता है कि श्रेणी के पदमूल्य किन-किन अंकों के बीच फैले हुए हैं। इतना होते हुए भी परिसर का प्रयोग शीघ्रता व सरलता की दृष्टि से तो किया जा सकता है, परन्तु परिणाम की शुद्धता इससे प्राप्त नहीं की जा सकती। इसीलिये परिसर को विचलन-मापन का एक मोटा (crude or rough) साधन समझा जाता है। साथ ही, परिसर पर श्रेणी में विद्यमान बहुत बड़े या बहुत छोटे अंक (मान) का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है।

2.15 चतुर्थांशीय विचलन

दी हुई चल (variable) राशि के N मानों को यदि आरोही (ascending) अथवा अवरोही (descending) क्रम में रख दिया जाये तो श्रेणी के $\frac{(N+1)}{4}$ वें पद के मान को प्रथम चतुर्थांशीय मान Q_1 (first quartile), $2\frac{(N+1)}{4}$ वें पद के मान को द्वितीय चतुर्थांशीय मान (Q_2) अथवा मध्यांक तथा $3\frac{(N+1)}{4}$ वें पद के मान को तृतीय चतुर्थांशीय मान (Q_3) कहते हैं। प्रथम तथा तृतीय चतुर्थांशीय मानों के अंतर का आधा चुतर्थांशीय विचलन (Quartile Deviation) होता है जिसे कि निम्न सूत्र द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है–

$$\text{चतुर्थांशीय विचलन} = \frac{Q_3 - Q_1}{2}$$

उदाहरण 1. निम्नलिखित प्राप्तांकों का चतुर्थांशीय विचलन ज्ञात कीजिये–

10, 17, 12, 28, 24, 22, 15, 30, 35, 38, 20

हल–प्राप्तांकों को आरोही क्रम से रखने पर–

10, 12, 15, 17, 20, 22, 24, 28, 30, 35, 38

चूँकि उपरोक्त प्राप्तांकों के 11 पद हैं इसलिये यहाँ N = 11

नोट

$\therefore$ $Q_3 = \frac{11+1}{4}$ वें पद का मान

$= 3$ वें पद का मान

अर्थात् $Q_1 = 15$

तथा $Q_3 = \frac{3(11+1)}{4}$ वें पद का मान

$= \frac{3 \times 12}{4}$ वें पद का मान

$= 9$ वें पद का मान

अर्थात् $Q_3 = 30$

अर्थात् चतुर्थांशीय विचलन $= \frac{Q_3 - Q_1}{2}$

$= \frac{30-15}{2}$

$= 7.5$ अंक

2.16 चतुर्थांशीय विचलन का गुणांक

विभिन्न श्रेणियों के विचलनों की तुलना करने के लिये चतुर्थांशीय विचलन का उपयोग नहीं किया जा सकता क्योंकि यह एक निरपेक्ष (absolute) माप है। इसके आधार पर बनाया गया सापेक्ष माप (relative measure) चतुर्थांशीय विचलन का गुणांक है जिसका सूत्र इस प्रकार है–

चतुर्थांशीय विचलन का गुणांक $= \frac{Q_3 - Q_1}{Q_3 + Q_1}$

उपरोक्त उदाहरण के अनुसार–

चतुर्थांशीय विचलन का गुणांक $= \frac{30-15}{30+15}$

$= \frac{15}{45}$

$= \frac{1}{3}$

2.17 माध्य विचलन

माध्य विचलन माध्य से श्रेणी के प्रत्येक पद का समांतर माध्य (Mean) होता है। इसीलिए सर्वश्री घोष तथा चौधरी (Ghosh and Chowdhury) ने लिखा है कि माध्य से विचलनों के योग को पदों की संख्या से भाग देने पर जो परिणाम प्राप्त होता है उसे माध्य विचलन कहते हैं। अर्थात् एक माध्य से श्रेणी के प्रत्येक पद का विचलन निकाला जाए, फिर उनके योग को मालूम किया जाए

और अंत में उस योग को पदों की संख्या से भाग दिया जाए तो जो परिणाम निकलेगा वही माध्य विचलन होगा। इसकी प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

(1) यह गणितीय विधि से प्राप्त किया जाता है तथा श्रेणी की प्रत्येक इकाई को लेकर निकाला जाता है।

(2) विचलन माध्य से निकाला जाता है चाहे वह माध्य समांतर माध्य (Mean), मध्यांक (Median) या बहुलक (Mode) हो। यदि विचलन समांतर माध्य से ज्ञात किया गया है तो उसे समांतर माध्य से माध्य विचलन कहते हैं। उसी प्रकार यदि विचलन मध्यांक अथवा बहुलक से मालूम किया गया है तो उसे क्रमश: मध्यांक से माध्य विचलन अथवा बहुलक से माध्य विचलन कहते हैं।

2.18 माध्य विचलन की गणना

माध्य विचलन की गणना निम्नलिखित सूत्रों द्वारा की जाती है–

(अ) यदि सरल श्रेणी का माध्य निकालना है तो सूत्र इस प्रकार होगा–

$$\delta = \frac{\Sigma d}{n}$$

उपरोक्त सूत्र में संकेताक्षर δ = माध्य विचलन

Σd = माध्य (चाहे वह समांतर माध्य हो अथवा मध्यांक या बहुलक) से पद मूल्यों के विचलनों का योग।

n = पदों का कुल योग।

(ब) यदि खंडित श्रेणी अथवा अखंडित श्रेणी का माध्य निकालना है तो सूत्र इस प्रकार होगा–

$$\delta = \frac{\Sigma f d}{n} \text{ अथवा } \frac{\Sigma f d}{\Sigma f}$$

उपरोक्त सूत्र में संकेताक्षर

δ = माध्य विचलन

f = पदों की आवृत्ति

d = माध्य (चाहे वह समांतर माध्य हो अथवा मध्यांक या बहुलक) से प्रत्येक पद मूल्य का विचलन

fd = पदों की आवृत्ति एवं विचलन का गुणनफल

Σfd = उपरोक्त गुणनफलों का योग

Σf या n = आवृत्तियों का कुल योग।

आइये, उपरोक्त सूत्रों के आधार पर अब कुछ सवालों को वास्तविक रूप में हल करके देखें।

2.19 सरल श्रेणी

सरल श्रेणी का माध्य विचलन निकालने के लिए–

(क) सर्वप्रथम माध्य (प्रश्न के अनुसार समांतर माध्य अथवा मध्यांक या बहुलक) की गणना करनी होगी।

(ख) प्रत्येक पद मूल्य से समांतर माध्य अथवा मध्यांक या बहुलक का विचलन (जिसे कि सूत्र में संकेताक्षर क से दर्शाया जाता है) मालूम करना होगा।

(ग) इसके पश्चात् उपरोक्त विचलनों का योग ($\sum d$) ज्ञात करना होगा।

(घ) फिर पदों की कुल संख्या का योग (जिसे कि सूत्र में संकेताक्षर n से दर्शाया जाता है) निकालना होगा।

(ङ) अंत में द्रकधद सूत्र लगाकर माध्य विचलन की गणना करनी होगी।

नोट

प्रश्न हल करने के उपरोक्त नियम निम्नलिखित उदाहरणों से और भी स्पष्ट हो जायेंगे–

उदाहरण 2. एक कारखाने के कुछ कर्मचारियों की साप्ताहिक मजदूरी निम्न तालिका में दिये हुए हैं। आप समांतर माध्य मध्यांक तथा बहुलक को आधार मानते हुए माध्य विचलन अलग-अलग ज्ञात कीजिए। साप्ताहिक मजदूरी (रुपयों में) –120, 135, 142, 135, 140, 155, 135, 125, 146, 160, 150

हल– (i) समांतर माध्य को आधार मानकर–प्रस्तुत प्रश्न में समांतर माध्य से माध्य विचलन निकालने के लिए सर्वप्रथम समांतर माध्य निकालना होगा, जो कि निम्न प्रकार होगा–

मजदूरी का योग– $\sum x = 120 + 135 + 142 + 135 + 148 + 155 + 135 + 125 + 146 + 160 + 150 + \sum x + 1551$

$n = 11$ (मजदूरों की संख्या)

$\therefore$ समांतर माध्य $(M) = \frac{\sum x}{n} = \frac{1551}{11} = 141$

$\therefore$ $M = 141$ रुपये

अब इस समांतर माध्य को ध्यान में रखते हुए माध्य विचलन ज्ञात करने के लिए निम्न तालिका बनानी होगी–

मजदूरी (रु० में) (X)	समांतर माध्य (M)	(X – M) = d*
120	141	(120 – 141) = 21
135	141	(135 – 141) = 6
142	141	(142 – 141) = 1
135	141	(135 – 141) = 6
148	141	(148 – 141) = 7
155	141	(155 – 141) = 14
135	141	(135 – 141) = 6
125	141	(125 – 141) = 16
146	141	(146 – 141) = 5
160	141	(160 – 141) = 19
150	141	(150 – 141) = 9
n = 11		$\sum d$ = 110

नोट

अब माध्य विचलन का सूत्र लगाते हुए माध्य विचलन निम्न रूप में ज्ञात करेंगे–

माध्य विचलन (M.D.) या $\delta = \frac{\sum d}{n}$

जहाँ, $\sum d = 110$

$n = 11$ (मजदूरों की संख्या)

∴ $\delta = \frac{110}{11} = 10$

$= 10$

अतः माध्य विचलन $(\delta) = 10$ रुपये

(ii) मध्यांक को आधार मानकर–प्रस्तुत प्रश्न में मध्यांक से माध्य विचलन ज्ञात करने के लिए सर्वप्रथम मध्यांक ज्ञात करना होगा, जो इस प्रकार होगा–

मजदूरियों का आरोही क्रम (Ascending Order) में लगाने पर–

120, 125, 135, 135, 135, 142, 146, 148, 150, 155, 160

∴ मध्यांक $(Me) = \frac{n+1}{2}$ वें पद का मान

जहाँ, $n = 11$ (मजदूरों की संख्या)

∴ $Me = \frac{11+1}{2}$ वें पद का मान

$= \frac{12}{2} = 6$ वें पद का मान

यहाँ 6वें पद का मान = 142

अतः मध्यांक (Me) = 142 रुपये

अब इस मध्यांक को ध्यान में रखते हुए माध्य विचलन ज्ञात करने के लिए हमें निम्न तालिका बनानी होगी–

मजदूरी (रु. में) (X)	मध्यांक मान (Me)	$(X - Me) = (d)$*
120	142	(120 – 142) = 22
125	142	(125 – 142) = 17
135	142	(135 – 142) = 7
135	142	(135 – 142) = 7
135	142	(135 – 142) = 7
142	142	(142 – 142) = 0
146	142	(146 – 142) = 4
148	142	(148 – 142) = 6
150	142	(150 – 142) = 8
155	142	(155 – 142) = 13
160	142	(160 – 142) = 18
$n = 11$		$\sum d = 109$

अब माध्य विचलन का सूत्र लगाते हुए माध्य विचलन ज्ञात करेंगे–

$$\delta = \frac{\sum d}{n}$$

जहाँ, $\sum d = 109$

$n = 11$ (वस्तुओं की संख्या)

∴ $\delta = \frac{\sum d}{n}$

$= \frac{109}{11}$

$= 9.91$

अत: माध्यम विचलन (δ) = 9.91 रुपये

(iii) बहुलक को आधार मानकर–प्रस्तुत प्रश्न में बहुलक से माध्य विचलन ज्ञात करने के लिये सर्वप्रथम बहुलक ज्ञात करना होगा, जो निम्न प्रकार से ज्ञात किया जायेगा–

मूल्यों को एक क्रम में रखने पर–

120, 125, 135, 135, 135, 142, 146, 148, 150, 155, 160 |

उपरोक्त क्रमों से स्पष्ट है, कि यहाँ पर 135 सबसे अधिक बार प्रयोग हुआ है, और इसकी आवृत्ति सर्वाधिक अर्थात् तीन बार है। अत: यही बहुलक होगा–

Mo = 135 रुपये

अब इस बहुलक को ध्यान में रखते हुए माध्य विचलन ज्ञात करने के लिये हमें निम्न तालिका बनाना होगा–

वस्तुएँ रु० में (x)	बहुलक मूल्य (Mo)	(x – Mo) = (d)*
120	135	(120 – 135) = 15
125	135	(125 – 135) = 10
135	135	(135 – 135) = 0
135	135	(135 – 135) = 0
135	135	(135 – 135) = 0
142	135	(142 – 135) = 7
146	135	(146 – 135) = 11
148	135	(148 – 135) = 13
150	135	(150 – 135) = 15
155	135	(155 – 135) = 20
160	135	(160 – 135) = 25
$n = 11$		$\sum d = 116$

अब माध्य विचलन का सूत्र लगाते हुए माध्य विचलन ज्ञात करेंगे–

$$\delta = \frac{\sum d}{n}$$

नोट

जहाँ, $\Sigma d = 116$

$n = 11$ (मजदूरों की संख्या)

$$\therefore \quad \delta = \frac{116}{11}$$

$$= 10.54$$

अत: माध्य विचलन (δ) = 10.54 रुपये

2.20 खंडित श्रेणी

खंडित श्रेणी में माध्य विचलन ज्ञात करने के लिए–

(अ) सर्वप्रथम माध्य (सवाल के अनुसार समांतर माध्य अथवा मध्यांक या बहुलक) की गणना करनी होगी।

(ब) फिर प्रत्येक पद-मूल्य से माध्य (समांतर माध्य अथवा मध्यांक या बहुलक) का विचलन जिसे कि सूत्र में संकेताक्षर क के रूप में दर्शाया जाता है, मालूम करना होगा।

(स) इसके बाद प्रत्येक पद (आवृत्ति) (जिसे कि सूत्र में f के रूप में दर्शाया गया है) तथा उससे संबंधित विचलन (क) के गुणनफल (कि) को ज्ञात करना होगा।

(द) फिर इन समस्त गुणनफलों को जोड़कर उनका योग (द्रकि) मालूम करना होगा।

(य) इसके बाद आवृत्तियों (f) के कुल योग Σf अथवा n को ज्ञात करना होगा।

(इ) अंत में $\frac{\Sigma fd}{\Sigma f}$ अथवा $\frac{\Sigma fd}{n}$ का सूत्र लगाकर माध्य विचलन की गणना करनी होगी।

प्रश्न हल करने के उपरोक्त नियम निम्नलिखित उदाहरणों से और भी स्पष्ट हो जायेंगे–

प्राप्तांक– 12 25 27 30 35 15 40 45 50 35

विद्यार्थियों की संख्या– 4 3 2 2 5 8 9 6 7 4

हल–समांतर माध्य को आधार मानकर–उपरोक्त प्रश्न को समांतर माध्य द्वारा माध्य विचलन निकालने के लिये सर्वप्रथम समांतर माध्य की गणना करनी होगी, जो इस प्रकार होगी–

सारणी 2.7

प्राप्तांक (x)	विद्यार्थियों की संख्या (f)	$f.x$ (गुणनफल)
12	4	(12 × 4) = 4 8
25	3	(25 × 3) = 7 5
27	2	(27 × 2) = 5 4
30	2	(30 × 2) = 6 0
35	5	(35 × 5) = 175
15	8	(15 × 8) = 120
40	9	(40 × 9) = 360
45	6	(45 × 6) = 270

50	7	(50 × 7) = 350
35	4	(35 × 4) = 140
योग	$\Sigma f = 50$	$\Sigma dx = 1652$

समांतर माध्य का सूत्र–

$$= M \frac{\Sigma fx}{\Sigma f}$$

$$= \frac{1652}{50}$$

$$= 33.04$$

अत: समांतर माध्य = 33 लगभग

अब इस समांतर माध्य (*M*) 33 को आधार मानते हुए इसका प्राप्तांक (**x**) से विचलन ($x - M$) = d मालूम करना होगा। इसके बाद विद्यार्थियों की आवृत्ति (f) तथा विचलन (d) को गुणा करके $f.\ d$ ज्ञात करना होगा। अंत में $\Sigma fd/\Sigma f$ अथवा $\Sigma fd/n$ सूत्र का उपयोग करते हुए माध्य विचलन की गणना करनी होगी। निम्नलिखित सारणी में इसी का स्पष्टीकरण है–

प्राप्तांक (x)	विद्यार्थियों की संख्या (f)	प्राप्तांक से माध्य का विचलन $(x - m) = d^*$	विद्यार्थियों की संख्या तथा विचलन का गुणनफल ($f.\ d$)
12	4	(12 – 33) = 21	(4 × 21) = 84
25	3	(25 – 33) = 8	(3 × 8) = 24
27	2	(27– 33) = 6	(2 × 6) = 12
30	2	(30 – 33) = 3	(2 × 3) = 6
35	5	(35 – 33) = 2	(5 × 2) = 10
15	8	(15 – 33) = 18	(8 × 18) = 144
40	9	(40 – 33) = 7	(9 × 7) = 63
45	6	(45 – 33) = 12	(6 × 12) = 72
50	7	(50 – 33) = 17	(7 × 17) = 119
35	4	(35 – 33) = 2	(4 × 2) = 8
योग	$\Sigma f = 50$		$\Sigma fd = 542$

माध्य विचलन (M. D.) का सूत्र–

$$\delta = \frac{\Sigma f d}{\Sigma f} \qquad = \frac{542}{50} = 10.84$$

अत: माध्य विचलन = 10.84

(ii) मध्यांक को आधार मानकर–उपरोक्त प्रश्न में माध्य विचलन की गणना यदि मध्यांक को आधार मानकर की जाए, तो सर्वप्रथम हमें मध्यांक ज्ञात करना होगा जिसकी गणना निम्न प्रकार से की जायेगी–

नोट

सारणी 2.8

प्राप्तांक (x)	विद्यार्थियों की संख्या (f)	संचयी आवृत्ति (cf)
12	4	4
25	3	(4 + 3) = 7
27	2	(7 + 2) = 9
30	2	(9 + 2) = 11
35	5	(11 + 5) = 16
15	8	(16 + 8) = 24
40	9	(24 + 9) = 33
45	6	(33 + 6) = 39
50	7	(39 + 7) = 46
35	4	(46 + 4) = 50
योग	N = 50	

मध्यांक का सूत्र– $Me = \frac{N+1}{2}$ वें पद का मान

$= \frac{50+1}{2} = \frac{51}{2} = 25.5$ वें पद का मान

चूँकि यह 25-5वाँ पद संचयी आवृत्ति के 33 वाले पद में सम्मिलित है (क्योंकि उससे ऊपर 24 है जो कि 25-5 से छोटा है), इसलिये इसी 33वें पद से संबंधित प्राप्तांक का मान अर्थात् 40 मध्यांक होगा।

$Me = 40$

अब हम इस मध्यांक (Me) 40 को आधार मानकर इससे प्राप्तांक (x) के विचलन ($x - Me$) $= d$ ज्ञात करेंगे। अंत में माध्य विचलन का सूत्र लगाकर माध्य विचलन (δ) की गणना करेंगे। निम्न गणनात्मक विवरण इसी का स्पष्टीकरण है–

प्राप्तांक (x)	विद्यार्थियों की संख्या (f)	प्राप्तांक से मध्यांक का विचलन $(x - Me) = d$	विद्यार्थियों की संख्या एवं विचलन का गुणनफल $(f \cdot d)$
12	4	(12 – 40) = 28	(4 × 28) = 112
25	3	(25 – 40) = 15	(3 × 15) = 45
27	2	(27– 40) = 13	(2 × 13) = 26
30	2	(30 – 40) = 10	(2 × 10) = 20
35	5	(35 – 40) = 5	(5 × 5) = 25
15	8	(15 – 40) = 25	(8 × 25) = 200
40	9	(40 – 40) = 0	(9 × 0) = 0

2.21 मानक विचलन

नोट

इसको प्रमाप विचलन भी कहा जाता है। संकेत के रूप में इसे S. D. अथवा s (Small sigma) से व्यक्त किया जाता है। माध्य विचलन निकालने में एक बड़ा दोष यह रह जाता है कि हम विचलन के धन (+) और ऋण (–) चिह्न पर कोई ध्यान नहीं देते और विचलन को धनात्मक मान लेते हैं। मानक विचलन में इस दोष को दूर किया जाता है। विचलन के धन (+) और ऋण (–) चिह्नों के अंतर को समाप्त करने के लिये विचलन का वर्ग (Square) निकाल लिया जाता है और तब मानक विचलन ज्ञात करते हैं।

मानक विचलन की गणना

मानक विचलन ज्ञात करने के लिये हम निम्नलिखित गणना करते हैं।

(1) सर्वप्रथम हम समांतर माध्य से प्राप्त विचलनों का वर्ग (d^2) ज्ञात कर लेते हैं।

(2) विचलनों के वर्गों का योग ज्ञात करते हैं (Σd^2)

(3) इस योग को पदों की संख्या (N) से भाग देते हैं $\frac{\Sigma d^2}{N}$

(4) प्राप्त संख्या का वर्गमूल ज्ञात कर लेते हैं $\sqrt{\frac{\Sigma d^2}{N}}$

इस प्रकार मानक विचलन का सूत्र है–

$$\text{S. D. or } \sigma = \sqrt{\frac{\Sigma d^2}{N}}$$

हम d को और अधिक स्पष्ट करने के लिये इसे $(x - M)$ लिख सकते हैं इस प्रकार

$$\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma (x-M)^2}{N}}$$

यहाँ σ = मानक विचलन

x = चल राशि अर्थात् पद माला के विभिन्न पद का मान

M = पदों का समांतर माध्य

N = पदों की कुल संख्या

$d = (x - M)$

सूत्र $\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma d^2}{N}}$ से मानक विचलन ज्ञात करने को प्रत्यक्ष विधि द्वारा मानक विचलन ज्ञात करना कहा जाता है।

यदि दिये गये पदों का समांतर माध्य पूर्ण संख्या नहीं आती तो क का मान दशमलव में आता है अत: गणना कठिन हो जाती है। इस स्थिति से बचने के लिये हम संक्षिप्त विधि का प्रयोग करते हैं।

संक्षिप्त विधि का सूत्र–

$$\text{S. D. or } \sigma = \sqrt{\frac{\Sigma (x-A)^2}{N} - \left[\frac{\Sigma (x-A)}{N}\right]^2}$$

नोट

इस सूत्र में

x = चल राशि अर्थात् पद माला के विभिन्न पद का मान

A = कल्पित माध्य

N = पदों की कुल संख्या

यदि हम $(x - A)$ को d से व्यक्त करें तो सूत्र इस प्रकार हो जायेगा–

$$\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma d^2}{N} - \left(\frac{\Sigma d}{N}\right)^2}$$

मानक विचलन ज्ञात करने के लिये सूत्र (i) और सूत्र (ii) का प्रयोग सरल श्रेणी (Simple Series) के लिये किया जाता है। खंडित श्रेणी (Discrete Series) तथा सतत श्रेणी (Continuous Series) में मानक विचलन (S.D.) ज्ञात करने के लिये इन सूत्रों में थोड़ा परिवर्तन हो जाता है–

खंडित श्रेणी (Discrete Series) में सूत्र–

(i) प्रत्यक्ष विधि में

$$\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma f d^2}{N}}$$

उपरोक्त सूत्र में

s = मानक विचलन

f = पदों की आवृत्तियाँ

$d = (x - M)$ जहाँ ड समांतर माध्य है

N = आवृत्तियों का कुल योग

(ii) संक्षिप्त विधि का सूत्र–

$$\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma f' d'^2}{N} - \left(\frac{\Sigma f' d'}{N}\right)^2}$$

उपरोक्त सूत्र में

s = मानक विचलन

f' = पदों की आवृत्तियाँ

$\underline{d} = (x - A)$ जहाँ A एक कल्पित माध्य है

N = आवृत्तियों का कुल योग

सतत श्रेणी (Continuous Series) में सूत्र–

(i) प्रत्यक्ष विधि

$$\sigma = \frac{\Sigma f d^2}{N}$$

s = मानक विचलन

f = पदों की आवृत्तियाँ

d = प्रत्येक वर्गांतर के मध्य बिंदु (x) से समांतर माध्य का अंतर अर्थात् $(x - M)$ जहाँ ग प्रत्येक वर्गांतर (Class Interval) का मध्य बिंदु है।

N = आवृत्तियों का कुल योग

(ii) संक्षिप्त विधि का सूत्र

$$\sigma = i\sqrt{\frac{\Sigma f d^2}{N} - \left(\frac{\Sigma f d}{N}\right)^2}$$

नोट

इस सूत्र को और अधिक सरल करने पर इसका रूप इस प्रकार भी हो सकता है–

$$\sigma = \frac{i}{N}\sqrt{N\Sigma f d^2 - (\Sigma f d)^2}$$

उपरोक्त सूत्र में

s = मानक विचलन

t = वर्ग विस्तार

f = पदों की आवृत्तियाँ

d = प्रत्येक वर्गांतर के मध्य बिंदु (x) से समांतर माध्य का अंतर अर्थात् ($x - M$) जहाँ x प्रत्येक वर्गान्तर (Class interval) का मध्य बिंदु है।

मानक विचलन ज्ञात करने के लिये इन सूत्रों के प्रयोग को और अधिक स्पष्ट करने के लिये हम यहाँ प्रत्येक प्रकार की श्रेणी का उदाहरण लेंगे।

(अ) सरल श्रेणी (Simple Series)

उदाहरण 4. निम्नलिखित प्राप्तांकों का मानक विचलन ज्ञात कीजिए–

10, 12, 14, 16, 18, 20, 22, 24, 26, 28, 30, 32

हल–प्रत्यक्ष विधि से इस प्रश्न को इस प्रकार हल किया जायेगा–

सूत्र– $\sigma = \frac{\Sigma d^2}{N}$

प्राप्तांक (X)	**माध्य (M) से विचलन (d) यहाँ माध्य = 21**	**विचलन का वर्ग (d^2)**
1 0	–11	121
12	–9	81
14	–7	49
16	–5	25
18	–3	9
20	–1	1
22	+ 1	1
24	+3	9
26	+5	25
28	+7	49
30	+9	81
32	+11	121
$\Sigma x = 252$ N = 12		$\Sigma d^2 = 572$

नोट

$$\text{समांतर माध्य } (M) = \frac{\Sigma x}{N}$$

$$M = \frac{252}{12} = 21$$

$$\text{प्रमाप विचलन} \qquad (\sigma) = \sqrt{\left(\frac{\Sigma d^2}{N}\right)}$$

$$\text{यहाँ} \qquad \Sigma d^2 = 572$$

$$N = 12$$

सूत्र में मान रखने पर

$$\sigma = \sqrt{\frac{572}{12}}$$

$$= \sqrt{47.66}$$

$$\therefore \qquad \sigma = 6.9 \text{ लगभग}$$

यदि इस प्रश्न को हम संक्षिप्त विधि (Short-cut Method) से हल करना चाहें तो हल (Solution) इस प्रकार होगा–

$$\text{सूत्र} \qquad \sigma = \sqrt{\frac{\Sigma d'^2}{N} - \left(\frac{\Sigma d'}{N}\right)^2}$$

माना दिए गए प्राप्तांकों का कल्पित माध्य (A) 20 है।

प्राप्तांक (x)	**कल्पित माध्य (A) = 20 से प्राप्तांक (x) का विचलन (d')**	**विचलन (d') का वर्ग के d'^2**
10	−10	100
12	−8	64
14	−6	36
16	−4	16
18	–2	4
20	– 0	0
22	+2	4
24	+ 4	16
26	+ 6	36
28	+ 8	64
30	+ 10	100
32	+ 12	144
N = 12	$\Sigma d' = 12$	$\Sigma d^2 = 584$

$$\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma d'^2}{N} - \left(\frac{\Sigma d'}{N}\right)^2}$$

नोट

हल में

$$\Sigma d'^2 = 584$$
$$\Sigma d' = 12$$
$$N = 12$$

$$\sigma = \sqrt{\frac{584}{12} - \left(\frac{12}{12}\right)^2}$$

$$\sigma = \sqrt{48.66 - (1)^2}$$

$$= \sqrt{48.66 - 1}$$

$$= \sqrt{47.66}$$

$$\sigma = 6.9 \text{ (लगभग)}$$

(ब) खंडित श्रेणी (Discrete Series)

उदाहरण 5. निम्नलिखित प्राप्तांक और उनके नीचे उनकी आवृत्ति दी गई हैं। मानक विचलन (Standard Deviation) की गणना कीजिए।

प्राप्तांक:	21	20	19	18	17	16	15	14	13	12	11	10	9	8	7	6	5
आवृत्ति	1	0	0	2	1	2	3	2	3	4	6	8	7	5	2	1	3

हल–

प्रत्यक्ष विधि (Direct Method)

सूत्र $\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma fd^2}{N}}$

प्राप्तांक (x)	आवृत्ति (f)	fxx = fx	विचलन d(x–M) M=11	fxd = fd	fd² fdxd
21	1	21	10	10	100
20	0	0	9	0	0
19	0	0	8	0	0
18	2	36	7	14	98
17	1	17	6	6	36
16	2	32	5	10	50
15	3	45	4	12	48

नोट

14	2	28	3	6	18
13	3	39	2	6	12
12	4	48	1	4	4
11	8	88	0	0	0
10	8	80	– 1	– 8	8
9	7	63	– 2	– 14	28
8	5	40	– 3	– 15	45
7	2	14	– 4	– 8	32
6	1	6	– 5	– 5	25
5	3	15	– 6	– 18	108
$N(\Sigma f) = 50$		$\Sigma fx = 550$		$\Sigma fd^2 = 612$	

समांतर माध्य M $= \frac{\Sigma fx}{N}$

$\Sigma fx = 550, \quad N = 50$

$M = \frac{550}{50}$

$M = 11$

मानक विचलन $(\sigma) = \sqrt{\frac{\Sigma fd^2}{N}}$

$\Sigma fd^2 = 612, \quad N = 50$

$(\sigma) = \sqrt{\frac{612}{50}}$

$(\sigma) = \sqrt{12.4}$

$= 3.5$ (लगभग)

संक्षिप्त विधि द्वारा हल

सूत्र

$$(\sigma) = \sqrt{\frac{\Sigma fd'^2}{N} - \left(\frac{\Sigma fd'}{N}\right)^2}$$

माना दिए गए प्राप्तांकों का कल्पित माध्य $(A) = 10$ है।

प्राप्तांक (x)	आवृत्ति (f)	कल्पित माध्य $A = 10$ से प्राप्तांकों का विचलन d'	$f \times d'$ $= fd'$	$fd' \times d'$ $= fd'^2$
21	1	11	11	121
20	0	10	0	0
19	0	9	0	0
18	2	8	16	128
17	1	7	7	49
16	2	6	12	72
15	3	5	15	75
14	2	4	8	32
13	3	3	9	27
12	4	2	8	16
11	6	1	6	6
10	8	0	0	0
9	7	– 1	– 7	7
8	5	– 2	– 10	20
7	2	– 3	– 6	18
6	1	– 4	– 4	16
5	3	– 5	– 15	75
$(N\Sigma f) = 50$		$\Sigma fd' = 50$	$\Sigma fd'^2 = 662$	

$$(\sigma) = \sqrt{\frac{\Sigma fd'^2}{N} - \left(\frac{\Sigma fd'}{N}\right)^2}$$

$\Sigma fd'^2 = 662,$

$\Sigma fd' = 50, \qquad N = 50$

$$(\sigma) = \sqrt{\frac{662}{50} - \left(\frac{50}{50}\right)^2}$$

$$= \sqrt{13.24 - 1}$$

$$= \sqrt{12.24}$$

$= 3.5$ (लगभग)

(स) अखंडित या सतत श्रेणी (Continuous Series)

उदाहरण 6. निम्नलिखित सारिणी में एक नगर में विभिन्न में आयु वर्ग में जनसंख्या वितरण को प्रदर्शित किया गया है। इसका मानक विचलन (S.D.) ज्ञात कीजिए।

नोट

आयु वर्ग	संख्या (हजारों में)
0–10	18
10–20	16
20–30	15
30–40	12
40–50	10
50–60	5
60–70	2
70 से ऊपर	1

प्रत्यक्ष विधि द्वारा हल–प्रत्यक्ष विधि में हमको सतत श्रेणी को खंडित श्रेणी में बदलना होता है इसके लिए दिए गए वर्ग अंतरालों के मध्य-बिंदु ज्ञात कर लेते हैं और फिर $\sigma = \sqrt{\frac{\sum fd^2}{N}}$; सूत्र का प्रयोग करते हैं।

आयु वर्ग C.I.	वर्गांतरों का मध्यमान (x)	आवृत्ति (f)	f × x	मध्य – 27 से वर्गांतरों के मध्यमान का विचलन (d)	fd = f × d	fd² = fd × d
0–10	5	18	90	– 21	– 378	7938
10–20	15	16	240	– 11	– 176	1936
20–30	25	15	375	– 1	– 15	15
30–40	35	12	420	+ 9	108	972
40–50	45	10	450	+ 19	190	3610
50–60	55	5	275	+ 29	145	4205
60–70	65	2	130	+ 39	78	3042
70–80	75	1	75	+ 49	49	2401
		N (Σf) = 79	Σfx = 2055			Σfd² = 24119

मध्यमान $(M) = \frac{\sum fx}{N} = \frac{2055}{79}$

$= 26$ (लगभग)

मानक विचलन (σ) $\sigma = \sqrt{\frac{\sum fd^2}{N}} = \sqrt{\frac{24119}{79}}$

$\sigma = \sqrt{305.30}$

$\sigma = 17.47$

संक्षिप्त विधि द्वारा हल–मध्यमान पूर्ण संख्या में न होने पर deviation का मान दशमलव में आयेगा जिससे आगे की गणना कठिन हो जाती है और गलती की संभावना हो जाती है। अत: ऐसी

स्थिति में संक्षिप्त विधि द्वारा मानक विचलन की गणना की जानी चाहिये। इसको हम निम्नलिखित विधि द्वारा स्पष्ट कर रहे हैं।

उदाहरण 7. निम्नलिखित सारणी से मानक विचलन की गणना कीजिये–

वजन (पौण्ड में)	व्यक्तियों की संख्या
70–80	12
80–90	18
90–100	35
100–110	49
110–120	50
120–130	45
130–140	20
140–150	8

इस प्रश्न को संक्षिप्त विधि से हल करने के लिये हम बीच के किसी वर्ग अंतराल के मध्यमान माध्य के रूप में मान लेते हैं।

माना कल्पित माध्य $\frac{110+120}{2} = 115$ है। अब निम्नलिखित सारणी की रचना की जायेगी।

वजन (पौण्ड में) C.I.	व्यक्तियों की संख्या f	x वर्ग अंतराल के मध्य-बिंदु	$(X - A)$ वर्गों के मध्य-मान से कल्पित माध्य का विचलन	$(X-A/i)$ वर्ग विस्तार से भाग देकर कल्पित माध्य 115 से मध्य बिंदुओं का विचलन d	fd $f \times d$	$= fd^2$
70–80	12	75	–40	–4	–48	192
80–90	18	85	–30	–3	–54	162
90–100	35	95	–20	–2	–70	140
100–110	49	105	–10	–1	–49	49
110–120	50	115	0	0	0	0
120–130	45	125	10	1	45	45
130–140	20	135	20	2	40	80
140–150	8	145	30	3	24	72
$N = 237$					$\Sigma fd = -112$	$\Sigma fd^2 = 740$

सूत्र

$$\sigma = i\sqrt{\frac{\Sigma fd'^2}{N} - \left(\frac{\Sigma fd'}{N}\right)^2} = 10\sqrt{\frac{740}{237} - \left(\frac{-112}{237}\right)^2}$$

नोट

$$\sigma = 10\sqrt{3.12 - (-.47)^2} = 10\sqrt{3.12 - .211}$$

$$\sigma = 10\sqrt{2.909}, \quad \sigma = 17 \text{ (लगभग)}$$

इस प्रश्न में दी गई सारिणी में वर्ग अंतराल के मध्य-बिंदु (x) तथा वर्ग अंतराल के मध्य-बिंदु व कल्पित माध्य के बीच विचलन प्रदर्शित करने की आवश्यकता नहीं है। हमने इनको केवल पाठकों को समझाने हेतु उपयोग किया है।

2.22 विचलन का महत्त्व

सांख्यिकीय अनुसंधान को एक यथार्थ स्तर तक ले जाने के लिये विचलन की गणना वास्तव में महत्त्वपूर्ण है। माध्य, मध्यांक या बहुलक से पद-मूल्यों की समस्त विशेषताओं का ज्ञान नहीं होता है और इसीलिये यह संभावना सदा बनी रहती है कि हमारा निष्कर्ष भ्रमपूर्ण हो। इस भ्रम को दूर करने में विचलन की देन वास्तव में उल्लेखनीय है। वास्तव में माध्य और विचलन दोनों एक-दूसरे के पूरक होते हैं और एक के बिना दूसरा कुछ अधूरा-सा ही रह जाता है। माध्य और विचलन की संयुक्त गणना ही सही स्थिति का परिचय दे सकती है। उदाहरणार्थ, जब हम किसी देश के निवासियों के प्रतिव्यक्ति औसत आय ज्ञात करते हैं तो हमें उस देश के लोगों की गरीबी या अमीरी का पूरा-पूरा ज्ञान नहीं हो पाता है। यदि देश में कुछ लोगों के हाथों में धन या संपत्ति का केंद्रीकरण हो गया है और वे बहुत अमीर हैं तो प्रतिव्यक्ति औसत आय जो कुछ गणना के द्वारा हमें पता लगेगा वह अधिकांश लोगों की वास्तविक आय से कहीं अधिक ज्यादा होगी। अत: वास्तविक स्थिति का ज्ञान तब तक नहीं हो सकता जब तक विचलन का भी ध्यान न रखा जाए। अत: विचलन माध्य का पूरक है।

2.23 समवितरण की विशेषताएँ

समवितरण की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं:

(1) यदि छ 100 है और उनका वितरण सम है तो इस स्थिति में मध्यमान के ऊपर-नीचे बराबर अर्थात् 50 प्रतिशत आँकड़े होंगे। यदि हम समवितरण का पूर्ण विस्तार-क्षेत्र 100 न मान कर केवल एक मानें तो मध्यमान के ऊपर-नीचे .5 का विस्तार-क्षेत्र रहेगा।

(2) इसी प्रकार मध्यमान के दोनों ओर $\pm 1\sigma$ की सीमा तक कुल मिला कर दो तिहाई भाग आ जाता है। यदि कुल विस्तार-क्षेत्र 100 है तो मध्यमान $+1.0\,\sigma$ से मध्यमान -1.0σ तक की सीमा के बीच दो तिहाई के लगभग अर्थात् 68.26 आँकड़े आते हैं। यदि कुल-विस्तार-क्षेत्र को 1 मानें तो मध्यमान + 1.0 तथा मध्यमान (M)–1.0 के बीच .6826 भाग आएगा।

(3) इसी प्रकार $M + 2.0\,\sigma$ तथा $(M)-2.0\,\sigma$ की सीमा के बीच लगभग 95.44 प्रतिशत भाग आता है। अर्थात् यदि कुल विस्तार-क्षेत्र 100 आँकड़ों का है तो लगभग 95 आँकड़ों

(M) + 2.0 σ और (M)–2.0 σ के बीच पड़ेंगे।

यदि कुल विस्तार हम 1 मानें तो M ± 2.0 σ के बीच आँकड़ों की संख्या .9544 प्रतिशत होगी।

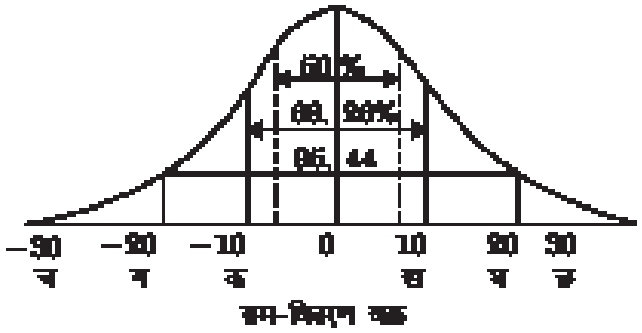

चित्र 2.1

इसी प्रकार M ± 3 σ की सीमा के बीच 99.74 प्रतिशत आँकड़े पड़ेंगे।

नीचे की आकृति से यह बात और स्पष्ट हो जाएगी:

इस आकृति में क ख बिन्दुओं के बीच की सीमा M ± 1σ की सीमा बताती है। (M) + 1σ के बीच 1/3 भाग है तथा (M) – 1σ के बीच 1/3 भाग है। (M) – 1σ के बीच के एक तिहाई आँकड़े (M) से नीचे अर्थात् छोटे हैं। इसी प्रकार (M) + 1σ के बीच के एक तिहाई आँकड़े मध्यमान से बड़े हैं। इस प्रकार दोनों ओर – 1σ से + 1σ तक कुल दो तिहाई आँकड़े हैं।

इसी प्रकार ग और घ के बीच 95.44 प्रतिशत आँकड़े आते हैं। ग बिन्दु मध्यमान (ल बिन्दु) से –2σ की दूरी पर है तथा घ + 2σ की दूरी पर। इन दोनों बिन्दुओं के बीच 95.44 प्रतिशत आँकड़े आते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि 95.44 (M) से नीचे छोटे आँकड़े (M)–2σ के बीच) $= \frac{95.44}{2} = 47.72$ प्रतिशत आँकड़े होंगे और (M) से ऊपर अर्थात् (M) +2σ के बीच भी इतने ही आँकड़े होंगे।

इसी प्रकार च और छ के बीच की दूरी (M) ± 3σ तक की सीमा बताती है। इनके बीच कुल आँकड़ों की संख्या 99.72 होती है।

उदहारण

मान लीजिए 600 विद्यार्थियों के I.Q's हैं जिनका Mean 107.5 है, प्र. वि. (S.D.) 8.6 है और आँकड़ों का वितरण सम है।

तो सम-वितरण की उपरोक्त विशेषता के अनुसार 600 में से 68.26 प्रतिशत (409.56) विद्यार्थियों के I.Q's 107.5 ± ×8.6 (M ± 1σ) अर्थात् 98.9 - 116.1 के बीच होंगे। इसी प्रकार 95.44 प्रतिशत के 107.5 ± 2 × 8.6 (M ± 2σ) अर्थात् 107.5 ± 17.2 = 90.3 – 124.7 के बीच होंगे। दूसरे शब्दों में, 95 प्रतिशत की दशा में सम्भावना इस बात की है कि उनके I.Q's 124.7 और 90.3 के बीच होंगे। केवल 5 प्रतिशत में ही उनके I.Q's के इस सीमा के परे होने की सम्भावना है। यदि हम ± 3 σ की सीमा को लें तो कह सकते हैं कि 99.72 प्रतिशत के I.Q's107.5 ± 3σ अर्थात् 106.4 ± 3 × 8.6 = 107.5 ± 25.8 = 81.7 – 133.3 के बीच होंगे। केवल 1 प्रतिशत बालकों के ही I.Q's की इस सीमा से परे होने की सम्भावना है अर्थात् सम-वितरण की दशा में 600 विद्यार्थियों में से केवल 6 विद्यार्थियों के ही I.Q. 81.7–133.3 की सीमा के परे होंगे और 594 के इस सीमा के बीच होंगे।

नोट

नोट

(i) इस प्रकार सम-वितरण में निहित प्रतिशत संख्या और सीमा के द्वारा हम कुल आँकड़ों की स्थिति जान लेते हैं। यह सम-वितरण की एक बहुत बड़ी विशेषता है तथा इसकी बहुत बड़ी उपयोगिता है।

(ii) दूसरी विशेषता यह है कि सम-वितरण में मध्यमान, मध्यांक मान (mdn.) तथा बहु. मा. (mode) सब वितरण के मध्यबिन्दु पर पड़ते हैं और उनका मान भी बराबर ही होता है।

(iii) तीसरी विशेषता यह है कि सम-वितरण की स्थिति में अन्तर्चतुर्थक (अ.च.) प्र. वि. (S.D.) का .6745 होता है, अर्थात् S.D. से लगभग 40 प्रतिशत बड़ा होता है। अ. च. (Q) को सम्भावित-त्रुटि अथवा स. त्रु. (Probable Error) अथवा (P.E.) भी कहते हैं। अत: इन सम्बन्धों को इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं।

P.E.= .6745 σ अथवा σ = 1.4826 P.E.

अ. च. (Q) तथा मध्यमान के बीच नीचे से अर्थात् उससे छोटे 25 प्रतिशत आँकड़े स्थित होते हैं। इस प्रकार, सम-वितरण में अन्तर्चतुर्थक (Q) का विस्तार-क्षेत्र 'मध्यस्थ पचास' प्रतिशत आँकड़े होते हैं और चूंकि Q और P.E. सम-वितरण में एक ही होते हैं अत: ± P.E. अर्थात् ±.6745 σ (क्योंकि P.E. = .6754 σ) के बीच मध्यमान के ऊपर 25 प्रतिशत और नीचे के 25 प्रतिशत आँकड़े आ जाते हैं।

इस प्रकार हम आँकड़ों की स्थिति जानने के लिए $\pm 1\sigma, \pm 2\sigma, \pm 3\sigma$ का प्रयोग न करके ±PE, ± 2PE, ± 3PE का भी प्रयोग कर सकते हैं।

2.24 सम-सम्भावना वक्र

सम-वितरण की यह विशेषता सम्भावना-सिद्धांत (theory of probability) पर आधारित है। सम्भावना सिद्धांत की साँख्यिकी-विज्ञान में ही नहीं बल्कि सब विज्ञानों में बड़ा महत्त्व है। अत: उसे पूर्णतया समझ लेना चाहिये।

यदि एक घटना के घटित होने के 'क' तरीके होते हों और 'ख' तरीके ऐसे हों जिनमें वह घटित नहीं हो सकती तो उस घटना के होने की सम्भावना (Probability) क/क+ख होगी। इसी प्रकार न होने की सम्भावना (probability) ख/क+ख होगी।

इसी प्रकार यदि ताश के 52 पत्तों में से हम 1 पत्ता खींच लें और यह जानना चाहें कि इस पत्ते के बादशाह होने की क्या सम्भावना है, तो सम्भावना सिद्धांत के अनुसार कह सकते हैं कि इसकी सम्भावना $\frac{4}{52}$ होगी, क्योंकि 52 पत्तों में कुल चार रंगों के चार बादशाह होंगे। इस प्रकार पान के बादशाह की सम्भावना $\frac{1}{52}$ होगी, क्योंकि सब ताशों में पान का बादशाह केवल एक ही है।

52 पत्ते हैं अत: खींचे हुए पत्ते की बादशाह होने और न होने की कुल सम्भावना 52 है। इसमें से चार बादशाह हैं। अत: इसमें से 4 तरीकों में इस पत्ते की सम्भावना की जा सकती है और 48 तरीके में इसके बादशाह न होने की सम्भावना होगी।

अत: घटित होने के तरीके = 4 न घटित होने के तरीके = 48

खीचें हुए पत्ते के बादशाह होने की सम्भावना (उपरोक्त क/क+ख नियम के अनुसार)

$$\frac{4}{4+48} = \frac{48}{52}$$

इसी प्रकार ख/क+ख नियम के अनुसार न घटित होने की संभावना $\frac{4}{4+48}=\frac{48}{52}$

यदि हम घटना के घटित होने तथा न होने की सम्भावनाओं को जोड़ें तो हर हालत में 1 आयेगा। अब यदि हम ऐसे दो सिक्के उछालें तो निम्नलिखित तरीकों में सिक्कों के जमीन पर गिरने की सम्भावना होगी।

नोट

मू.-मू., मू.-सन्, सन्-मू., सन्-सन्

कुल 4 तरीके होने की सम्भावना है या तो दोनों सिक्कों पर मूर्ति होगी या दोनों पर सन् या एक पर सन् और एक पर मूर्ति या एक पर मूर्ति और एक पर सन्। मू.-सन् तथा सन्-मूर्ति एक ही बात है। अत: सन्-मू. की सम्भावना दुगनी होगी अर्थात् दो बार ऐसा हो सकता है कि एक सिक्के पर मूर्ति और एक पर सन् आये। इस प्रकार

1. मू.-मू. होने की सम्भावना $(p)=\frac{1}{4}$
2. 2 मू.-सन् होने की सम्भावना $(p)=\frac{2}{4}=\frac{1}{2}$
3. सन्-सन् होने की सम्भावना $(p)=\frac{1}{4}$

बायीं ओर की घटनाओं तथा दायीं ओर की सम्भावनाओं को जोड़ने पर मू.-मू.स. मू.स.स. अथवा (मू.^{2} .2 मू. स. .स.2) = (मू. . स.)^2 = 1

इसी प्रकार 3 सिक्कों को उछालने पर निम्नलिखित 8 योग (Combinations) प्राप्त होंगे।

(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)
मू. मू. मू.	मू. मू. स.	मू. स. मू.	स. मू. मू.	मू. स. स.	स. मू. स.	स. स. मू.	स. स. स.

परन्तु योग (2), (3), (4) एक ही बात है। अत: मू. मू. स. की सम्भावना तीन गुनी अर्थात् $\frac{1}{8}+\frac{1}{8}-\frac{1}{8}=\frac{3}{8}$ होगी, क्योंकि कुल 8 योग है और प्रत्येक की सम्भावना $\frac{1}{8}$ है अर्थात् 3 मू.^{2} की सम्भावना $\frac{3}{8}$ होगी।

इसी प्रकार मू. स. स. (5), (6), (7) योगों की सम्भावना भी $\frac{3}{8}$ होगी अर्थात् 3 स.^{2} मू. की सम्भावना (p) भी $\frac{3}{8}$ होगी। दूसरे शब्दों में, दो सिक्कों पर सन् तथा एक पर मूर्ति एक साथ आने के योग की सम्भावना 3 है–अर्थात् 3 बार ऐसा हो सकता है।

इसके अतिरिक्त मू. मू. मू. की सम्भावना $(p)\frac{9}{8}$ स. स. स. की भी $\frac{1}{8}$ होगी।

चूँकि (1) मू. मू. मू. की सम्भावना (P) $=\frac{3}{8}$

(2) 3 मू.2 स. की सम्भावना (P) $=\frac{3}{8}$

(3) 3 स.2 मू. की सम्भावना (P) $=\frac{1}{8}$

(4) स. स. स. की सम्भावना (P) $= \frac{1}{8}$

इसलिए मू.^{3} . 3 मू.^{2} स. . 3 स.^{2} मू. . स.^{3} = 1

(बायीं तथा दायीं ओर की घटनाओं तथा सम्भावनाओं को जोड़ने पर)

नोट

अथवा (मू. . स.)^3 = 1

इसी प्रकार, यदि हम 10 सिक्के उछालें तो मू. स. (मूर्ति तथा सन्) के योग तथा उनकी सम्भावनाएँ (probability) (मू.स.)^{10} = 1 का विस्तार होगी, अर्थात्–

मू.^{10} + 10 मू.^{9} स. + 45 मू.^{8} स.^{2} + 120 मू.^{7} स.^{3} + 210 मू.^{6} स.^{4} + 252 मू.^{5} स.^{5} + 210 मू.^{4} स.^{6} + 120 मू^{3} स.^{7} + 45 मू.^{2} स.^{8} + 10 मू. स.^{9} + स.^{10} = 1

अर्थात् घटनाओं के घटने के कुल ढंग

1 + 10 + 45 + 120 + 210 + 252 + 210 + 120 + 45 + 10 + 1 = 1024 होंगे। इनमें से,

(1) मू.^{10} होने की सम्भावना होगी $\frac{1}{1024}$
(दस एक साथ मूर्ति आने की सम्भावना)

(2) मू.^{9} स. होने की सम्भावना होगी $\frac{1}{1024}$
(9 पर मूर्ति, 1 पर सन् आने की सम्भावना = 10)

(3) मू.^{8} स.^{2} होने की सम्भावना होगी $\frac{45}{1024}$
(8 पर मूर्ति 2 पर सन् = 45)

(4) मू.^{7} स.^{3} होने की सम्भावना होगी $\frac{120}{1024}$
(7 पर मूर्ति 3 पर सन् = 120)

(5) मू.^{6}स.^{4} होने की सम्भावना होगी $\frac{210}{1024}$
(6 पर मूर्ति 4 सन् = 210)

(6) मू.^{5} स.^{5} होने की सम्भावना होगी $\frac{252}{1024}$
(इसी प्रकार)

(7) मू.^{4} स.^{6} होने की सम्भावना होगी $\frac{210}{1024}$
(इसी प्रकार)

(8) मू.^{3} स.^{7} होने की सम्भावना होगी $\frac{120}{1024}$
(इसी प्रकार)

(9) मू.^{2} स.^{8} होने की सम्भावना होगी $\frac{45}{1024}$
(दो मूर्ति 8 पर सन् = 45)

(10) मू. स.^{9} होने की सम्भावना होगी $\frac{10}{1024}$
(इसी प्रकार)

(11) स.^{10} होने की सम्भावना होगी $\frac{1}{1024}$

नोट

इसी प्रकार binomial theorem के आधार पर घटनाओं की सम्भावना निर्धारित होती है।

अब यदि हम मूर्ति और सन् के इन योगों तथा उनकी सम्भावनाओं (1, 10, 45, 120, 210, 252, 210, 120, 45, 10, 1) से ग्राफ तैयार करें तो वह सम-सम्भावना-हिस्टोग्राम (normal probabiliy histogram) कहलायेगा। इसके लिए वक्र के य-यक्ष (x-axis) पर हम मू^{10} स., मू.^{9} स .....आदि योगों को स्थापित करेंगे तथा र-अक्ष (y-axis) पर उनकी सम्भावना-संख्याओं को। इस प्रकार निम्नलिखित हिस्टोग्राम बनेगा:

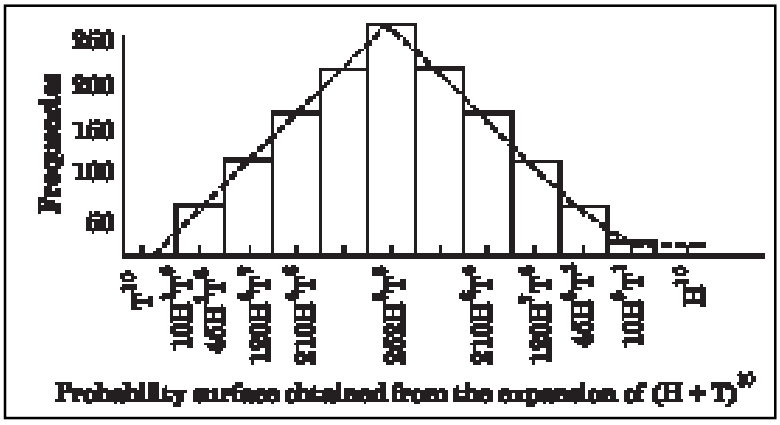

चित्र 2.2

उपरोक्त हिस्टोग्राम से एक बात बिल्कुल स्पष्ट है। संख्या 252 बीच की तथा सबसे बड़ी सम्भावना-संख्या है। इसके दोनों ओर संख्याओं का वितरण समान है। एक ओर 210, 120, 45, 10, 1 है तो दूसरी ओर भी 210, 120, 45, 10, 1 ही है। इस प्रकार इस हिस्टोग्राम में 252 के दोनों ओर क्षेत्रफल बराबर है और दोनों ओर के भागों की आकृति भी एक सी है।

उपरोक्त हिस्टोग्राम (मू.स.)^{10} केवल 10 सिक्कों के मू. तथा स. के योगों का ही विस्तार प्रकट करता है। इसीलिये उसमें 10 कोण दिखाई देते हैं। यदि सिक्कों की संख्या (N) असंख्य कर दी जाये तो हिस्टोग्राम में इतने असंख्य कोण बनेंगे कि वे दिखाई नहीं देंगे और उनके बिन्दुओं को मिलाने पर एक साल वक्र (smooth curve) बन जायेगा जिसके मध्यबिन्दु के दोनों ओर का क्षेत्रफल उपरोक्त हिस्टोग्राम की भाँति ही बराबर होगा तथा आकृति में भी दोनों भाग एक से होंगे। इसीलिये इस वक्र को सम-सम्भावना-वक्र (normal probability curve) कहते हैं। इसे सम्भावना (probability curve) इसलिये कहते हैं कि घटनाओं के योगों और उनकी सम्भावनाओं (probabilities) के आधार पर इसे तैयार किया जाता है। दूसरे इसलिये भी कहते हैं कि यदि इस वक्र (curve) का मध्यबिन्दु लेकर उसे दो भागों में बाँटें तो दोनों भाग क्षेत्रफल तथा आकृति में एक समान होते हैं। बीच में सबसे अधिक संभावनायें (Probabilities) होती हैं और फिर उसके दोनों ओर संख्याओं का एकसा वितरण होता है, जैसा कि ऊपर के हिस्टोग्राम से स्पष्ट है।

इसी वक्र के आधार पर सम-वितरण (normal distribution) की व्याख्या की जाती है तथा उसका प्रयोग होता है। सम-वितरण की सारी विशेषतायें इसी आधार से ली गई हैं।

2.25 समवितरण का प्रयोग

आगे के दो तीन उदाहरणों से समवितरण का प्रयोग बिल्कुल स्पष्ट हो जायेगा:

उदाहरण 1. एक समवितरण-स्थित अंक-समूह का M 125 है तथा प्र. वि. (S.D.) = 11 है, तो (अ) 114 और 136 के बीच कुल आँकड़ों में से कितने आँकड़े पड़ेंगे? (ब) कितने आँकड़े 140 से ऊपर पड़ेंगे?

$M = 125$ प्र. वि. $= 11$

114 - 136 के बीच अंक प्राप्त करने वालों की संख्या निकालनी है।

(अ) 114 मध्यमान 125 से 11 कम अथवा -1σ नीचे है। इसी प्रकार 136, मध्यमान 125 से 11 अधिक अथवा $+1\sigma$ दूर अथवा ऊपर है। अत: 114 - 136 के नीचे आँकड़ों की वही संख्या होगी जो M से $\pm 1\sigma$ की सीमा के बीच होगी। चूँकि समवितरण की स्थिति में $M \pm 1\sigma$ के बीच 68.26 प्रतिशत आँकड़े पड़ते हैं, अत: 114 - 136 के बीच कुल आँकड़ों का दो तिहाई अथवा 68.26 प्रतिशत आँकड़े होंगे।

नोट

(ब) मध्यमान 125 से 140 कुल 15 बड़ा है अथवा 125 से 140 का अंक 15 आँकड़े दूर स्थित है। प्र. वि. (S.D.) 11 से भाग करने पर कहेंगे कि 125 से 140 का अंक 1.36 σ की दूरी पर स्थित है। इसलिये मध्यमान $+1.36\sigma$ (अर्थात् मध्यमान के ऊपर केवल एक ही ओर) 41.31 प्रतिशत आँकड़े पड़ेंगे (तालिका द्वारा)। अत: 140 के ऊपर कुल आँकड़े $50.0 - 41.31 = 8.69$ प्रतिशत अथवा 9% होंगे।

उदाहरण 2.

एक सम-वितरण-स्थित अंक-समूह का Mean 16 है तथा प्र. वि. σ 4 है तो बीच के 75 प्रतिशत आँकड़े किस सीमा के बीच पड़ेंगे।

बीच के 75 प्रतिशत आँकड़ों के आधे डमंद के एक ओर पड़ेंगे तथा आधे दूसरी ओर, अन्यथा सम-वितरण हो ही नहीं सकता अर्थात् 37.5% एक ओर पड़ेंगे और 37.5 प्रतिशत दूसरी ओर। तालिका (A) में देख कर हम पता लगते हैं कि $M + 1.15\sigma$ के बीच 37.5 प्रतिशत आँकड़े पड़ते हैं। इसी प्रकार दूसरे 37.5% Mean तथा 1.15σ के बीच पड़ेंगे। अत: कुल 75% $M \pm 1.15\sigma$ के बीच पड़ेंगे। चूंकि $\sigma = 4$, इसलिये 75% आँकड़े $M \pm 1.15 \times 4 = M \pm 4.60$ के बीच पड़ेंगे। $M = 16$ है, इसलिये वे 16 ± 4.6 के बीच पड़ेंगे। अत: यह सीमा 20-6 – 11-4 हुई। 20.6 तथा 11.4 के बीच मध्यस्थ 75 प्रतिशत आँकड़े पड़ेंगे।

2.26 सम-सम्भावना-वितरण-तालिका का प्रयोग

किसी वितरण में मध्यमान (Mean) तथा य-यक्ष (x-axis) पर वितरण के किसी प्र. वि. σ के बीच कितने प्रतिशत आँकड़े आते हैं, यह ज्ञात करने के लिये एक तालिका प्रयोग किया जाता है।

पुस्तक के अन्त में तालिका–(A) को देखिये। उसके ऊपर पहली लाइन में लिखा है $\frac{x}{\sigma}$.00 .02.....09 तथा ऊपर से नीचे स्तंभों में संख्यायें लिखी हैं। पहले स्तंभ में ऊपर से नीचे की ओर प्र. वि. (σ) की दूरी दी गई है जो दशमलव के एक अंक बाद तक की है। यदि हमें म. मा. तथा 1.2σ के बीच आँकड़ों की संख्या देखनी है तो पहले $\frac{x}{\sigma}$ के स्तंभ के नीचे 1.2 का अंक पढ़ेंगे और ऊपर की पहली लाइन में .00 को पढ़कर उसी स्तंभ में नीचे की ओर आयेंगे ठीक 1.2 के आगे। जहाँ दोनों मिलेंगे वह Mean $+ 1.2\sigma$ के बीच आँकड़ों की प्रतिशत संख्या होगी। इसी प्रकार 1.38σ के बीच देखना होगा तो पहले स्तंभ में 1.3 के सामने रेखा खींचेंगे और फिर ऊपर की पहली पंक्ति में .08 देखकर उसी के नीचे स्तंभ में चले आयेंगे। जहाँ 1.3 के सामने वाली रेखा को यह रेखा काटेगी वही आँकड़ों की प्रतिशत संख्या होगी।

दूसरी बात यह याद रखने की है कि तालिका में जो संख्यायें दी गई हैं वे 10,000 में दी गई हैं। अत: प्रतिशत देखना है तो दो अंक बायीं ओर हटाकर दशमलव लगा देंगे।

6. अतिरिक्त उदाहरण प्रश्न

नोट

1. M = 14.4

   प्र. वि. (σ) = 2.5, तो सम्पूर्ण वितरण में 12 - 16 प्राप्तांकों के बीच प्रति हजार कितने विद्यार्थी आयेंगे?

   M तथा अंक 12 के बीच σ – दूरी $= \frac{12 - 14.4}{2.5} = \frac{-2.4}{2.5} = -96\sigma$

   Mean तथा $-.96\sigma$ के बीच प्रतिशत आँकड़ों की संख्या (तालिका से) = 33.15σ दूरी

   मध्यमान तथा अंक 16 के बीच $= \frac{16 - 14.4}{2.5} = +64\sigma$

   मध्यमान तथा $+.64\sigma$ के बीच प्रतिशत आँकड़ों की संख्या (तालिका से) = 23.89, अत: 12 - 16 दोनों प्राप्तांकों के बीच कुल प्रतिशत आँकड़े = 33.15 + 23.89 = 57.04

   1000 में = $57.04 \times 10 = 570.4$ अर्थात् 570

2. M = 14.4 σ = 2.5

   यदि अंक-वितरण सम हैं तो 1000 में कितने विद्यार्थियों के प्राप्तांकों की 18 से अधिक होने की सम्भावना है?

   σ – दूरी मध्यमान तथा प्राप्तांक 18 के बीच $= \frac{18 - 14.4}{2.5} = \frac{+3.6}{2.5} = 1.44\sigma$

   मध्यमान तथा 1.44σ के बीच प्रतिशत विद्यार्थियों की संख्या (तालिका से) = 42.51

   अत: 18 से ऊपर अंक प्राप्त करने वालों की प्रतिशत संख्या = 50.0 – 42.51 = 7.49

   {क्योंकि सम-वितरण में मध्यमान के ऊपर नीचे का प्रत्येक आधा भाग 50% होता है}

   अत: 1000 में 18 से ऊपर अंक लेने पर उत्तर पाने वालों की संख्या = 74.9 अथवा 75

   परन्तु 18 अंक की अपर सीमा 18.5 लेने पर उत्तर में 25 का अन्तर आयेगा। यदि अपर पूछा जाये तो पूर्णांक की बजाय अपर सीमा को ही लिया जाता है और जहाँ किसी अंक से नीचे के आँकड़ों की संख्या पूछी जाती है वहाँ उस अंक की अधर (lower) सीमा ली जाती है। जैसे–

3. उपरोक्त प्रश्न में 8 से नीचे अंक प्राप्त करने वालों की संख्या निकालनी है।

   मध्यमान तथा 8 के बीच σ-दूरी $= \frac{7.7 - 14.4}{2.5} = \frac{-6.9}{2.5} = -2.76\sigma$

   मध्यमान तथा $-2.76\ \sigma$ के बीच प्रतिशत विद्यार्थी = 49.71 (तालिका)

   8 की बजाय 7.5 लेने पर σ-दूरी = 2.76 तथा प्रतिशत आँकड़े = 49.71

   अत: 1000 में क्रमश: = 497

   7.5 से नीचे = 500 – 497 = 3

4. यदि अंकों के सम-वितरण में

   मध्यमान (M) = 14.4

   प्र. वि. (σ) = 2.5 तो 15 से अधिक अंक प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों की क्या सम्भावना है?

   मध्यमान तथा 15 प्राप्तांकों अर्थात् $\left(\frac{15.5 - 14.4}{2.5}\right) = .44\ \sigma$ दूरी के बीच आँकड़ों की संख्या = 17.0% (तालिका (A) द्वारा)।

15 से अधिक अंक प्राप्त करने वालों की संख्या = 50 ख़ 17 = 33%

अत: तीन में से एक की सम्भावना है कि उसके प्राप्तांक 15 से ऊपर होंगे।

5. मध्यमान तथा 1.54 σ के बीच कितने आँकड़े आयेंगे?

नोट

तालिका (A) में पहले स्तंभ में $\frac{\sigma}{x}$ के नीचे 1.5 देखिये और उसके सामने सीधी रेखा खींचिये। फिर सबसे ऊपर वाली पंक्ति में .04 के नीचे वाले स्तंभ में नीचे की ओर आइये और जहाँ 1.5 के ठीक सामने खींची गई लाइन को यह काटे उस खाने में जो संख्या लिखी है, वह देखिये। यह संख्या 43.83 है। अर्थात् 100 में 43.83 है। यदि पूरे वितरण को 10,000 मानें तो 4383 है। यदि 1 मानें तो .4383 होगी और 10 मानें तो 4.383 होगी।

6. इसी प्रकार मध्यमान तथा –1.73 σ के बीच 45.82 प्रतिशत आँकड़े होंगे। इसमें ऋणात्मक (–) चिन्ह का अर्थ है कि ये आँकड़े म. मा. से कम मान वाले अर्थात् बायीं ओर स्थित होने वाले होंगे।

7. इसी तरह यदि हमें 1.54 σ तथा –1.73 σ के बीच कुल आँकड़ों की संख्या निकालनी है तो डमंद तथा – 1.54 σ और डमंद तथा 1.73 σ के बीच के दोनों आँकड़ों को जोड़ देंगे। अत: कुल आँकड़े = 43.83 + 45.82 = 89.65 प्रतिशत होंगे। सम-वितरण-वक्र में उनकी स्थिति इस प्रकार होगी:

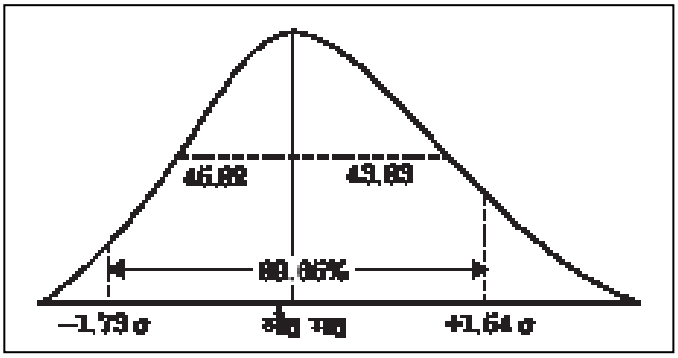

चित्र 2.3

8. इसी प्रकार यदि यह निकालना है कि + 1.54 σ के ऊपर अंक प्राप्त करने वालों की संख्या कितनी होगी तो हम उस स्थिति को चित्र द्वारा इस प्रकार दिखाएँगे।

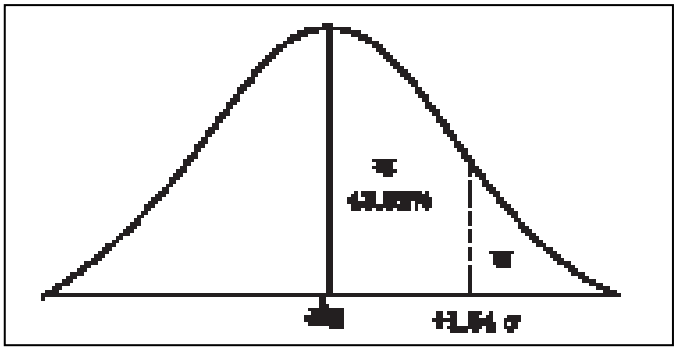

चित्र 2.4

नोट

इस आकृति में पूरा क्षेत्र सम-वितरण की हालत में एक इकाई माना जाता है जिसको मध्यमान दो बराबर भागों में बाँटता है। अत: क+ख दोनों पूरे का $\frac{1}{2}$ होगा। यदि पूरे भाग में 100 आँकड़े स्थित हैं तो आधे में अर्थात् क+ख में 50 होंगे। +1.54 σ औसत के दायीं ओर का वह क्षेत्रफल है जिसमें 43.82% आँकड़े आ गये हैं अत: ख भाग में 50.0 – 43.82 = 6.18% होंगे।

यदि पूरे भाग को 1000 मानें तो क + ख भाग में 500 आँकड़े होंगे और तालिका द्वारा क भाग में 4382 होंगे। अत: ख भाग में 61.8 होंगे।

इसी प्रकार औ. के बायीं ओर भी आँकड़ों की संख्या देखी जा सकती है।

संभावना त्रुटि

इसी प्रकार σ के स्थान पर P.E. का प्रयोग भी होता है। P.E. की भी तालिका दी रहती है। उसमें देखकर आँकड़ों की संख्या निकाल सकते हैं। अथवा P.E. को σ में बदल कर फिर आँकड़ों की संख्या निकाली जा सकती है क्योंकि P.E. = .6745 σ के होती है। यदि यह निकालना है कि मध्यमान तथा –2.7P.E. के बीच कितने आँकड़े होंगे तो हम P.E. को σ में बदल लेंगे।

1 P.E. = .6745σ

– 2.7 P.E. = 2.7 × .6745σ = – 1.82σ

σ की तालिका में मध्यमान तथा 1.82 σ के बीच 46.56% आँकड़े आते हैं। अत: म. मा. तथा – 2.7 P.E. के बीच 46.56% आँकड़े हुये।

9. कक्षा 8 के विद्यार्थियों के इतिहास के प्राप्तांकों का मध्यमान इस समय 40.0 है तथा गणित के प्राप्तांकों का मध्यमान 62.0 है। कुछ महीने पश्चात् पुन: परीक्षा ली जाने पर इतिहास का मध्यमान 52.0 तथा गणित का 72.0 आया, तो विद्यार्थियों ने किस विषय में उन्नति की तथा दूसरे से कितनी अधिक उन्नति की। इतिहास में प्र. वि. (σ) 3.6 तथा गणित का प्र. वि. (σ) = 9.60 है।

	इस समय	**कुछ माह पश्चात्**	**उन्नति**
इतिहास का मध्यमान	40.0	52.0	12.0
गणित का मध्यमान	62.0	72.0	10.8
उन्नति σ दूरी में =	(1) इतिहास में = 12/3.60 = 3.33 σ		
	(2) गणित में = 10.8/9.6 = 1.12 σ		

दोनों विषयों की उन्नति को σ-दूरी में बदल लेने पर वे परस्पर तुलनीय (comparable) हो गई। अत: स्पष्ट है कि इतिहास में अधिक उन्नति की है। 3.36/1.12 = लगभग तीन गुना अधिक उन्नति की है।

10. चार प्रश्न अ, ब, स, द में से अ को 50% ब को 60%, स को 70% तथा द को 80%, विद्यार्थी सही-सही करते हैं। अ तथा ब के बीच जो कठिनाई है उसकी स तथा द के बीच की कठिनाई से तुलना कीजिये। यदि वितरण सम है तो चारों प्रश्नों की कठिनता प्र. वि. (σ) में निम्न प्रकार होगी।

नोट

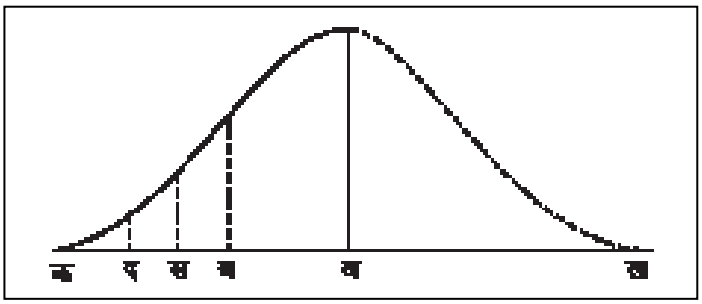

चित्र 2.5

(1) अ को 50% विद्यार्थी सही कर लेते हैं अर्थात् अ σ -पैमाने पर (क ख रेखा पर) अ-बिंदु पर पड़ेगा क्योंकि 50% इधर और 50% भाग उधर रहेगा। अत: यह बिल्कुल उस बिन्दु पर पड़ेगा जहाँ मध्यमान पड़ता है। इसलिये मध्यमान तथा इस बिन्दु की σ -दूरी शून्य होगी।

(2) 'ब' को 60% सही करते हैं तथा 40% नहीं कर पाते। अर्थात् 60% विद्यार्थी ऊपर और 40% नीचे रहे। ख अ तक 50% हो जाते हैं। 60% ऊपर रखने के लिये अ-बिन्दु से नीचे 10% भाग और लेना होगा ब-बिन्दु तक। अत: ब की स्थिति मध्यमान (अ-बिन्दु) से उतनी σ-दूरी नीचे होगी जितनी के बीच 10% आँकड़े आते हैं। तालिका (A) में देखने पर यह –.25 σ आता है।

अ की दूरी = 0.0 σ ब की दूरी = – .25 σ

अन्तर = + .25 σ, अत: अ, ब से +.25 σ अधिक कठिन है।

इसी प्रकार बिंदु स मध्यमान से 70 – 50 = 20% आँकड़ों की दूरी पर है। 20% आँकड़े .52 σ की दूरी में आते हैं। अत: स, अ से –.52 σ कम कठिन है।

इसी प्रकार 'द', अ से (80 – 50) = 30% अर्थात् –.84 σ कम कठिन है।

स तथा द की कठिनाई का अन्तर = – .84 σ – .52 σ = – .32 σ अर्थात् स, द से –.32 σ अधिक कठिन है।

अत: अ की ब से जो कठिनाई है वह उस कठिनाई से जो स की द से है 1.28 गुनी है $\left(\frac{-.32}{-2.5} = 1.28\right)$।

11. एक कक्षा के विद्यार्थियों को अ+, अ, अ-; ब+, ब, ब-; स+, स, स- तथा द ग्रेड (श्रेणियाँ) दी गई हैं। यदि तत्संबंधी योग्यता समवितरित है तो 500 में से कितने विद्यार्थी प्रत्येक श्रेणी में आयेंगे?

इस प्रश्न में सम-वितरण के सम्पूर्ण विस्तार को 10 श्रेणियों में बाँटा गया है। सम-वितरण का सम्पूर्ण विस्तार मध्यमान के दोनों ओर 3σ तक होता है। अत: कुल विस्तार = 6 σA 6 σ के विस्तार को 10 श्रेणियों में बाँटा गया है।

अत: प्रत्येक श्रेणी का विस्तार-क्षेत्र = $\frac{6}{10}\sigma = .60\,\sigma$ होगा। नीचे के चित्र में यह स्थिति इस प्रकार होगी:

नोट

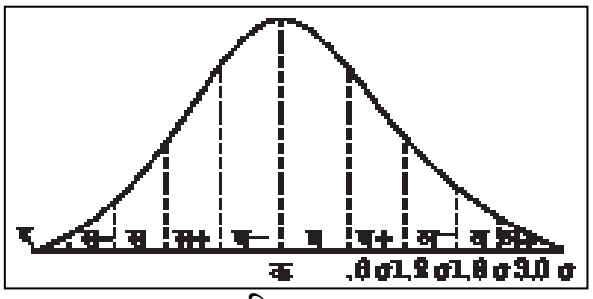

चित्र 2.6

मध्यमान ठीक बीच में क बिंदु पर होगा। क से ब .6 σ दूर है। ब से ब +.6 σ दूर है। अत: ब की दूरी क से (.6 + .6) = 1 .2 σ। इसी प्रकार ख-की दूरी क से 1.8 σ अ की 1.8 + .6 = 2.4 σ तथा अ़ की 2.4 σ + .6 σ = 3.0 σ हुई।

(1) मध्यमान अर्थात् क बिंदु तथा .6 σ के बीच आँकड़ों की संख्या (तालिका A से) = 22.57%। यही ब श्रेणी प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों की संख्या होगी। 500 में यह संख्या होगी

$$= 22.57 \times \frac{500}{100} = 112.85 \text{ अथवा } 113.$$

चूंकि मध्यमान के दोनों ओर वितरण एक सा होता है, अत: ब-श्रेणी प्राप्त करने वालों की संख्या भी 113 होगी।

(2) इसी प्रकार मध्यमान तथा c+ के बीच की दूरी 1.2σ के अन्तर्गत आँकड़ों की संख्या तालिका से 38.49%। परन्तु मध्यमान तथा ब के बीच 22.57% आते हैं। अत: केवल ब- श्रेणी प्राप्त करने वालों की संख्या = 38.49 – 22.57 = 15.92 अथवा 16। यह 500 में = 80। इतने ही स+ श्रेणी वालों की संख्या होगी।

(3) इसी प्रकार मध्यमान तथा अ- के बीच की दूरी 1.8 σ है और इसके बीच आँकड़ों की संख्या = 46.41% है, अत: अ-श्रेणी प्राप्त करने वालों की संख्या 46.41 – 38.49 = 7.92 अथवा 8%, अत: 500 में 8 × 5 = 40। इतनी ही संख्या मध्यमान के बायीं ओर स श्रेणी प्राप्त करने वालों की भी होगी।

(4) अ तथा स- प्राप्त करने वालों की प्रतिशत संख्या = मध्यमान तथा अ अथवा स- के बीच की दूरी (2.40 σ) के बीच आने वाले आँकड़ों का प्रतिशत होगी। मध्यमान तथा स- के बीच आने वाले आँकड़े = 49.18 – 46.41 = 2.77, ये 500 में = 2.77 × 5 = 13.85 = 14

(5) इसी प्रकार द तथा अ+ श्रेणी प्राप्त करने वालों की संख्या = 49.865 (3.0 σ तक आने वाले आँकड़ों की प्रतिशत संख्या) -49-18 (2.4 σ तक आने वाले आँकड़े) =.685। 500 में = 5 × .685 = 3.425 अथवा 3। इस प्रकार 500 विद्यार्थियों में से प्रत्येक श्रेणी के अन्तर्गत आने वाले विद्यार्थियों की संख्या होगी:

द,	स-,	स,	स़ए	ब-,	ब,	ब़ए	अ-,	अ,	अ़
3,	14,	40,	80,	113,	113,	80,	40,	13,	3

12. मान लीजिये 500 विद्यार्थियों की बुद्धि-लब्धि (I.Q.) का वितरण सम (normal) है तथा उसका मध्यमान 72 है प्र. वि. (σ) 10 है। इनमें से 10% को अ श्रेणी, 30% को

नोट

ब, 40% को स, 15% को द तथा 5% को य श्रेणी देनी है। तो प्रत्येक दो श्रेणियों का विभाजन करने वाली बुद्धि-लब्धि (I.Q.) का पता लगाइये।

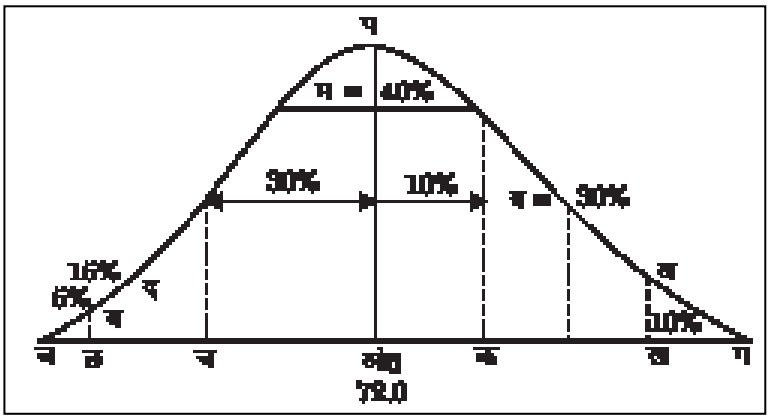

चित्र 2.7

मध्यमान समवितरण के ठीक दो बराबर भाग करता है। अत: मध्यमान पर रेखा वक्र के ठीक बीच में पड़ेगी। ऊपर का 10% भाग अ के अन्तर्गत तथा 30% ब के अन्तर्गत आ जाता है। मध्यमान से x बिंदु तक पूरा भाग 50% है। क से ग तक यह होगा (30 + 10) = 40% हो अ तथा ब के अन्तर्गत आ गया। अत: मध्यमान तथा क के बीच 50 – 40 = 10% रह गया।

इसी प्रकार छ से ज तक 5% य के अन्तर्गत तथा च से छ तक 15% द के अन्तर्गत आ गया। कुल भाग य तथा द के अन्तर्गत = 5 + 15 = 20%। मध्यमान से ज तक पूरा आधा भाग = 50%। अत: मध्यमान और च के बीच का भाग = 50 – 20 = 30%।

मध्यमान के दोनों ओर च तथा क तक स भाग रह गया जिसमें बायीं ओर 30% तथा दाईं ओर 10% आ जाता है।

प्रत्येक दो श्रेणियों को विभाजित करने वाले प्फ्ण ख, क, च तथा छ बिन्दुओं पर स्थित होंगे।

(1) क, मध्यमान से उतनी σ-दूरी पर है जितने के बीच 10% आँकड़े आते हैं। तालिका से 10% की σ-दूरी = .25 σ, परन्तु σ = 10A अत: इस बिन्दु पर जो I.Q. होगा वह होगा मध्यमान .25 × 10 = 2.5 I.Q. ऊपर अर्थात् 72 + 2.5 = 74.5 अथवा 75।

(2) इसी प्रकार 'ख' मध्यमान से उतनी σ-दूरी पर है जितनी σ-दूरी के बीच (10% + 30%) = 40% आँकड़े आते हैं। तालिका से यह दूरी 1.28 σ है। चूंकि σ क = 10 तथा मध्यमान = 72 है, अत: इस बिंदु पर स्थित होने वाला I.Q. = 72 + 1.28 × 10 = 84.8 या 85 होगा।

(3) इसी प्रकार च बिंदु पर स्थित होने वाला I.Q. मध्यमान से बायीं ओर .84 σ की दूरी पर है क्योंकि 30% आँकड़े मध्यमान तथा .84 σ के बीच आते हैं। अत: इस बिन्दु पर स्थित होने वाला I.Q. = 727.84 × 10 = 72 – 8.4 = 63.6 या 64।

(4) 'द' बिंदु मध्यमान से (30 + 15) = 45% विस्तार-क्षेत्र की दूरी पर है। यह दूरी तालिका A में 1.645 σ है। अत: इस बिन्दु पर स्थित होने वाला I.Q. = 72 – (1.645 ×10) = 72 – 16.45 = 55.55 या 56।

अतः चारों विभाजन-बिन्दुओं पर स्थित होने वाले I.Q. होंगे 56, 64, 75, 85-अर्थात् 85 से ऊपर I.Q. वाले अ श्रेणी में हैं, 75 से ऊपर I.Q. वाले ब श्रेणी में, 64 से ऊपर वाले स श्रेणी में, 56 से ऊपर वाले द श्रेणी तथा 56 से कम वाले य श्रेणी में।

नोट

2.27 आँकड़ों के वितरण की विषमता का परिमापन

उनमें सममिति होती है जैसा कि पहले समवितरण की विशेषताओं के अन्तर्गत बताया गया है। यदि वितरण-वक्र इससे भिन्न स्थिति में हो तो उसे विषम वितरण कहते हैं। विषम-वितरण (abnormal) दो प्रकार का हो सकता है:-

(क) स्क्यू

(ख) कुर्टोसिस अथवा ककुद्वक्रता

(क) स्क्यू

स्क्यू विषमता में मध्यमान तथा मध्यांक मान (Mdn) दोनों एक स्थान पर न पड़कर अलग-अलग पड़ते हैं तथा भ्वाकृष्टि-केन्द्र (center of gravity) दायीं अथवा बायीं ओर हटा हुआ होता है। समवितरण में मध्यमान तथा मध्यांक-मान (Mdn) दोनों का मान एक ही होता है तथा विषमता शून्य होती है। जितना ही एक-दूसरे के समीप होंगे उतनी ही स्क्यू-मात्रा कम होती जायेगी तथा उतना ही वितरण कम होगा। स्क्यू भी दो प्रकार का होता है:

(1) धनात्मक स्क्यू (Positive Skew) (2) ऋणात्मक स्क्यू (Negative Skew)

(1) **धनात्मक स्क्यू** (Positive Skew): धनात्मक स्क्यू में अधिकतर आँकड़े मध्यमान के बायीं ओर रहते हैं तथा दायीं ओर थोड़े आँकड़े रहते हैं और दूर तक फैले होते हैं जैसा कि नीचे की आकृति में दिखाया गया है। अर्थात् मध्यमान से कम मान वाले आँकड़े संख्या में बहुत अधिक होते हैं तथा उससे अधिक मान वाले आँकड़े कम होते हैं, पर वे मध्यमान से बहुत अधिक दूर तक फैले रहते हैं। दूसरे धनात्मक स्क्यू में मध्यांक मान (Mdn) मध्यमान के बायीं ओर पड़ता है।

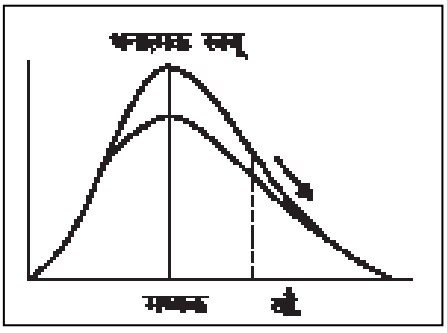

चित्र 2.8

(2) **ऋणात्मक स्क्यू** (Negative Skew): इस स्थिति में अधिकतर आँकड़े मध्यमान के दाहिनी ओर एकत्रित हो जाते हैं। अर्थात् मध्यमान से अधिक मान वाले आँकड़ों की संख्या अधिक होती है तथा वे एक-दूसरे के पास सटे हुये होते हैं। दूसरे इसमें मध्यांक मान (Mdn) मध्यमान के दायीं ओर पड़ता है अर्थात् मध्यांक का मान मध्यमान से अधिक होता है। नीचे के चित्र से यह स्पष्ट है।

नोट

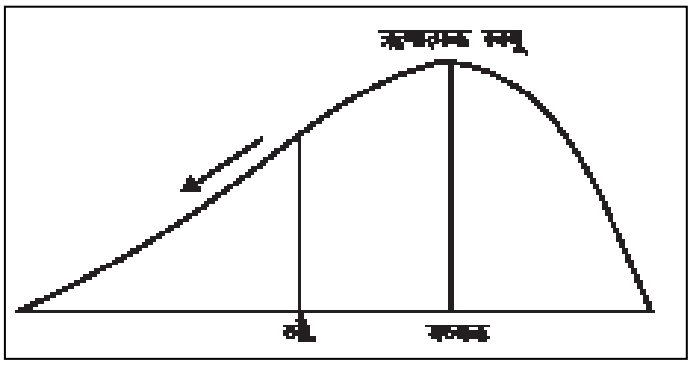

चित्र 2.9

स्क्यू-धर्मता का परिमाप (Measure of Skewness): स्क्यू-विषमता का सूचकाँक (index) निम्नलिखित सूत्र द्वारा निकाला जाता है:

(1) $SK = \frac{3(Mean - Mdn.)}{\sigma}$

दूसरा सूत्र शतांशीय मान द्वारा निकालने का है:

(2) $SK = \frac{P_{90} + P_{10}}{2} - P_{50}$

दोनों सूत्र द्वारा निकाले गये परिणामों में जितनी ही विषमता (skewness) अधिक होगी उतना ही अन्तर अधिक होगा। अत: वे परस्पर तुलनीय नहीं हैं।,

(ख) कुकुद्वक्रता

कुकुद्वक्रता (Kurtosis), वक्र (curve) के चपटा तथा शिखरीय (peaked) होने की स्थिति की ओर संकेत करती है। सम-वितरण-वक्र को जितना चपटा तथा ऊँचा होना चाहिये यदि उससे अधिक चपटापन अथवा शिखरीयता (peakedness) उसमें पाई जाती है तो वह कुकुद्वक्रता के अन्तर्गत आ जाता है। सम-वितरण-वक्र को मेसोकुर्टिक (Mesokurtic) भी कहते हैं।

जिस कुकुद्वक्रता की ऊँचाई समवक्र (normal curve) की ऊँचाई से अधिक होती है उसे लैप्टोकुर्टिक (Leptokurtic) कहते हैं।

जिस कुकुद्वक्रता का चपटापन समवक्र के चपटेपन से अधिक होता है उसे प्लैटीकुर्टिक (Platykurtic) कहते हैं। नीचे के चित्र में ये तीनों स्थितियाँ दिखाई गई हैं:

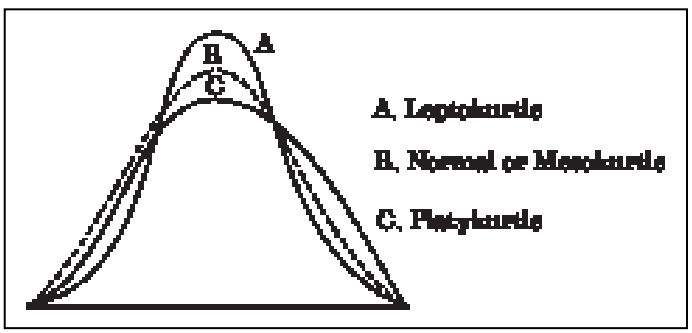

चित्र 2.10

कुर्टोसिस के निकालने का सूत्र निम्नलिखित है: $Ku = \frac{Q}{P_{90} - P_{10}}$

समवितरण-वक्र की कुकुद्वक्रता .263 होती है। यदि किसी वक्र में वह इससे अधिक है तो वितरण लैपटोकुर्टिक होता है।

नोट

(ग) अंक-वितरण के विषम होने के कारण

अंकों का कोई वितरण सम न होकर विषम (non-normal) क्यों हो जाता है इसके कई कारण हो सकते हैं। मनोवैज्ञानिक तथा शैक्षिक-परीक्षणों में इन कारणों को जानना भी आवश्यक होता है। निम्नलिखित दशाओं में स्क्यू अथवा कुकुद्वक्रता की स्थिति उत्पन्न हो सकती है:

1. प्रतिचयन (Sample)

(1) किसी भी गुण अथवा विशेषता का जब हम परिमापन करते हैं तो हम उन गुणधारी अथवा विशेषताओं-धारी वस्तुओं तथा व्यक्तियों की सृष्टि (population) में से केवल कुछ सीमित संख्या के एक या दो न्यादर्श (sample) ले लेते हैं। उन्हीं के गुणों का परिमापन करके उनके परिणामों को सम्पूर्ण सृष्टि पर लागू कर देते हैं। ऐसा इसलिए करते हैं कि सारी सृष्टि का परिमापन असम्भव होता है।

इस न्यादर्श की अपनी विशेषताओं पर ही हमारे परिणामों की शुद्धता तथा यथार्थता निर्भर रहती है। अत: जब यह चयन ठीक नहीं होता अथवा उसमें कोई महत्त्वपूर्ण दोष आ जाता है तो परिमापांकों का वितरण भी सम नहीं हो पाता। उदाहरण के लिए यदि हमारे न्यादर्श में अधिकतर बालक कुशाग्र-बुद्धि अथवा मन्द-बुद्धि वाले होंगे तो उनके बुद्धि-परिणामों के आँकड़ों का वितरण सम नहीं होगा। अत: स्पष्ट है कि न्यादर्श इस प्रकार का हो कि उसमें परिमाप-संबंधी गुण अथवा विशेषता का वितरण भी सम हो; अर्थात् न उस गुण के अधिक मात्रा-धारी हों और न एकदम कम अर्थात् सभी प्रकार के हों।

(2) वस्तुओं अथवा व्यक्तियों की गुण-मात्रा के वितरण का ही नहीं बल्कि उनकी संख्या का भी प्रभाव उनके परिमापांकों के वितरण पर पड़ता है। यदि न्यादर्श बहुत छोटा है अर्थात् उसमें बहुत कम वस्तुओं अथवा व्यक्तियों का परिमापन किया जा रहा है, तो भी वितरण सम नहीं हो पाता।

(3) बहुत से अन्य वाह्य प्रभाव भी जिनका परिमाप-संबंधी विशेषता से संबंध होता है, परिमापांकों के वितरण में विषमता उत्पन्न कर देते हैं जैसे बहुत अधिक आयु, सामाजिक स्तर, भाषा-ज्ञान आदि ऐसे तत्व हैं जिनका संबंध बुद्धि से है। यदि न्यादर्श बहुत अधिक उच्च अथवा निष्ठ चयन करते समय उनका ध्यान न रखा गया और किसी एक की उसमें प्रधानता आ गई तो परिमापांकों के वितरण में स्क्यूनेस अथवा कुकुद्वक्रता आ सकती है।

2. अशुद्ध तथा अनुपयुक्त परीक्षाएँ (Tests)

दूसरा कारण है उन परीक्षाओं का प्रयोग जो उस प्रतिचयन के लिये उपयुक्त नहीं है तथा जिनका निर्माण भी सही तरीके से नहीं हुआ है।

नोट

(1) अनुपयुक्त परीक्षाएँ या तो अधिक कठिन होंगी या सरल। फलस्वरूप परिमापांक या तो वक्र के बायीं ओर अधिक रहेंगे या दायीं ओर। इसलिये वितरण सम (normal) नहीं होगा। यदि एक 12 वर्ष की अवस्था वाला टेस्ट आठ वर्ष के बालकों अथवा 9 वर्ष के बालकों को दिया जाता है तो परिमापांक-वितरण सम नहीं होगा। पहली हालत में वह धनात्मक (positive) स्क्यू होगा और दूसरी में ऋणात्मक (negative) स्क्यू होगा।

2.28 सारांश

समाजशास्त्र में इस पद्धति की सहायता से सामाजिक तथ्यों को परिमाणात्मक या संख्यात्मक रूप में प्रस्तुत किया जाता है। ऐसे अध्ययनों से प्राप्त निष्कर्ष संख्या, औसत, प्रतिशत या परिमाणात्मक रूप में प्रस्तुत किए जाते हैं। सांख्यिकी प्रविधियों का मुख्य उद्देश्य विशाल तथ्यों को संक्षिप्त रूप प्रदान कर बोधगम्य बनाना तथा उसके आधार पर सामान्यीकरण प्रदान करना है।

समान्तर माध्य कुल पदों के माप के योग को पदों की संख्या से भाग देकर निकाला जाता है। मध्यिका या मध्यांक किसी पदश्रृंखला से वह बिन्दु होता है जो संपूर्ण श्रृंखला व श्रेणी को दो बराबर भागों में विभाजित कर देता है। किसी पदमाला व श्रेणी या श्रृंखला में जिस मूल्य की आवृत्ति सबसे अधिक होती है उसी मूल्य को बहुलक कहते हैं।

साँख्यिकी विज्ञान में सम-वितरण का बड़ा महत्त्व है। कई स्थानों पर सम-वितरण का प्रयोग बड़े काम का होता है। सम-वितरण के आधार पर ही हमारे मध्यमान की उपयोगिता, सार्थकता तथा औचित्य निर्धारित होता है।

सम-वितरण में निहित प्रतिशत संख्या और सीमा के द्वारा हम कुल आँकड़ों की स्थिति जान लेते हैं। यह सम-वितरण की एक बहुत बड़ी विशेषता है तथा इसकी बहुत बड़ी उपयोगिता है। सम-वितरण में मध्यमान, मध्यांक मान तथा बहुलांक मान वितरण के मध्य बिन्दु पर पड़ते हैं और उनका मान भी बराबर होता है। सम-वितरण की यह विशेषता सम्भावना-सिद्धांत पर आधारित है। सम्भावना सिद्धांत का साँख्यिकी-विज्ञान में ही नहीं बल्कि सभी विज्ञानों में बड़ा महत्त्व है।

2.29 अभ्यास-प्रश्न

1. सांख्यिकी पद्धति का अर्थ क्या है?
2. सांख्यिकी पद्धति का समाजशास्त्र में क्या उपयोग है?
3. सांख्यिकीय माध्य का अर्थ एवं उपयोगिता को बताएँ।
4. सांख्यिकीय माध्य के उद्देश्य तथा प्रकारों का वर्णन करें।
5. समान्तर माध्य निकालने की विधियों को बताएँ।
6. समान्तर माध्य के गुण तथा दोषों को बताएँ।
7. माध्यिका का अर्थ तथा मध्यांक निकालने की विधियों का वर्णन करें।
8. मध्यांक के गुण तथा दोषों का वर्णन करें।
9. बहुलक का अर्थ तथा विशेषताओं को बताएँ।
10. बहुलक निकालने की विधियों को बताएँ।

11. बहुलक के गुण तथा दोषों को बताएँ।
12. सम-वितरण से आप क्या समझते हैं? इसकी विशेषताओं का वर्णन करें।
13. सम-संभावना वक्र किसे कहते हैं? सोदाहरण समझाइए।
14. सम-संभावना वितरण-तालिका का प्रयोग किस-प्रकार किया जाता है?
15. आँकड़ों के वितरण की विषमता से आप क्या समझते हैं?

नोट

2.30 संदर्भ पुस्तकें

- सामाजिक शोध की पद्धतियाँ–संजीव महाजन, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस।
- शास्त्रीय सामाजिक चिंतन–अग्रवाल गोपाल क्रिशन, भट्ट ब्रदर्स।
- शोध प्रविधि–डॉ. गणेश पाण्डेय, अरूण पाण्डेय, राधा पब्लिकेशन।

अध्याय-3

सांख्यिकी पद्धति-2

नोट

(Structure)

3.1 उद्देश्य
3.2 प्रस्तावना
3.3 परिकल्पना का प्रतिपादन
3.4 परिकल्पना के मूलभूत आधार
3.5 परिकल्पनाओं की पुष्टि हेतु औपचारिक परिस्थितियाँ
3.6 परिकल्पनाओं का परीक्षण
3.7 सह-संबंध की परिभाषा
3.8 सह-संबंध के प्रकार
3.9 सह-संबंध गुणांक
3.10 स्पीयर मैन की क्रमान्तर विधि
3.11 गुणन आघूर्ण विधि
3.12 अप्राचलीय परीक्षाओं का अर्थ एवं स्वरूप
3.13 काई वर्ग परीक्षा
3.14 सांख्यिकीय विश्लेषण के प्रमुख आधार
3.15 प्राचलीय परीक्षा: टी-टेस्ट
3.16 टी-टेस्ट : विशिष्ट टिप्पणी
3.17 एक-पुच्छीय एवं द्वि-पुच्छीय परीक्षण
3.18 एकल-दिक् विचरण-विश्लेषण
3.19 सम-सम्भाविक समूह आकल्प
3.20 पुनर्मापाधारी-आकल्प (एकल दिक् अनोवा)
3.21 द्वि-दिक् विचरण-विश्लेषण (स्वतंत्र समूह)
3.22 द्वि-दिक् विचरण-विश्लेषण (सह-सम्बन्धी समूह)
3.23 सम-सम्भाविक संवर्ग-आकल्प
3.24 सह-विचरण विश्लेषण
3.25 लैटिन वर्ग आकल्प (L.S.D)
3.26 सारांश
3.27 अभ्यास-प्रश्न
3.28 संदर्भ पुस्तकें

3.1 उद्देश्य

नोट

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- परिकल्पना के प्रतिपादन तथा मूलभूत आधार को समझने में;
- परिकल्पनाओं की पुष्टि हेतु औपचारिक परिस्थितियों को समझने में;
- सह-संबंध की परिभाषा एवं प्रकार को समझने में;
- सह-संबंध गुणांक को समझने में;
- अप्राचलीय परीक्षाओं के अर्थ एवं स्वरूप को समझने में;
- सांख्यिकीय विश्लेषण के प्रमुख आधार को जानने में;
- प्राचलीय परीक्षा टी-टेस्ट को समझने में;
- द्वि-दिक् विचरण-विश्लेषण को समझने में;

3.2 प्रस्तावना

किसी समस्या के कथन से उसके समाधान हेतु एक से अधिक परिकल्पनाओं का प्रतिपादन किया जाता है जब कोई समस्या व्यक्ति के सामने उत्पन्न होती है और उसका समाधान खोजने का वह प्रयास करता है तो पहले अपने ज्ञान और अनुभव के आधार पर वह कल्पना करता है कि उसका संभवत: समाधान क्या होगा। इन्हीं संभावित समाधानों, संभावित उत्तरों की परिकल्पना प्रस्तुतकर वह बाद में उन उत्तरों का निरीक्षण करता है कि वह कहाँ तक सत्य है।

सामान्यत: हम कहते हैं कि विज्ञान विषय उन विद्यार्थियों को लेना चाहिये जिनकी रुचि इन्जीनियरिंग अथवा मेडिकल के क्षेत्र में जाने की हो, कॉमर्स उन विद्यार्थियों को लेना चाहिए जो व्यापार के क्षेत्र में रुचि रखते हों, हिन्दी, अंग्रेजी एवं संस्कृत उन विद्यार्थियों को लेनी चाहिये जो साहित्यिक रुचि के हों, संगीत एवं कला उन विद्यार्थियों के लिए उचित रहेगी जो कलात्मक रुचि (Aesthetic Sense) रखते हों अथवा हम यह कहें कि नाटे कद वाले व्यक्ति, लंबे कद वाले व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक प्रतिभाशाली होते हैं, ऊँचे ललाट वाले व्यक्ति समाज में सबसे अधिक

प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं, जिसके सिर पर कम बाल होते हैं, वह धनवान होता है आदि-आदि। हमारी इन धारणाओं के पीछे एक दीर्घकालीन अनुभव अथवा विशेष तथ्य जुड़े होते हैं। साथ ही, हमारे इस प्रकार के कथन अथवा भविष्यवाणी मात्र कुछ ही समय के अवलोकन पर आधारित नहीं होते वरन् इनकी पुष्टि में पर्याप्त तर्क जुटाये जा सकते हैं। उदाहरण के तौर पर यदि हम मनोविज्ञान के क्षेत्र में यह निश्चित करना चाहते हैं कि किसी व्यक्ति विशेष की एक क्षेत्र में उपलब्धि दूसरे क्षेत्र की उपलब्धि से किस सीमा तक जुड़ी हुई है अथवा प्रभावित है, तब मनोविज्ञान की भाषा में हम इसे चर राशियों (Variables) के मध्य संबंध से सम्बोधित करेंगे। विभिन्न चर राशियों के मध्य संबंध स्थापित करके हम आसानी से यह भविष्यवाणी कर सकते हैं कि कोई व्यक्ति किसी व्यवसाय विशेष में चयन के योग्य है अथवा नहीं। साथ ही, व्यक्ति के व्यवहार को भी आसानी से नियंत्रित कर सकते हैं।

यह पहले बताया जा चुका है कि प्राचलीय (parametric) परीक्षाओं जैसे-टी-टेस्ट तथा एफ-टेस्ट के प्रयोग कई शर्तों पर आधारित होते हैं। जब तक ये शर्तें पूरी नहीं होतीं इनका प्रयोग नहीं किया जा सकता। सम-वितरण तथा विचरण-समरूपता (homogeneity of variance) ये दो सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण शर्तें हैं। अनुसन्धान की अनेक परिस्थितियों में ये पूरी नहीं होतीं। अत: उनमें इन परीक्षाओं

का प्रयोग नहीं किया जा सकता। इन परिस्थितियों में अप्राचलीय परीक्षाओं (non-parametric tests) का प्रयोग किया जाता है। प्रत्येक प्राचलीय परीक्षा के कई अप्राचलीय विकल्प उपलब्ध हैं।

नोट

पूर्वागत अध्यायों में प्रयोगात्मक आकल्पों की व्यूह-रचना, उनके प्रकार एवं नियमों आदि की व्याख्या की गई थी। आगामी अध्यायों में शोध-सामग्री के सांख्यिकीय विश्लेषण की कुछ विशिष्ट विधियों का वर्णन किया गया है। अनुसंधानकर्ता विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न प्रकार की शोध-सामग्री एकत्र करते हैं। सभी प्रकार की शोध-सामग्री का विश्लेषण किसी एक सांख्यिकीय विधि द्वारा सम्भव नहीं होता। भिन्न-भिन्न प्रकार की सामग्री का विश्लेषण भिन्न-भिन्न विधियों से किया जाता है। ऐसी अनेक सांख्यिकीय विधियाँ हैं जिनका प्रयोग किया जा सकता है। अत: शोध कर्ता को एक ऐसी विधि का चयन करना होता है जो समस्या के स्वरूप, उद्देश्यों एवं एकत्रित सामग्री के संदर्भ में अधिकाधिक उपयुक्त हों। अत: शोधकर्ता के लिये यह जानना अत्यंत आवश्यक है कि कौन-कौन सी प्रमुख विधियाँ हैं, किस विधि का प्रयोग किन परिस्थितियों में किया जाता है तथा उसका प्रयोग किस प्रकार किया जाता है। आगामी अध्यायों में विभिन्न सांख्यिकीय विधियों का इन्हीं संदर्भों में वर्णन किया गया है।

विचरण-विश्लेषण में दो मध्यमानों के अन्तर की जगह समूहों के समस्त मापांकों की सम्पूर्ण विचरणता (total variance) एवं उसके विभिन्न भाग अथवा खण्ड विश्लेषण का आधार होते हैं। इसके प्रयोग के पीछे भी वही अभिधारणाएँ रहती हैं जिनका उल्लेख टी-परीक्षा के संदर्भ में किया गया है। टी-टेस्ट की भाँति यह परीक्षा भी जिसे एफ-टेस्ट भी कहा जाता है, एक प्राचलीय परीक्षा है। अत: इसका प्रयोग तभी किया जा सकता है जब प्राचलीय परीक्षाओं की अभिधारणाओं की पूर्ति होती हो। यह एक अत्यन्त अतिप्रयुक्त (versatile) परीक्षा है जिसके अनेक परिवर्तित रूप हैं तथा जिसका अनेक अनुसंधान परिस्थितियों में प्रयोग किया जा सकता है। इसका सबसे सरल रूप सरल विचरण-विश्लेषण (simple analysis of variance) तथा पूर्णतया समसंभाविक समूह आकल्प (completely randomized groups design) अथवा एकल दिशि विचरण विश्लेषण (one way analysis of variance) है। दूसरे जटिल रूप द्वि-दिश विचरण विश्लेषण (two-way Anova) एवं हत-विश्लेषण (factorial analysis) हैं। पहले सरल विचरण-विश्लेषण विधि का वर्णन किया जायेगा।

3.3 परिकल्पना का प्रतिपादन

किसी समस्या के कथन से उसके समाधान हेतु एक से अधिक परिकल्पनाओं का प्रतिपादन किया जाता है। यहाँ एक समस्या के लिए तीन परिकल्पनाओं का प्रतिपादन किया गया है जो समस्या का समाधान निर्धारित कर सकेंगे–

(अ) पुरस्कार से अध्ययन उपलब्धि में वृद्धि होती है।

(ब) पुरस्कार से अध्ययन उपलब्धि में ह्रास होता है।

(स) पुरस्कार का अध्ययन उपलब्धि पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

प्रथम दोनों परिकल्पना दिशायुक्त परिकल्पना (Directional Hypothesis) है और तीसरी परिकल्पना दिशाविहीन परिकल्पना (Non-Directional Hypothesis) है। अधिगम के सिद्धांत को कक्षा-अधिगम के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है। द्वितीय परिकल्पना के लिए कोई सैद्धांतिक आधार नहीं है इसीलिए इसे अच्छी परिकल्पना नहीं कह सकते तथा इसका प्रयोग करना उचित नहीं है।

तृतीय प्रकार की परिकल्पना के लिए किसी सैद्धांतिक आधार की आवश्यकता नहीं है, इसलिए इसे भी प्रयुक्त कर सकते हैं, परन्तु प्रथम तथा तृतीय परिकल्पना में से केवल एक परिकल्पना को

ही प्रयुक्त किया जा सकता है, दोनों ही प्रयुक्त नहीं की जा सकती हैं क्योंकि विरोधाभास उत्पन्न करती हैं।

आगमन तथा निगमन दोनों ही चिन्तन प्रक्रियाओं में प्रयुक्त किया जाता है, अनेकों मनोवैज्ञानिक तथा शैक्षिक सिद्धांत दोनों प्रकार की प्रक्रियाओं को प्रयुक्त करते हैं जिनमें व्यवहार प्रारूपों को कार्य रूप में प्रयुक्त किया जाता है।

नोट

परिकल्पना की पुष्टि के विशिष्ट परिस्थिति के निष्कर्षों से सामान्यीकरण किया जाता है। परिकल्पनाओं के आधार पर शोध निष्कर्षों के लिए वैज्ञानिक विधि का प्रयोग किया जाता है।

परिकल्पना सम्भावित अवधारणा होती है जो ज्ञान तथा सिद्धांत पर आधारित होती है। शोधकर्ता के निर्देशन का कार्य करती है। शोध प्रक्रिया का सबसे महत्त्वपूर्ण तथा कठिन कार्य एक अच्छी परिकल्पना प्रतिपादन करना है। एक अच्छी परिकल्पना की तीन विशेषताएँ होती हैं–

(अ) धैर्य के साथ पर्याप्त प्रदत्तों को एकत्रित किया जाता है।

(ब) इससे निष्कर्ष तथा सामान्यीकरण किये जा सकते हैं।

(स) परिणामों को प्राप्त करने हेतु समुचित सांख्यिकी प्रविधियों द्वारा विश्लेषण किया जा सकता है।

शोध प्रक्रिया में परिकल्पना की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। परिकल्पना शोध प्रक्रिया की केन्द्र बिन्दु होती है जो न्यादर्श के चयन, मापन प्रविधियों, शोध प्रारूप, प्रदत्तों के संकलन एवं विश्लेषण की सांख्यिकी प्रविधि के चयन में सहायता करती है।

एक अध्ययन के अन्तर्गत प्रमुख परिकल्पना के परीक्षण या पुष्टि का प्रयास किया जाता है परन्तु उसके साथ अन्य गौण परिकल्पनाओं की भी पुष्टि हो जाती है। जब अनेक परिकल्पनाओं को प्रयुक्त करते हैं तब प्रत्येक का प्रतिपादन पृथक् रूप में किया जाता है और उसका सैद्धांतिक आधार भी प्रस्तुत किया जाता है। प्रत्येक की पुष्टि हेतु प्रदत्तों का विश्लेषण किया जाता है जिसे स्वीकार या निरस्त किया जा सके। एच.एच. मैकासन का कथन है, शोध का लक्ष्य परिकल्पना का प्रतिपादन करना और उसकी पुष्टि करना नहीं होता है अपितु नवीन तथा नये तथ्यों की खोज करना है। सभी प्रकार के शोध कार्यों में परिकल्पनाओं का प्रतिपादन तथा पुष्टि नहीं की जाती है। बिना परिकल्पनाओं के भी शोध कार्य किए जाते हैं। परिकल्पना का प्रयोग साधारणत: वैज्ञानिक शोध कार्यों में ही किया जाता है।

3.4 परिकल्पना के मूलभूत आधार

शोधकर्ता दो स्तर पर वास्तविकताओं से सम्बन्धित होता है–

(अ) व्यावहारिक स्तर (Operational) तथा

(ब) प्रत्यात्मक स्तर (Conceptual)।

(अ) व्यावहारिक स्तर पर शोधकर्ता को घटनाओं एवं तथ्यों के निरीक्षण योग्य शब्दों में परिभाषित करना चाहिए जिससे शोध में वास्तविकता अपनायी जा सके।

(ब) प्रत्यात्मक स्तर पर शोधकर्ता को घटनाओं एवं तथ्यों को कारण-प्रभाव के रूप में परिभाषित करना चाहिये जिससे निहित घटनाओं की जानकारी हो सके। इस स्तर पर शोधकर्ता घटनाओं की अमूर्त रूप में परिभाषा करता है जिसमें विशिष्ट घटनाओं से सामान्य की

नोट

ओर अग्रसर होने का प्रयास करता है। चरों के सह-संबंध और उनकी क्रियाशीलता का बोध होता है। साधारणत: परिकल्पना के प्रतिपादन में व्यावहारिक स्तर से प्रत्यात्मक स्तर की ओर बढ़ना होता है। प्रत्यात्मक स्तर से शोधकर्ता को परिणामों से सामान्यीकरण करने में सहायता मिलती है तथा व्यापक उपयोगिता का ज्ञान होता है।

शोध के लिए यह आवश्यक होता है कि घटना तथा तथ्यों की दोनों स्तर पर परिभाषा की जाये क्योंकि व्याव हारिक स्तर पर परिभाषा करने पर परिकल्पना की पुष्टि हेतु प्रदत्तों का संकलन करने और विश्लेषण करने से सहायता मिलती है और प्रत्यात्मक स्तर पर परिभाषा करने से शोध कार्यों में प्रत्यात्मक स्तर से व्यावहारिक स्तर की ओर अग्रसर होना पड़ता है।

उपयोगी परिकल्पनाओं के प्रतिपादन में कठिनाईयाँ

साधारणत: उपयोगी परिकल्पनाओं के प्रतिपादन में अधोलिखित कठिनाइयाँ होती हैं–

1. स्पष्ट सैद्धांतिक संदर्भ का अभाव होना।
2. सैद्धान्तिक संदर्भ के प्रयोग करने की क्षमताओं एवं योग्यता का अभाव होना।
3. उपलब्ध शोध उपकरण तथा प्रविधियों के संबंध में समुचित जानकारी न होना।
4. परिकल्पनाओं को समुचित शब्दों में प्रतिपादन करने की योग्यता का अभाव होना।

3.5 परिकल्पनाओं की पुष्टि हेतु औपचारिक परिस्थितियाँ

क्रियात्मक रूप में परिकल्पनाएँ दो प्रकार की होती हैं–

1. शोध परिकल्पना तथा
2. सांख्यिकीय परिकल्पना अथवा शून्य परिकल्पना।

शोधकर्ता अपनी शोध परिकल्पनाओं को दो रूप में प्रतिपादित करता है–दिशायुक्त परिकल्पना तथा दिशाविहीन परिकल्पना। इनकी पुष्टि हेतु प्राप्त प्रदत्तों का विश्लेषण सांख्यिकीय प्रविधियों की सहायता से की जाती है। इसमें शून्य परिकल्पना का प्रयोग किया जाता है। शोध परिकल्पनाओं की पुष्टि हेतु कुछ औपचारिक परिस्थितियों की आवश्यकता होती है, वह इस प्रकार हैं–

1. परिकल्पना के कथन में निगमन प्रक्रिया निहित होनी चाहिए जिससे सामान्यीकरण किया जा सके।
2. परिकल्पना का स्वरूप इस प्रकार का होना चाहिए जिससे इसी को स्वीकृत या निरस्त की जा सके।
3. परिकल्पना का कथन विशिष्ट तथा पुष्टि के रूप में होना चाहिए जिससे परिकल्पना के व्यावहारिक पक्ष का परीक्षण किया जा सके।

3.6 परिकल्पनाओं का परीक्षण

परिकल्पना का निर्माण भर कर लेने से समस्या का समाधान नहीं हो जाता। परिकल्पना तो केवल अनुमानित समाधान होता है। वह समस्या का समाधान है, यह तो तब समझा जाता है, जब वह स्वीकार हो जाती है। कोई परिकल्पना स्वीकार अथवा अस्वीकार बाह्य साक्ष्यों के आधार पर होती

नोट

है। अतः परिकल्पना के निर्माण कर लेने के पश्चात् शोध कर्त्ता उसका परीक्षण करता है। परीक्षण के आधार पर ही यह निष्कर्ष उपलब्ध होता है कि वह परिकल्पना समस्या का समाधान प्रस्तुत करती है अथवा नहीं। परिकल्पना के परीक्षण के तीन प्रमुख आधार होते हैं–(i) परिकल्पना के परिणामों का निर्धारण, (ii) यह निश्चित करने के लिए कि ये परिणाम वास्तव में उपलब्ध होते हैं अथवा नहीं उनके मापन, निरीक्षण, सत्यापन हेतु परीक्षाओं (tests) एवं परीक्षण विधि आदि का निर्माण अथवा चयन करना, (iii) उन परीक्षाओं के आधार पर मापांक (शोध-सामग्री) प्राप्त करना तथा उनका विश्लेषण करके यह निष्कर्ष निकालना कि जिस परिकल्पना को लेकर चले थे, वह स्वीकृत हुई अथवा अस्वीकृत।

1. **परिकल्पना के परिणामों का निर्धारण**–इसके अन्तर्गत यह निर्धारित किया जाता है कि यदि परिकल्पना सत्य है तो उसके परिणाम किस रूप में तथा कहाँ उपलब्ध होंगे। कुछ परिकल्पनाएँ तो ऐसी होती हैं, जिनके परिणाम बाह्य घटनाओं, परिस्थितियों एवं तथ्यों में सीधे-सीधे यथास्थिति, यथास्थान, यथारूप मिल जाते हैं। जैसे, यदि परिकल्पना यह है कि "सड़क-दुर्घटनाएँ रात में अधिक होती हैं", तो परिकल्पना के सत्य होने पर परिण ाम यह होगा कि रात की दुर्घटनाओं की संख्या दिन में होने वाली दुर्घटनाओं की संख्या से अधिक होगी और इनकी संख्या ज्ञात की जा सकती है, परन्तु कुछ परिकल्पनाएँ ऐसी होती हैं कि उनके परिणाम प्रत्यक्षतः उपलब्ध नहीं होते। अतः उनके अप्रत्यक्ष रूपों एवं अभिव्यक्तियों को खोजना होता है।

   इस परिकल्पना के सत्य होने पर इसके परिणामों को प्रत्यक्ष रूप में नहीं देखा जा सकता। अप्रत्यक्ष रूप में ही इन परिणामों की अभिव्यक्ति मिल सकती है। ये परिणाम हो सकते हैं–मन्दबुद्धि बालकों का परस्पर झगड़ा होना, उनके मित्रों की संख्या कम होना, उनका अधिक संवेदनशील होना, उनका सबसे अलग रहना, साथियों का उन्हें पसंद न करना आदि। इस प्रकार के अप्रत्यक्ष परिणामों को खोजना सरल नहीं होता। इन परिणामों के निर्धारण में यह सुनिश्चित करना अत्यन्त आवश्यक होता है कि वे अनिवार्य रूप से परिकल्पना से जुड़े होने चाहिए। यदि वे परिकल्पना से सम्बद्ध नहीं हैं, तो उनका परीक्षण करना भी व्यर्थ होगा। साथ ही उनकी अभिव्यक्ति स्पष्ट एवं मापनयोग्य व्यवहारों अथवा परिस्थितियों अथवा घटनाओं के रूप में होनी चाहिए।

2. परीक्षण **विधि का चयन एवं परीक्षाओं का निर्माण**–परिकल्पनाओं का निर्माण समस्या के समाधान का संभावित रूप होता है। वह संभावित समाधान सत्य भी हो सकता है तथा असत्य भी। अतः अनुसंधान का अगला कदम इन परिकल्पनाओं के परीक्षण हेतु उन विधियों एवं माध्यमों की खोज करना होता है। ऐसे साक्ष्यों को प्रस्तुत करना होता है, जिनके आधार पर परिकल्पना को सत्य अथवा असत्य सिद्ध किया जा सकता है। ये माध्यम मनोवैज्ञानिक परीक्षाएँ अथवा निरीक्षण द्वारा उपलब्ध मापांक (data) होते हैं। परिकल्पना के निगमित परिणामों (deduced consequences) में निहित चरों के ये मापांक ही शोध-सामग्री अर्थात् वे सूचनाएँ होती हैं, जिनके आधार पर विश्लेषण द्वारा परिकल्पना की सत्यता एवं असत्यता का निश्चय किया जाता है। अतः इन परीक्षाओं का निर्माण एवं विधियों का चयन वैध एवं त्रुटिरहित होना चाहिए, अन्यथा वैध सूचनाओं के अभाव में अर्थात् सही साक्ष्य उपलब्ध न होने पर परिकल्पना के सत्य अथवा असत्य होने के विषय में सही निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता।

नोट

3. परिकल्पना **परीक्षण: अन्तिम कड़ी**–चयनित विधियों एवं परीक्षाओं के माध्यम से सूचनाएँ अथवा शोध-सामग्री (कंजं) का संग्रह करना तथा उसके विश्लेषण के आधार पर परिकल्पना को स्वीकार अथवा अस्वीकार करना प्रमुख उद्देश्य होता है। इस संबंध में सबसे पहले ध्यान में रखने की बात यह है कि परिकल्पना केवल स्वीकृत अथवा अस्वीकृत ही की जाती है। उसे सिद्ध (proved) अथवा सत्यापित (verified) नहीं किया जाता। "सिद्ध होना" अथवा "सत्यापित होना" ये ऐसे शब्द हैं, जिनसे यह बोध होता है कि यही "अन्तिम सत्य" है, "नि:संदेह सत्य है", जबकि वस्तुस्थिति इससे भिन्न होती है। वास्तविकता यह है कि परिकल्पना का परीक्षण केवल सम्भावित रूप में ही उसे सत्यापित करता है। अत: "स्वीकार" अथवा "अस्वीकार" किया जाना इन शब्दों का प्रयोग ही उचित समझा जाता है अथवा निष्कर्षों को स्वीकार किए जाने की संभावना के रूप में ही व्यक्त किया जाता है। इस बात की व्याख्या अन्यत्र विस्तार से की गई है।

3.7 सह-संबंध की परिभाषा

कुछ मुख्य परिभाषाएँ इस प्रकार हैं–

जब दो चर राशियाँ एक दूसरे से इस प्रकार सम्बन्धित हों कि एक राशि के बढ़ाने से दूसरी राशि भी बढ़े अथवा घटे तथा इसके विपरीत, एक राशि के घटने से दूसरी राशि भी घटे अथवा बढ़े, तब उस स्थिति में हम कह सकते हैं कि इन दो राशियों के मध्य सह-संबंध है।

इस प्रकार, सह-संबंध दो चर राशियों अथवा समूहों के मध्य संबंध दर्शाता है।

(Whenever two variables are related in such a fashion that the increase in one vari- able causes increase or decrease in another variable or decrease in one variable causes decrease or increase in another variable, i.e. vice-versa, then the two variables are said to be correlated.

Thus, correlation is the relationship between two variables or two different sets of data.)

सह-संबंध के अन्तर्गत हम दो या दो से अधिक समूहों के मध्य इस आशय से संबंध स्थापित करते हैं कि उन समूहों के मध्य वास्तव में कोई संबंध है अथवा नहीं और अगर संबंध है, तो वह कितना अर्थात्, उसकी मात्रा क्या है?

"Correlation deals with the relationship between two or more different groups of data in order to ascertain whether any relation exists between them or not and to obtain a numerical expression of the degree of such a relationship." **—Bayliss**

3.8 सह-संबंध के प्रकार

सह-संबंध मुख्य रूप से तीन प्रकार का होता है।

1. धनात्मक सह-संबंध (Positive Correlation)
2. ऋणात्मक सह-संबंध (Negative Correlation)
3. शून्य सह-संबंध (Zero Correlation)

धनात्मक सह-संबंध

नोट

धनात्मक सह-संबंध उस स्थिति में होता है जब एक चर राशि के बढ़ने से दूसरी चर राशि भी बढ़े अर्थात्, जिस छात्र के गणित में उच्चतम अंक आये हैं उसी छात्र के अंग्रेजी में भी उच्चतम अंक आयें अथवा इसके विपरीत, एक चर राशि के घटने से दूसरी चर राशि भी घटे अर्थात् जिस छात्र के कला में निम्नतम अंक आये हैं उसी छात्र के हिन्दी में भी निम्नतम अंक आयें, उदाहरण ाार्थ–बुद्धि-लब्धि व शैक्षिक उपलब्धि का संबंध।

उदाहरण (Example)

High I.Q. ⟶ High percentage of marks

(उच्च बुद्धि-लब्धि) ⟵ अधिक अंक प्रतिशतता

Low I.Q. ⟶ Low percentage of marks

(निम्न बुद्धि-लब्धि) ⟵ (कम अंक प्रतिशतता)

उपरोक्त उदाहरण के अनुसार एक छात्र जिसकी बुद्धि-लब्धि का स्तर श्रेष्ठ है, उसके अंकों की प्रतिशतता भी उच्च ही आनी चाहिए। दूसरे शब्दों में, एक छात्र जिसके परीक्षा में उच्च अंक आते हैं, उसकी बुद्धि-लब्धि भी श्रेष्ठ होनी चाहिए। ठीक इसी प्रकार, जिस छात्र की बुद्धि-लब्धि का स्तर निम्न है, उसके अंकों की प्रतिशतता भी निम्न आनी चाहिए। दूसरे शब्दों में, एक छात्र जिसके परीक्षा में अंक कम आते हैं, उसकी बुद्धि-लब्धि भी कम होनी चाहिए। यह स्थिति ध नात्मक सह-संबंध की होती हैं।

असंबद्ध ग्राफ सह-संबंध + 1.00 का दर्शा रहा है।

एक आनुपातिक रेखा इसे ग्राफ से जोड़ती है।

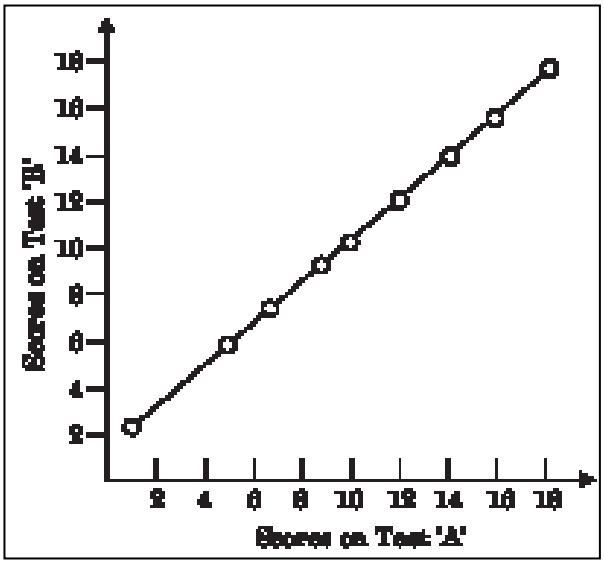

चित्र 3.1

ऋणात्मक सह-संबंध

ऋणात्मक सह-संबंध उस स्थिति में होता है जब एक चर राशि के बढ़ने से दूसरी चर राशि घटे अर्थात्, जो छात्र एक परीक्षा में प्रथम आता है, उसी छात्र की दूसरी परीक्षा में अन्तिम अनुस्थिति

नोट

(Position or Rank) आती है और उसी प्रकार सभी छात्रों की अनुस्थितियाँ एकदम उल्टी हो जायें अथवा इसके विपरीत, हम कहें कि जब एक चर राशि के घटने से दूसरी चर राशि बढ़े, अर्थात्, जो छात्र एक परीक्षा में अन्तिम अनुस्थिति प्राप्त करता है वही छात्र दूसरी परीक्षा में प्रथम आता है। इस प्रकार की स्थिति में नकारात्मक अथवा ऋणात्मक पूर्ण सह-संबंध (Negative perfect correlation) होता है। इस प्रकार की पूर्ण परिस्थितियाँ प्राय: कम ही होती हैं।

उदाहरण (Example)

More extrovert students ⟶ Low pass percentage

(अधिक बहिर्मुखी छात्र) ⟵ (कम उत्तीर्ण प्रतिशतता)

Less extrovert students ⟶ High pass percentage

(कम बहिर्मुखी छात्र) ⟵ (अधिक उत्तीर्ण प्रतिशतता)

उपरोक्त उदाहरण के अनुसार, जो छात्र अधिक बहिर्मुखी होते हैं वे कम उत्तीर्ण होते हैं अथवा हम कह सकते हैं कि छात्र के असफल होने का कारण उनका बहिर्मुखी व्यक्तित्व है। ठीक इस प्रकार, जो छात्र कम बहिर्मुखी होते हैं अर्थात्, अन्तर्मुखी (Introvert) होते हैं, वे परीक्षा में अधिक सफलता प्राप्त करते हैं अथवा हम कहें, उनकी इस सफलता का रहस्य उनका अन्तर्मुखी व्यक्तित्व है।

असंबद्ध ग्राफ सहसंबंध –1.00 का दर्शा रहा है।

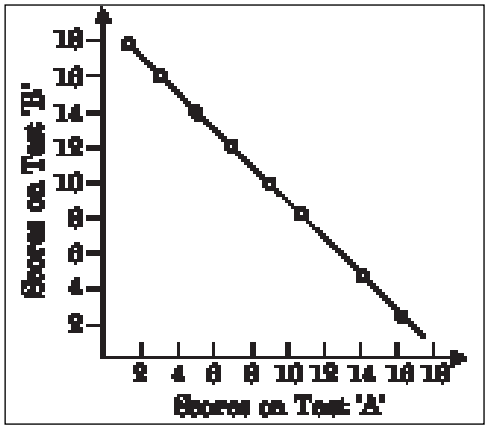

चित्र 3.2

शून्य सह-संबंध

शून्य सह-संबंध उस स्थिति में होता है जब एक चर राशि के बढ़ने अथवा घटने का दूसरी राशि पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता अर्थात्, किसी छात्र के एक विषय में प्राप्त फलांकों के आधार पर हम उसी छात्र के किसी अन्य विषय के फलांकों के बारे में कुछ अनुमान नहीं लगा सकते।

उदाहरण **(Example)**

Children from good social status ⟶ Pass percentage 80

(उच्च सामाजिक-स्तर वाले बालक) ⟵ (80% उत्तीर्ण)

Children from poor social status ⟶ Pass percentage 80

(निम्न सामाजिक-स्तर वाले बालक) ⟵ (80% उत्तीर्ण)

उपरोक्त उदाहरण के अनुसार, बालकों के सामाजिक स्तर का उनकी शैक्षिक उपलब्धि अर्थात्, उत्तीर्ण, अनुत्तीर्ण होने से कोई संबंध नहीं है। बालक चाहे प्रतिष्ठित घरानों से आयें अथवा गरीब परिवारों से, उनकी उत्तीर्ण प्रतिशतता समान ही होगी। इसी प्रकार, एक अच्छा संगीतकार एक अच्छा कलाकार हो भी सकता है और नहीं भी।

नोट

असंबद्ध ग्राफ सहसंबंध 0 के नजदीक दर्शा रहा है।

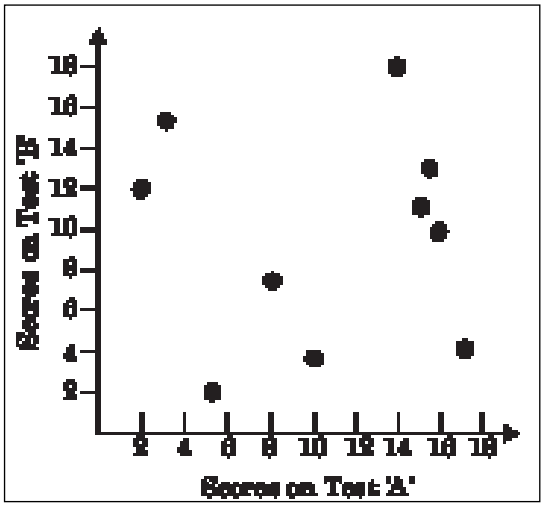

चित्र 3.3

3.9 सह-संबंध गुणांक

शिक्षा के क्षेत्र में बहुधा फलांकों की दो श्रेणियों के संबंध की मात्रा निर्धारित करने की आवश्यकता पड़ती है। इस संबंध को सह-संबंध गुणांक (Coefficient of Correlation) से व्यक्त किया जाता है।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि धनात्मक सह-संबंध में एक चर राशि में निपुणता अधिक होने से दूसरी राशि में भी अधिक होती है तथा एक में कम होने से दूसरी में भी कम होती है। ऋणात्मक सह-संबंध में एक विषय में कम निपुणता का संबंध दूसरे विषय में अधिक निपुणता के साथ है। सम्बन्ध उतना ही

घनिष्ठ माना जायेगा जितनी अधिक गुणांक की मात्रा होगी। शून्य सह-संबंध में एक विषय की उपलब्धि के आधार पर दूसरे विषय की उपलब्धि के बारे में कोई अनुमान नहीं लगाया जा सकता। इन तीनों संबंधों को आंकिक रूप में क्रमशः + 1.00, –1.00 तथा .00 से प्रदर्शित करते हैं। इस प्रकार की पूर्ण परिस्थितियाँ प्रायः कम ही आती हैं, इसलिए सह-संबंध की यह मात्रा +1.00 तथा –1.00 के मध्य मानी जाती है।

वास्तव में सह-संबंध हमें यह दर्शाता है कि दो राशियों के संबंध की प्रकृति (Nature) क्या है? इस दृष्टि से सह-संबंध गुणांक वह अंक होता है जो हमें यह संकेत देता है कि दो चर राशियाँ किस सीमा तक एक दूसरे से संबंधित हैं अर्थात्, एक चर राशि में होने वाले परिवर्तन के कारण दूसरी चर राशि में किस सीमा तक परिवर्तन संभव है। इस सह-संबंध गुणांक की सीमाएँ. 1.00 तथा – 1.00 (± 1) के मध्य होती हैं तथा इसे (ρ) अथवा तीव से प्रदर्शित किया जाता है।

"The coefficient of correlation (*r*) is a convenient quantitative index of relationship, i.e. what is the degree of relationship? or, to what extent two variables are related with

each other? The coefficient of correlation is almost as important to the psychological tester as is the balance to the chemist." *W.L. Sumner, 'Stat, in Schools'*

—Lindquist and Blummers.

नोट

सह-संबंध गुणांक अथवा परिणाम व्याख्या (Interpretation of Correlation Coefficient or Results)

सह-संबंध गुणांक अथवा प्राप्त निष्कर्षों की व्याख्या करने के लिए हमें चिह्न (Sign) तथा परिणाम की मात्रा (magnitude) इन दो बातों पर ध्यान देना होता है। यदि सह-संबंध गुणांक धनात्मक आता है तो इसका अर्थ यह होगा कि दिये गये वितरण में एक चर राशि के बढ़ने से दूसरी चर राशि भी बढ़ेगी अथवा एक चर राशि के घटने पर दूसरी चर राशि भी घटेगी। उदाहरणार्थ, यदि बालकों की बुद्धि-लब्धि और उनकी विषयगत उपलब्धि में सह-संबंध ज्ञात किया जाये तो इस स्थिति में सह-संबंध गुणांक धनात्मक (Positive) आयेगा तथा इस गणितीय तथ्य (Mathematical fact) की व्याख्या करते हुए कहा जायेगा कि जैसे-जैसे बालकों की बुद्धि-लब्धि (I.Q.) बढ़ेगी उनकी विषयगत उपलब्धि में भी बढ़ोतरी होगी।

इसी प्रकार, इसके विपरीत यदि सह-संबंध गुणांक ऋणात्मक आता है तो इसका अर्थ यह होगा कि दिये गये वितरण में एक चर राशि घटेगी अथवा एक चर राशि के घटने से दूसरी बढ़ेगी। उदाहरणार्थ, यदि मनुष्य की आयु एवं उसकी स्मृति में सह-संबंध ज्ञात किया जाये तो इस स्थिति में सह-संबंध गुणांक ऋणात्मक आयेगा तथा इस गणितीय तथ्य की व्याख्या करते हुए कहा जायेगा कि जैसे-जैसे व्यक्ति की आयु बढ़ती है उसकी स्मृति (Memory or Retention power) क्षीण होती जाती है।

सह-संबंध गुणांक अथवा प्राप्त निष्कर्षों की व्याख्या करने के लिए **गिलफर्ड तालिका** (Guilford's Table) का प्रयोग किया जाता है, जो निम्न है–

सह-संबंध गुणांक की मात्रा	**व्याख्या**
.00 से ± .20 तक	नगण्य (Negligible)
± .21 से ± .40	तक निम्न (Low)
± .41 से ± .70	तक सामान्य (Moderate)
± .71 से ± .90	तक उच्च (High)
± .91 से ± .99	तक अति उच्च (Very High)
± 1.00 तक	पूर्ण (Perfect)

सह-संबंध गुणांक ज्ञात करने की विधियाँ

सह-संबंध गुणांक ज्ञात करने की प्रमुख विधियाँ निम्न तीन हैं–

1. क्रमान्तर विधि (Spearman's Rank Difference Method)
2. गुणन-आघूर्ण विधि (Pearson's Product-Moment Method)
3. प्रकीर्णन-आरेख विधि (Scatter-Diagram Method)

3.10 स्पीयर मैन की क्रमान्तर विधि

क्रमान्तर विधि को हम श्रेणी क्रम विधि के नाम से भी पुकारते हैं। इस विधि का प्रतिपादन चार्ल्स स्पीयर-मैन (Charles Spearman) ने किया था तथा उन्हीं के नाम पर इस विधि को स्पीयरमैन

सह-संबंध विधि कहते हैं तथा इस विधि द्वारा प्राप्त सह-संबंध गुणांक को हम स्पीयरमैन सह-संबंध गुणांक अथवा स्पीयरमैन श्रेणीक्रम सह-संबंध गुणांक भी कहते हैं। इस विधि से प्राप्त सह-संबंध गुणांक को लैटिन भाषा के अक्षर ρ (rho) से प्रदर्शित करते हैं।

नोट

Where there are relatively few measures in the series, the Rank Difference method of correlation is employed generally. As the name indicates the size of the correlation coefficient (ρ) depends upon the sum of the differences in ranks between each pair of meausres (a pair means one individual's measures in the two variables).

इस विधि में दोनों चरों के प्राप्तांकों को उनके आकार के आधार पर अलग-अलग क्रमबद्ध किया जाता है। दोनों चरों के प्राप्ताकों को अलग-अलग क्रम देने के पश्चात् विभिन्न छात्रों द्वारा प्राप्त दोनों क्रमों (Rank assigned on two variables) का अन्तर (D) ज्ञात करके उसका वर्ग कर दिया जाता है, जो D^2 कहलाता है। फिर, ΣD^2 का मान ज्ञात कर लेने के पश्चात् निम्न सूत्र की सहायता से सह-संबंध गुणांक का मान ज्ञात कर लेते हैं।

$$\rho \text{ or } rho = 1 - \frac{6\Sigma D^2}{N(N^2 - 1)}$$

जहाँ, ρ = सह-संबंध गुणांक

ΣD^2 = क्रमों के अंतर के वर्गों का योग

N = कुछ छात्र संख्या

उदाहरण 1: दो विषयों गणित और अर्थशास्त्र में बारह छात्रों को मिले प्राप्तांक नीचे दिये गए हैं। क्रमांतर विधि के द्वारा इनके सह-संबंध गुणांक निकालें।

अर्थशास्त्र :	60	34	40	50	45	41	22	43	42	66	64	46
गणित :	75	32	34	40	45	33	12	30	36	72	41	57

समाधान: सह-संबंध गुणांक ज्ञात करें।

तालिका 3.1

छात्र	अर्थशास्त्र	गणित	R_1	R_2	D	D^2
A	60	75	3	1	2	4
B	34	32	11	10	1	1
C	40	34	10	8	2	4
D	50	40	4	6	2	4
E	45	45	6	4	2	4
F	41	63	9	9	0	0
G	22	12	12	12	0	0
H	43	30	7	11	4	16
I	42	36	8	7	1	1
J	66	72	1	2	1	1
K	64	41	2	5	3	9
L	46	57	5	3	2	4
N = 12						$\Sigma d^2 = 48$

नोट

$$\rho = 1 - \frac{6\Sigma D^2}{N(N^2-1)} = 1 - \frac{6 \times 48}{12(12^2-1)}$$

$$= 1 - \frac{288}{12(144-1)} = 1 - \frac{288}{12 \times 143} = 1 - \frac{288}{1716}$$

$$= \frac{1716 - 288}{1716} = \frac{1428}{1716} = +.83 \text{ Ans.}$$

व्याख्या: अर्थशास्त्र एवं गणित के दो विषयों में बारह छात्रों को मिले प्राप्तांक का परिणाम यह दर्शाता है कि इनके बीच सह-संबंध उच्च धनात्मक है।

उदाहरण: निम्नांकित आंकड़ों के द्वारा पिता एवं पुत्र के मध्य लम्बाई का सह-संबंध गुणांक प्राप्त करें।

पिता की लंबाई इंचों में	20	25	32	28	30	27	35	60	80
पुत्र की लंबाई इंचों में	21	27	30	24	28	22	37	64	82

समाधान: पिता और पुत्र के बीच लम्बाई के सह-संबंध गुणांक की गणना करें।

तालिका 3.2

पिताकी लम्बाई	पुत्र की लम्बाई	R_1	R_2	D	D_2
20	21	9	9	0	0
25	27	8	6	2	4
32	30	4	4	0	0
28	24	6	7	1	1
30	28	5	5	0	0
27	22	7	8	1	1
35	37	3	3	0	0
60	64	2	2	0	0
80	82	1	1	0	0
N = 9					$\Sigma D^2 = 6$

$$\rho = 1 - \frac{6\Sigma D^2}{N(N^2-1)} = 1 - \frac{6 \times 6}{9(9^2-1)}$$

$$= 1 - \frac{36}{9(81-1)} = 1 - \frac{36}{9(81-1)}$$

$$= 1 - \frac{36}{9 \times 80} = 1 - \frac{36}{720}$$

$$= 1 - \frac{1}{20} = 20 - \frac{1}{20} = \frac{19}{20} = +.95 \text{ Ans.}$$

व्याख्या: यह परिणाम दर्शाता है कि पिता और पुत्र की लंबाई के मध्य सह-संबंध अति उच्च-धनात्मक है।

उदाहरण 3: निम्नांकित आँकड़ों (वितरणों) के द्वारा श्रेणी क्रम सह-संबंध गुणांक की गणना करें।

छात्र	A	B	C	D	E	F	G	H	I	J	K	L
विज्ञान	50	54	56	59	60	62	61	65	67	71	71	74
गणित	22	25	34	28	26	30	32	30	28	34	36	40

नोट

समाधान:

तालिका 3.3

छात्र	विज्ञान के प्राप्तांक	गणित के प्राप्तांक	R_1	R_2	D	D_2
A	50	22	12	12	0	0
B	54	25	11	11	0	0
C	56	34	10	3.5	6.5	42.25
D	59	28	9	8.5	.5	.25
E	60	26	8	10	2	4
F	62	30	6	6.5	.5	.25
G	61	32	7	5	2	4
H	65	30	5	6.5	1.5	2.25
I	67	28	4	8.5	4.5	20.25
J	71	34	2.5	3.5	1	1
K	71	36	2.5	2	.5	.25
L	74	40	1	1	0	0
N = 12						$\Sigma D^2 = 74.50$

$$\rho = 1 - \frac{6\Sigma D^2}{N(N^2-1)} = 1 - \frac{6 \times 74.50}{12(12^2-1)}$$

$$= 1 - \frac{447}{12(144-1)} = 1 - \frac{447}{12 \times 143}$$

$$= 1 - \frac{447}{1716} = \frac{1716 - 447}{1716}$$

$$= \frac{1269}{716}$$

$$= +.739 \text{ Ans.}$$

व्याख्या: गणित और विज्ञान के दो विषयों में बारह छात्रों को मिले प्राप्तांक का परिणाम यह दर्शाता है कि इनके मध्य सह-संबंध उच्च धनात्मक हैं।

व्याख्या (Interpretation): विज्ञान व गणित प्राप्तांकों के मध्य श्रेणीक्रम सह-संबंध का मान +.739 है। स्पष्ट है कि सह-संबंध गुणांक धनात्मक तथा उच्च श्रेणी का है। अत: इस सह-संबंध गुणांक के आधार पर कहा जा सकता है कि जिस छात्र ने विज्ञान में अधिक अंक प्राप्त किये हैं उसकी प्रवृत्ति गणित में भी अधिक अंक प्राप्त करने की है तथा जिस छात्र ने विज्ञान में कम अंक

प्राप्त किये हैं उसकी प्रवृत्ति गणित में भी कम अंक प्राप्त करने का है। साथ ही, ऐसा अधिकांश छात्रों ने किया है।

नोट

उदाहरण 4: क्रमांतर विधि के द्वारा निम्नांकित आँकड़ों के दो समुच्चयों के मध्य का सह-संबंध गुणांक ज्ञात करें।

Set A	80	80	80	75	75	62	74	66	71	59	67	67
Set B	75	75	69	73	62	58	70	61	61	61	63	72

समाधान:

तालिका 3.4

Set A	Set B	R_1	R_2	D	D^2
80	75	2	1.5	.5	.25
80	75	2	1.5	.5	.25
80	69	2	6	4	16
75	73	4.5	3	1.5	2.25
75	62	4.5	8	3.5	12.25
62	58	11	12	1	1
74	70	6	5	1	1
66	61	10	10	0	0
71	61	7	10	3	9
59	61	12	10	2	4
67	63	8.5	7	1.5	2.25
67	72	8.5	4	4.5	20.25
N = 12					$\Sigma D^2 = 68.50$

$$\rho = 1 - \frac{6\Sigma D^2}{N(N^2-1)} = 1 - \frac{6 \times 68.50}{12(12^2-1)}$$

$$= 1 - \frac{411}{12(144-1)} = 1 - \frac{411}{12 \times 143}$$

$$= 1 - \frac{411}{1716} = \frac{1716 - 411}{1716}$$

$$= \frac{1305}{1716}$$

$$= +.76 \text{ Ans.}$$

व्याख्या: दो समुच्चयों के आँकड़ों के मध्य उच्च धनात्मक संबंध को यह परिणाम यहाँ दर्शाता है।

स्थान क्रम विधि की सीमाएँ (Limitations of Rank-Method)**:** स्थान क्रम विधि अधिक विश्वसनीय नहीं है। इस विधि में अंकों के केवल स्थान क्रम (Ranks) पर ही ध्यान दिया जाता है, उनके अपने मान पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता। उदाहरणार्थ, A, B, C के गणित में अंक क्रमशः 30, 40, 50 हैं तथा अंग्रेजी में 70, 80, 90 तो पहली तथा दूसरी परिस्थिति में स्थानक्रम 3, 2, 1 ही होंगे। अब यदि अंग्रेजी के अंकों को 100, 110, 120 कर दिया जाये तब भी स्थान

क्रम वही रहेंगे। अब इस विधि से प्रत्येक स्थिति में एक समान ही उत्तर आयेगा। स्पष्ट है, यह विधि अधिक सही नहीं है।

इसके अतिरिक्त जब आँकड़ों की संख्या, जिनके मध्य हमें अनुबंध की मात्रा निकालनी होती है, 30 से अधिक हो तब ऐसी स्थिति में इस विधि का प्रयोग अधिक उचित नहीं है।

नोट

सह-संबंध गुणांक के उपयोग (Utility of Correlation Coefficient): सह-संबंध गुणांक के प्रमुख उपयोग इस प्रकार हैं–

1. भविष्यवाणी में सहायक (Prediction)
2. परीक्षण की विश्वसनीयता ज्ञात करने में (To determine Reliability)
3. परीक्षण की वैधता ज्ञात करने में (Estimation of Validity)
4. कठिनाइयों के निदान में सहायक (Useful in Diagnosis)
5. वंशानुक्रम एवं वातावरण के प्रभाव की जानकारी प्राप्त करने में।
6. भ्रान्तियों का निवारण करने में (False Beliefs)
7. कारक-विश्लेषण में उपयोग (Use in Factor-Analysis)
8. कार्य-कारण संबंध स्थापित करने में (Cause and effect Relationship)

उपरोक्त बिन्दुओं के अतिरिक्त सह-संबंध गुणांक की उपयोगिता इस प्रकार भी स्पष्ट की जा सकती है–

1. यदि किसी विद्यार्थी ने गृह परीक्षाओं में उच्चतम अंक प्राप्त किये हैं तो हम इसके आधार पर यह भविष्यवाणी कर सकते हैं कि वह छात्र बोर्ड परीक्षा में भी प्रथम श्रेणी अवश्य प्राप्त करेगा।
2. विश्वसनीयता ज्ञात करने में चाहे हम Test—Retest Method लगायें या Split Half Method या अन्य कोई, हमें सह-संबंध गुणांक का मान निकालना ही होगा।
3. वैधता निर्धारण में हमें अपने परीक्षण को किसी कसौटी से सह-संबंधित करना पड़ता है तथा सह-संबंध गुणांक के आधार पर ही वैधता ज्ञात की जाती है।
4. यदि किसी बड़े समूह पर परीक्षण देकर हमने यह सिद्ध किया है कि विज्ञान एवं गणित में धनात्मक सह-संबंध होता है और प्रत्यक्ष में हम कक्षा में ऐसा नहीं देखते तो इस स्थिति में सह-संबंध हमारी इस समस्या का निदान करता है।
5. फ्रांसिस गाल्टन, कार्ल पियरसन तथा थार्नडाइक ने वंशानुक्रम एवं वातावरण का व्यक्तियों पर प्रभाव देखने के लिए अनेक प्रयोग किये हैं।
6. बुद्धि के स्वरूप को समझने के लिए सर्वप्रथम स्पीयरमैन ने Factor-Analysis Technique का सहारा लिया था।
7. वातावरण का छात्रों की उपलब्धि तथा मनोबल पर क्या प्रभाव पड़ता है, इस प्रकार के संबंध भी देखे जाते हैं।

3.11 गुणन आघूर्ण विधि

इस विधि को पियर्सन विधि भी कहते हैं।

दो चरों x तथा y जोकि $(x_1y_1), (x_2y_2), \ldots\ldots (x_ny_n)$ जैसे अनन्त जोड़ों के मानों की क्रमशः कुछ विशेषताओं को (समय, स्थान आदि को) व्यक्त करते हैं। वर्तमान अध्ययन में कार्ल पियर्सन विधि का प्रयोग दो चरों के मध्य अनुरेखीय सह-संबंध में किया जाता है।

कार्ल पियर्सन के सह-संबंध गुणांक को $r(x, y)$ द्वारा निम्नानुसार परिभाषित किया जाता है–

$$r(x, y) = \frac{\sum_{i=1}^{n}(x_i - \bar{x})(y_i - \bar{y})}{\sqrt{\sum_{i=1}^{n}(x_i - \bar{x})^2}\sqrt{\sum_{i=1}^{n}(y_i - \bar{y})^2}}$$

या सामान्यतया,

$$r = \frac{\Sigma(x - \bar{x})(y - \bar{y})}{\sqrt{\Sigma(x - \bar{x})^2}\sqrt{\Sigma(y - \bar{y})^2}}$$

जहाँ x और y AM’s की क्रमशः x शृंखला और y शृंखला हैं।

इसे कार्ल पियर्सन के सह-संबंध गुणांक के परिकलन की प्रत्यक्ष (सीधी) विधि कही जाती है।

यदि इसमें भ्रम की कोई संभावना न हो तो, हम $r(x, y)$ को बस r लिखते हैं।

इसे गणितीय विधि द्वारा $-1 \leq r \leq 1$ सिद्ध किया जा सकता है।

यदि चरों के मध्य सह-संबंध अनुरेखीय है तो कार्ल पियर्सन के सह-संबंध गुणांक के मान की व्याख्या निम्नांकित तरह से करेंगे–

'r' का मान	चरों के मध्य सह-संबंध अनुरेखीय की स्थिति
$r = +1$	• पूर्ण स्पष्ट धनात्मक सह-संबंध
$0.75 \leq r < 1$	• उच्च स्थिति धनात्मक सह-संबंध
$0.50 \leq r < 0.75$	• सामान्य धनात्मक सह-संबंध
$0 < r < 0.50$	• निम्न स्थिति धनात्मक सह-संबंध
$r = 0$	• कोई सह-संबंध नहीं
$-0.50 < r < 0$	• निम्न स्थिति ऋणात्मक सह-संबंध
$-0.75 < r \leq -0.50$	• सामान्य स्थिति ऋणात्मक सह-संबंध
$-1 < r \leq -0.75$	• उच्च स्थिति ऋणात्मक सह-संबंध
$r = -1$	• पूर्ण स्पष्ट ऋणात्मक सह-संबंध

टिप्पणी 1. कार्ल पियर्सन के सह-संबंध गुणांक को प्रोडक्ट मोमेंट सह-संबंध गुणांक या कार्ल पियर्सन प्रोडक्ट मोमेंट सह-संबंध गुणांक के रूप में भी वर्णन किया जा सकता है।

टिप्पणी 2. कार्ल पियर्सन के सह-संबंध गुणांक में त को P(x, y) या केवल च के द्वारा भी निर्दिष्ट किया जा सकता है।

अक्षर P ग्रीक वर्ण का ‘rho’ है।

टिप्पणी 3. कार्ल पियर्सन के ज्यामितिय, सह-संबंध गुणांक को गणना (निर्धारण) का गुणांक भी कहा जाता है।

उदाहरणतया

यदि $r = 0.753$ है तब निर्धारण का गुणांक $(0.753)^2 = 0.567$ होगा।

निर्धारण का गुणांक सदैव 0 और 1 के बीच स्थित होता है। (जिसमें दोनों शामिल हैं।)

टिप्पणी 4. $r = \dfrac{\Sigma(x-\bar{x})(y-\bar{y})}{\sqrt{\Sigma(x-\bar{x})^2}\sqrt{\Sigma(y-\bar{y})^2}}$ क्योंकि समान होता है।

$$r = \frac{\Sigma(x-\bar{x})(y-\bar{y})}{\sqrt{\dfrac{\Sigma(x-\bar{x})^2}{n}}\sqrt{\dfrac{\Sigma(y-\bar{y})^2}{n}}}$$

उदाहरण: निम्नांकित तालिका की सहायता से सह-संबंध गुणांक ज्ञात करें।

X	10	12	15	8	5	16
Y	15	16	8	10	11	12

इसके अनुसार ऊपर वाले प्रश्न को इस प्रकार करेंगे–

तालिका 3.5

X	Y	x	y	x^2	y^2	xy
10	15	–1	+3	1	9	–3
12	16	+1	+4	1	16	+4
15	8	+4	–4	16	16	–16
8	10	–3	–2	9	4	+6
5	11	–6	–1	36	1	+6
16	12	+5	–0	25	0	+0
66	72	0	0	$\Sigma x^2 = 88$	$\Sigma y^2 = 46$	$\Sigma xy = -3$

म. मा. $x = 11$, म. मा. $y = 12$। इस प्रकार,

1. पहले हम दोनों अंक-समूहों का अलग-अलग म.मा. निकाल लेंगे।
2. फिर दोनों अंक-समूह के म. मा. तथा अंकों का अन्तर निकाल लेंगे। पहली सूची के हर अंक में से उसके म. मा. घटाते चलेंगे। इस प्रकार म.मा. (11) तथा पहली सूची के अंकों का अन्तर (x) आ जायेगा। इसी प्रकार दूसरी सूची के प्रत्येक अंक में से उसका म.मा. (12) घटाते चले जायेंगे। इस प्रकार हमें (y) स्तम्भ मिल जायेगा।
3. अब अगले स्तम्भों में हम ग तथा ल वाले स्तम्भों की संख्याओं का वर्ग कर देंगे। इस प्रकार, x^2 तथा y^2 वाले स्तम्भ मिल जायेंगे।
4. फिर आगे वाले स्तम्भ में हम x तथा y वाले स्तम्भों की संख्याओं को आपस में क्रमश: गुणा करके रखेंगे। इस प्रकार xy वाला स्तम्भ मिलेगा।
5. फिर x^2, y^2 तथा xy वाले तीनों स्तम्भों की संख्याओं को अलग-अलग जोड़ लेंगे। ये क्रमश: $\Sigma x, \Sigma y$ तथा Σxy इस प्रकार लिखे जायेंगे।

   इतना करने के पश्चात् अब हम सूत्र का प्रयोग करेंगे। प्रोडक्ट मोमेंट विधि से अनु.गु. निकालने का सूत्र इस प्रकार है:

नोट

$$r = \frac{\Sigma xy}{\sqrt{\Sigma x^2 \times \Sigma y^2}}$$

ऊपर के प्रश्न में,

$$\Sigma xy = -3$$

$$\Sigma x^2 = 88$$

$$\Sigma y^2 = 46$$

अतः $$r = \frac{3}{\sqrt{(88)(46)}} = \frac{-3}{\sqrt{4048}}$$

$$= \frac{-3}{63.62}$$

$$= -.047$$

6. एक तीसरी रीति के अनुसार हम वास्तविक म.मा. (actual mean) न निकाल कर केवल मानी गई (assumed mean) से भी काम चला सकते हैं। नीचे इसी प्रश्न को कल्पित म.मा. से निकला गया है:

तालिका 3.6

X	Y	x	y	x^2	y^2	xy
10	15	0	5	0	25	0
12	16	2	6	4	36	12
15	8	5	–2	25	4	–10
8	10	–2	0	4	0	0
5	11	–5	+1	25	1	–5
16	12	+6	+2	36	4	+12
66	72			94	70	+9

वा.म.मा. $x = 11$, वा.म.मा. $y = 12$

माना हुआ म.मा. $x = 10, y = 10$

$$C_x = 1, C_y = 2$$

C_x ख्पहले वा.म.मा. (mean) तथा माने हुए म.मा. (mean) का अन्तर, = 11 – 10 = 1

C_y ख्दूसरे वा.म.मा. (mean) तथा माने हुए म.मा. (mean) का अन्तर, = 12 – 10 = 2

$$C_x^2 = (1)^2 = 1$$

$$C_y^2 = 4$$

$$\sigma_x = \sqrt{\frac{\Sigma x^2}{N} - C_x^2} = \sqrt{\frac{94}{6} - 1} = 3.83$$

$$\sigma_y = \sqrt{\frac{\Sigma y^2}{N} - C_y^2}$$

$$= \sqrt{\frac{70}{6} - 4} = 2.76$$

सूत्रानुसार $$r_{xy} = \frac{\frac{\Sigma xy}{N} - C_x \cdot C_y}{\sigma_x \cdot \sigma_y}$$

$$= \frac{\frac{9}{6} - 1 \times 2}{2.83 \times 2.76}$$

$$= \frac{-.5}{10.57} = (-.047)$$

नोट

इस विधि का प्रयोग ऐसी परिस्थितियों में सुविधाजनक और उपयोगी होता है जिनमें वास्तविक म.मा. दशमलव भिन्न में आता है, जैसे 104.3 अथवा 98.6 आदि, क्योंकि ऐसी स्थिति में म.मा. (mean) को वास्तविक अंकों (true scores) में से घटाने में तथा उनके अन्तर का वर्ग बनाने में बड़ी कठिनाई पड़ती है। अत: हम उसके स्थान पर उसी के आस-पास पूर्ण संख्या में अंकों का मध्यमान ले लेते हैं। यह अनुमानित मध्यमान (assumed mean) कहलाता है। इससे *x* तथा *y* और उनके वर्ग बनाने की असुविधा दूर हो जाती है।

वास्तव में रेंक प्रणाली (rho) का प्रयोग तब अधिक उचित रहता है जब थोड़े आँकड़ों के बीच अनु.गु. निकालना हो। आँकड़ों की 30 संख्या तक रेंक प्रणाली का प्रयोग किया जा सकता है। इससे अधिक संख्या वाले आँकड़ों का अनु.गु. प्रोडक्ट-मोमेंट प्रणाली से निकालना चाहिये।

रेंक प्रणाली से निकाला हुआ अनु.गु. (rho) लगभग प्रोडेक्ट-मोमेंट रीति से निकाले हुये अनु. गु. के बराबर ही आता है। जे.पी. गिल्फोर्ड का कहना है कि किसी भी हालत में दोनों रीतियों से निकाले हुए अनु.गु. में .018 से अधि क अन्तर नहीं होता और प्रत्येक स्थिति में प्रोडक्ट-मोमेंट द्वारा निकाला हुआ अनु.गु. (*r*) रेंक प्रणाली द्वारा निकाले हुये अनु.गु. (rho) से बड़ा होता है। (केवल शून्य तथा + 1.0 अनु.गु. की स्थिति को छोड़कर कर) परन्तु यह कथन व्यावहारिक दृष्टिकोण से बिल्कुल सही नहीं उतरता। पिछले उदाहरण से यह बात स्पष्ट है। रेंक प्रणाली से अनु. गु. (rho) +.085 आता है और प्रोडक्ट-मोमेंट से –.047 आता है। दोनों का अन्तर .038 के लगभग है। दूसरे (rho) बड़ा है *r* से। प्रोडक्ट मोमेंट अनु.गु. उन्हीं परिस्थितियों में निकाला जाता है जहाँ निम्नलिखित शर्तें पूरी होती हों–

1. जब प्रतिदर्श (sample) बड़ा (large) हो।
2. जब अंकों का वितरण सम हो।
3. जब मापांक अनवरत (continuous) रूप से उपलब्ध हो।

3.12 अप्राचलीय परीक्षाओं का अर्थ एवं स्वरूप

प्राचलीय परीक्षाओं का प्रयोग जनसंख्या-विशेषताओं (प्राचलों) के विषय में कुछ अवधारणाओं पर आधारित होता है। इन प्राचलों (parameters) की विशेषताओं पर इनका प्रयोग निर्भर करता है। इसलिए इन्हें प्राचलीय परीक्षाएँ कहते हैं। ठीक इसके विपरीत अप्राचलीय परीक्षाएँ जनसंख्या के

नोट

प्राचलों के विषय में किसी की कोई शर्तें नहीं लगातीं, इसीलिए उन्हें अप्राचलीय परीक्षाएँ कहते हैं। किसी-किसी अप्राचलीय परीक्षा में कुछ अभिधारणायें निहित होती हैं, परन्तु वे बहुत कम एवं साधारण प्रकार की होती हैं। समग्र सृष्टि में चरों के वितरण-सम्बन्धी इनकी कोई शर्त नहीं होती। अत: इन्हें प्राय: वितरण-मुक्त (distribution free) संख्यिकीय विधि भी कहते हैं। अप्राचलीय सांख्यिकीय तकनीकों में प्राचलों (parameters) जैसे-मध्यमान, विचरण आदि के स्थान पर चरों के वितरणों (distributions) के आधार पर समूहों की तुलना की जाती है।

अप्राचलीय परीक्षाओं के लाभ

इन परीक्षाओं के निम्नलिखित लाभ हैं–

1. बहुत छोटी न्यादर्श (N = 6) की स्थिति में केवल इन्हीं परीक्षाओं का प्रयोग किया जा सकता है।
2. इनका प्रयोग वहाँ भी किया जा सकता है। जहाँ न्यादर्शों को भिन्न-भिन्न जनसृष्टियों में से छाँटा गया हो।
3. समग्र जनसृष्टि में चरों के वितरण का रूप (shape) कैसा ही क्यों न हो, परन्तु ये परीक्षाएँ उपलब्ध परिणाम की सम्भावना (probability) का सही-सही कथन करने की सामर्थ्य रखती हैं।
4. जब शोध-सामग्री श्रेणियों (categories) तथा अनुस्थितियों (ranks) के रूप में उपलब्ध हों तो केवल इन्हीं परीक्षाओं का प्रयोग सम्भव होता है।
5. इन परीक्षाओं को समझना, उनके प्रयोग को सीखना तथा उनसे सम्बन्धित संगणना आदि बहुत सरल होते हैं।
6. उन परिस्थितियों में भी इनका प्रयोग किया जा सकता है जिनमें प्राचलीय परीक्षाएँ प्रयुक्त होती हैं।
7. किसी भी प्राचलीय परीक्षा की ऐसी स्थिति में जहाँ उसकी शर्तें पूरी न होती हों, अप्राचलीय परीक्षाओं का प्रयोग किया जा सकता है।

अप्राचलीय परीक्षाओं के दोष

इन परीक्षाओं की कुछ अपनी सीमाएँ भी हैं– जिनका उल्लेख नीचे किया गया है–

1. प्राचलीय परीक्षा की किसी एक स्थिति में निश्चित आकार वाले न्यादर्श पर जितनी परीक्षा-शक्ति (power of the test) उपलब्ध होती है उतनी ही परीक्षा-शक्ति प्राप्त करने के लिए अप्राचलीय परीक्षाओं की स्थिति में न्यादर्श के आकार को बहुत अधिक बड़ा करना होगा। दूसरे शब्दों में, इन परीक्षाओं की शक्ति (power) कम होती है।
2. इन परीक्षाओं में कोई भी परीक्षा ऐसी नहीं है जिसमें चरों के अन्तर्क्रिया प्रभावों का अध्ययन किया जा सके। इन कठिनाइयों के होते हुए भी अप्राचलीय परीक्षाओं का बहुत महत्त्व है क्योंकि अनुसन्धान की परिस्थितियाँ प्राय: ही ऐसी होती हैं कि उनमें प्राचलीय शर्तें पूरी नहीं होतीं तथा उनके विकल्प ढूँढने होते हैं।

   कुछ विशिष्ट एवं अधिक प्रयुक्त अप्राचलीय परीक्षाओं का वर्णन इस अध्याय में किया गया है।

इस शीर्षक के अन्तर्गत उन अप्राचलीय परीक्षाओं का वर्णन किया गया है जिनका प्रयोग स्वतन्त्र समूहों की तुलना करने में किया जाता है।

नोट

3.13 काई वर्ग परीक्षा

काई वर्ग (χ^2) एक ऐसी अप्राचलीय सांख्यिकीय विधि है जिसमें यह परीक्षा की जाती है कि आवृत्तियों का एक वितरण जो किसी अनुसन्धान के आधार पर प्राप्त हुआ है वह किसी उपकल्पना के आधार पर प्रत्याशित आवृत्तियों के वितरण से सार्थक रूप से भिन्न है अथवा नहीं। यदि भिन्न नहीं है तो उन दोनों को सम्बन्धित समझा जाता है। इस प्रकार काई-वर्ग दो चरों के अथवा दो आवृत्ति-विचरणों के पारस्परिक सम्बन्ध की परीक्षा विधि है। प्राप्त एवं प्रत्याशित आवृत्तियों के बीच जो अन्तर हैं क्या वे केवल संयोगवश हैं अथवा वास्तविक हैं, यह जानने के लिए भी इस विश्लेषण-विधि का सहारा लिया जाता है। इस आकल्प के कई प्रकार हैं। मुख्य रूप से चार भिन्न परिस्थितियों में इसका प्रयोग किया जाता है। ये हैं:

1. एकल समूह स्थिति।
2. दो स्वतन्त्र समूहों की स्थिति।
3. कन्टिंजेंसी-विश्लेषण।
4. दो से अधिक स्वतन्त्र समूहों की स्थिति।

1. एकल समूह स्थिति

इस विधि का प्रयोग वहाँ किया जाता है जहाँ प्राप्त आवृत्ति-वितरण की तुलना किसी ऐसे वितरण से की जाती है जोकि एक मानक (standard) वितरण होता है तथा जो किसी निश्चित उपकल्पना जैसे-सम-वितरण की उपकल्पना अथवा समान वितरण की उपकल्पना के आधार पर प्रत्याशित होता है। नीचे दिये गये उदाहरण से यह स्पष्ट हो जायेगा।

उदाहरण 1

एक शोधकर्ता यह जानना चाहता है कि क्या पढ़ी लिखी स्त्रियाँ वास्तव में नौकरी करना पसन्द करती हैं। यह जानने के लिए उसने 48 पढ़ी-लिखी स्त्रियों को चुना तथा उनसे पूछा कि क्या वे नौकरी करना पसन्द करेंगी। उन्हें तीन विकल्पों ('हाँ', 'नहीं', 'तटस्थ') में से एक विकल्प चुनने को कहा। प्रत्येक उत्तर की आवृत्तियाँ उसे इस प्रकार प्राप्त हुईं–24, 12, 12। समान वितरण के आधार पर उसने यह परीक्षा की कि क्या प्राप्त वितरण (24, 12, 12) समान वितरण (16, 16, 16) से सार्थक रूप से भिन्न है। उसकी धारणा यह थी कि यदि वास्तव में स्त्रियाँ नौकरी करना पसन्द करती हैं तो उनका यह वितरण प्रत्याशित वितरण (16, 16, 16) से भिन्न होना चाहिए अर्थात् दूसरे शब्दों में कहें कि यदि नौकरी करने अथवा न करने, किसी की ओर उनका विशेष झुकाव नहीं है तो 48 स्त्रियों का वितरण तीनों विकल्प उत्तरों के अन्तर्गत समान (16, 16, 16) होना चाहिए। इस वितरण से प्राप्त वितरण सार्थक रूप से भिन्न है या नहीं इसकी परीक्षा उसने काई-वर्ग द्वारा की। इसके लिए पहले उसने निम्न प्रकार तालिका तैयार की तथा उसके अधार पर काई-वर्ग का मान निकाला। इस गणना की सम्पूर्ण विधि नीचे की तालिका में दी गई है–

नोट

तालिका 3.7. One sample Chi-Square Test

	Preferred	Not-perferred	Indifferent	Total
Fo	24	12	12	48
Fe	16	16	16	48
Fo – Fe	8	4	4	
$(Fo - Fe)^2$	64	16	16	
$\frac{(Fo - Fe)^2}{Fe}$	4	1	1	$6 = \chi^2$ value

उपरोक्त तालिका में थ्व का अर्थ है प्राप्त आवृत्तियाँ, थ्म का अर्थ है प्रत्याशित आवृत्तियाँ।

यह एकल न्यादर्श काई-वर्ग का उदाहरण है क्योंकि इसमें शोध-सामग्री केवल एक ही न्यादर्श (48 स्त्रियों) से एकत्र की गई है अर्थात् एक ही न्यादर्श का प्रयोग किया गया है।

काई-वर्ग निकालने का सूत्र है–

$$\chi^2 = \sum \frac{(Fo - Fe)^2}{Fe}$$

जिसमें Fe का अर्थ है प्रत्याशित आवृत्तियाँ तथा थ्व का अर्थ है प्राप्त आवृत्तियाँ।

उपरोक्त सूत्र द्वारा तालिका-1 की प्रत्येक कोषा का काई-वर्ग मान निकाला गया है। बाद में सब कोषाओं के मान को जोड़ लिया गया है। यह सम्पूर्ण काई-वर्ग 6.0 आया है।

यदि प्राप्त काई-मान तालिका-D में दिये गये मान के बराबर अथवा उससे अधिक है तो उसे सार्थक माना जाता है। शेष समस्या प्रक्रिया व तर्क ठीक टी-टेस्ट की तरह ही रहते हैं।

स्वातंत्र्यांशों (df) की गणना

तालिका-D के प्रयोग में कि की संकल्पना का प्रयोग भी किया जाता है। इसे ज्ञात करने का सूत्र है $(r - 1) \times (k - 1)$ अर्थात् पंक्तियों एवं स्तम्भों की संख्या में से एक-एक घटाकर शेष को परस्पर गुणा कर लेते हैं। पीछे दिये गये उदाहरण में 3 स्तम्भ तथा पंक्तियाँ हैं। अतः $df = (3 - 1) \times (2 - 1) = 2$ A

सार्थकता–तालिका-D में $2df$ तथा 0.5 स्तर पर काई-मान 5.991 है। प्राप्त मान 6.0 है जो तालिका मान से अधिक है। अतः उपकल्पना H_o कि "दोनों वितरणों में कोई अन्तर नहीं है" को अस्वीकार करके यह निष्कर्ष निकलेगा कि वितरणों में सार्थक अन्तर है। दूसरे शब्दों में कहना होगा कि स्त्रियाँ नौकरी करना पसन्द करती हैं क्योंकि "हाँ" उत्तर की आवृत्तियाँ सबसे अधिक हैं। यदि "न" उत्तर की आवृत्तियाँ अधिक होतीं तो निष्कर्ष यह होता कि वे नौकरी करना पसन्द नहीं करतीं। अतः वास्तव में निष्कर्ष क्या होगा, यह कोषाओं की आवृत्तियों के निरीक्षण पर निर्भर करता है।

यदि एक छोरीय परीक्षा करनी हो तो काई का मान तालिका-D में .05 स्तर के लिए स्तम्भ .01 में तथा .01 के लिए स्तम्भ .02 में देखना चाहिये।

प्रत्याशित आवृत्तियों की उपकल्पनाएँ

एकल न्यादर्श की स्थिति में प्रत्याशित आवृत्तियाँ ज्ञात करने के लिए "समान वितरण" उपकल्पना का प्रयोग किया जा सकता है जैसा कि पीछे दिये गये उदाहरण में स्पष्ट किया गया है। इसके

अतिरिक्त "सम-वितरण" उपकल्पना का भी प्रयोग किया जा सकता है। किसका प्रयोग किया जाना चाहिये यह अनुसन्धान परिस्थिति पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिए यदि हम यह जानना चाहते हैं कि किसी कक्षा के प्राप्तांकों का वितरण सम है या नहीं तो प्रत्याशित आवृत्तियाँ सम-वितरण के आधार पर निकालनी होंगी।

नोट

काई-वर्ग की सीमाएँ

काई-वर्ग परीक्षा का प्रयोग निम्नलिखित परिस्थितियों में वर्जित हैं–

1. जब *df* केवल 1 हो अर्थात् k (समूह) = 2 हो तथा कोई प्रत्याशित आवृत्ति 5 से कम हो।
2. जब *df* तो 1 से अधिक हो, परन्तु 20% से अधिक आवृत्तियाँ 5 से कम हों अथवा कोई प्रत्याशित आवृत्ति 1 से कम हो।

2. दो स्वतन्त्र समूह आकल्प

इस स्थिति में दो स्वतन्त्र समूहों की तुलना काई-वर्ग के आधार पर की जाती है, ठीक वैसे ही जैसे–टी टेस्ट में टी का मान निकालकर की जाती है। अन्तर इतना है कि इसमें टी के स्थान पर काई-वर्ग का मान निकालकर उसकी सार्थकता की परीक्षा की जाती है तथा इस निष्कर्ष पर पहुँचा जाता है कि दोनों समूह किसी विशेषता अथवा आश्रित चर के दृष्टिकोण से एक-दूसरे से भिन्न हैं या नहीं। "दोनों समूह एक-दूसरे से भिन्न नहीं हैं" यह उपकल्पना (H_o) परीक्षा का आधार होती है। अत: काई-वर्ग प्राचलीय परीक्षा टी का ही अप्राचलीय विकल्प है। टी-परीक्षा की शर्तें पूरी न होने पर जहाँ उनका प्रयोग नहीं किया जा सकता वहाँ काई-वर्ग का प्रयोग किया जा सकता है। उदाहरण के लिए मान लीजिए एक शोधकर्ता यह जानना चाहता है कि "नौकरी करने की इच्छा में पुरुषों तथा स्त्रियों में कोई अन्तर है।" वह ऐसा एक प्रश्न कुछ स्त्रियों एवं पुरुषों से पूछता है तथा उत्तर के तीन विकल्पों "हाँ", "न" तथा "तटस्थ" के रूप में शोध-सामग्री प्राप्त करता है। इस स्थिति में काई-वर्ग परीक्षा का प्रयोग किया जा सकता है।

प्रयोग की विधि

काई-वर्ग के प्रयोग की इस स्थिति में भी वही विधि होगी जिसका वर्णन एकल समूह की स्थिति में पहले किया गया है। दोनों में अन्तर यही है कि इस स्थिति में एक समूह की जगह दो समूह है। तालिका तैयार करके उसकी प्रत्येक कोषा का काई-वर्ग मान निकालना होगा तथा अन्त में सबको जोड़कर सम्पूर्ण काई-वर्ग प्राप्त करना होगा। काई-वर्ग निकालने का सूत्र भी पूर्ववत् ही होता है अर्थात्

$$\text{काई-वर्ग} = \sum \frac{(fo - fe)^2}{fe}$$

नीचे दिये गये उदाहरण द्वारा संगणना की विधि का स्पष्टीकरण किया गया है।

उदाहरण–2

मान लीजिये ऊपर दिये गये प्रश्न को शोधकर्ता ने 90 पुरुषों तथा 100 स्त्रियों से पूछा तथा 'हाँ', 'न' और "तटस्थ" तीन प्रकार के विकल्पों के रूप में उत्तर प्राप्त किये। उन उत्तरों का आवृत्ति-वितरण तैयार करके एक तालिका बनाई तथा इस उपकल्पना की परीक्षा की कि "पुरुषों

तथा स्त्रियों की नौकरी की इच्छा में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।" निम्नलिखित तालिका शोध-सामग्री एवं संगणन की प्रक्रिया को प्रदर्शित करती है।

नोट

तालिका 3.8. रोजगार की आवश्यकता और लैंगिकता में संबंध

		Response		Mode	
		Yes	**No**	**Indifferent**	**Total**
	Fo	14.0	66.0	10.0	90
पुरुष	*Fe*	19.42	62.52	8.05	
	Fo – Fe	5.42	3.48	1.95	
	$\frac{(Fo - Fe)^2}{Fe}$	1.51	0.20	0.47	
	Fo	27.0	66.0	7.0	100
	Fo – Fe	21.57	64.44	9.0	
महिलाएँ	*Fo − Fe*	5.43	3.49	2.0	
	$\frac{(Fo - Fe)^2}{Fe}$	1.30	0.18	0.49	
कुल		41	132	17	190

इस समस्या के समाधान में, काई वर्ग मान में प्रत्येक कोश की आवृत्ति की गणना करनी पड़ेगी और अन्त में सभी प्राप्त मानों को निम्न प्रक्रिया द्वारा रखकर हल किया जाएगा।

1. *Fe* (1) i.e., cell-1 = $\frac{41}{190} \times \frac{90}{0}$ 90 – 19.42 (out of 190 total *Fe* for 'yes' response = 41; how many out of 90, total of first row).

2. *Fe* (2) i.e., for cell-2 = $\frac{132}{190} \times \frac{90}{1}$ = 16.52 (out of 190 *Fe* for 'No' response = 132; how many out of 90).

3. *Fe* (3) i.e., for cell-3 $\frac{17}{190} \times \frac{90}{1}$ = 8.05

   (out of 190 *Fe* for cell-3, indiff. response = 17; how many out of 90).

4. *Fe* (4) = $\frac{11}{190} \times \frac{100}{1}$ = 21.57 (same argument).

5. *Fe* (5) = $\frac{11}{190} \times \frac{11}{190}$ = 64.44 (same argument).

6. *Fe* (6) = $\frac{17}{190} \times \frac{100}{1}$ = 9.00 (same argument).

   After this, we find out (F_o – *Fe*) for each cell. These values are also given in the table for each cell.

इसके पश्चात् प्रत्येक (F_o – Fe) का वर्ग निकालकर उसे थ्म से भाग देकर काई-वर्ग में बदल लेते हैं। ये क्रमशः 1.51 + .20 + .47 + 1.30 + .18 + .49 आते हैं। इन सबका योग अर्थात् $\sum \chi^2 = 4.51$।

नोट

काई-वर्ग की सार्थकता

तालिका-D में ($2 \times 1 = 2df$) पर तथा .05 स्तर पर काई का मान है 4.991, परन्तु प्राप्त मान आता है 4.15 जो तालिका मान से कम है। अतः .05 स्तर पर H_o अर्थात् "अन्तर नहीं है" की उपकल्पना को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। फलस्वरूप "अन्तर नहीं है" को स्वीकार करना पड़ेगा क्योंकि काई-वर्ग का मान सार्थक नहीं है। वह संयोगवश भी हो सकता है।

निष्कर्ष–अतः यह निष्कर्ष निकला कि लिंग (Sex) का नौकरी की इच्छा के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।

3. कन्टिंजेंसी विश्लेषण (2 × 2 तालिका)

आवृत्तियों का वितरण यदि 2 × 2 तालिका में प्रस्तुत किया गया हो तो काई-वर्ग निकालने की एक दूसरी विधि भी होती है जो बहुत सरल है तथा जिसका प्रयोग अधिकतर परिस्थितियों में किया जाता है। इसमें पंक्तियों (r) की संख्या भी 2 तथा स्तम्भों (k) की संख्या भी 2 होती है। अतः इसमें df = (r – 1) (k – 1) अर्थात् (2 – 1) (2 – 1) = 1 होती है। काई वर्ग निकालने का सूत्र निम्न प्रकार होता है–

$$\chi^2 = \frac{N\left[|AD - BC| - \frac{N}{2}\right]^2}{(A+B)(C+D)(A+C)(B+D)}$$

जिसमें |AD – BC| जा सकता है। का अर्थ है कि AD में से BC अथवा BC में से AD किसी को भी किसी में से घटाया जा सकता है।

उपरोक्त सूत्र में (AD – BC) में से $\frac{1}{2}$ को घटाया जाता है जिसे येट्स-शुद्धि (Yates Correction) कहते हैं।

इसका कारण प्राप्त काई-मानों को उनके वास्तविक अर्थात् सिद्धान्ताधारित एवं प्रत्याशित काई-वर्ग वितरण के अनुरूप बनाना होता है। मोरोने (1954) के अनुसार, तालिकागत वितरण बायनोमियल वितरण (bionomial distribution) होता है जो अखण्ड (continuous) नहीं होता जबकि काई-वर्ग वितरण अखण्ड होता है। अतः बायनोमियल वितरण को काई-वर्ग वितरण के समरूप बनाने के लिए यह शुद्धि की जाती है।

उदाहरण-3

एक शोधकर्ता यह जानना चाहता है कि क्या छात्रों का आर्थिक-सामाजिक स्तर उनकी शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित करता है। वह 48 निम्न स्तर आर्थिक-सामाजिक स्तर के छात्रों को चुनकर उनकी शैक्षिक उपलब्धि को सफल अथवा असफल दो श्रेणियों में बाँटकर एकत्र करता है। इस शोध-सामग्री को वह 2 × 2 की तालिका में व्यवस्थित करता है तथा काई-वर्ग का मान कन्टिंजेंसी सूत्र के आधार पर निकालकर उपलकल्पना की परीक्षा करता है। निम्न तालिका तथा तदाधारित संगणना नीचे दी गई है।

नोट

तालिका 3.9. परीक्षा परिणाम

	अनुत्तीर्ण	उत्तीर्ण	कुल
उच्च SES	36 (A)	12(B)	48
निम्न SES	32(C)	16(D)	48
कुल	68	28	96

इस समस्या में मौजूद प्रश्न का उत्तर जानने के लिए काई वर्ग परीक्षा अपनाई जा सकती है। इसमें आँकड़ों को 2 × 2 की कंटिंजेन्सी तालिका बनाकर, मानों को सूत्र में रखने पर,

$$\chi^2 = \frac{N\left(|AD - BC| - \frac{N}{2}\right)^2}{(A+B)(C+D)(C+A)(B+D)}$$

$$= \frac{\left[96\left|(36)(16) - (12)(32)\right| - 96/2\right]^2}{48 \times 48 \times 68 \times 28}$$

$$= \frac{96\,[576 - 384 - 48]^2}{4386816}$$

$$= \frac{1990656}{4386816} = 0.4537 \text{ for } df$$

सार्थकता एवं निष्कर्ष

तालिका-D में 1 *df* तथा .05 स्तर पर काई-वर्ग का मान है 3.84। प्राप्त काई-वर्ग मान 0.4537 है जो तालिका मान से बहुत कम है। अत: H_o उपकल्पना "दोनों समूहों (HSES तथा LSES) की शैक्षिक उपलब्धि में कोई अन्तर नहीं है" को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। प्राप्त काई-वर्ग सार्थक नहीं है अर्थात् वह संयोगवश भी हो सकता है। इसलिए अन्तिम निष्कर्ष यह होगा कि छात्रों का आर्थिक-सामाजिक स्तर उनकी शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित नहीं करता। आर्थिक-सामाजिक स्तर एवं शैक्षिक उपलब्धि के बीच कोई सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता।

2 × 2 कन्टिंजेंसी विधि की सीमाएँ

यदि यह शर्त पूरी नहीं होती तो आस-पास की अवृत्तियों को मिलाकर तथा कोषाओं (cells) की संख्याओं को कम करके 2 × 2 तालिका की आवृत्तियों को बढ़ाया जा सकता है, तो भी निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना जरूरी है–

1. जब छ का आकार 40 से अधिक हो तो अखण्डता हेतु शुद्धि का प्रयोग अवश्य करना चाहिए।
2. जब छ 20-40 के बीच हो तो उपरोक्त सूत्र का प्रयोग तभी करें जब कोषाओं की सभी प्रत्याशित आवृत्तियाँ 5 अथवा 5 से अधिक हों।

4. दो से अधिक स्वतन्त्र समूह

नोट

यदि दो से अधिक स्वतन्त्र समूहों की तुलना करनी है तब भी काई-वर्ग का प्रयोग किया जा सकता है। इस स्थिति में आवृत्तियों को K × r तालिका में व्यवस्थित किया जाता है। अप्रतिष्ठेय उपकल्पना (H_o) पहले जैसी रहती है कि i.न्यादर्श आपस में एक-दूसरे से भिन्न नहीं हैं। काई-वर्ग परीक्षा भी वैसे ही की जाती है जैसे पीछे वर्णन किया गया है, परन्तु इसमें प्रत्येक कोषा की प्रत्याशित आवृत्तियाँ निकालने की विधि भिन्न होती है। इसका वर्णन एक उदाहरण द्वारा आगे किया जायेगा।

यह विधि प्राचलीय परीक्षा एकल दिक् विचरण विश्लेषण (one-way analysis of variance) का ही अप्राचलीय विकल्प है। यदि किसी अनुसन्धान की स्थिति में दो से अधिक समूहों की तुलना करनी हो परन्तु F-परीक्षा की शर्तें पूरी न होती हों तो वहाँ इसका प्रयोग किया जा सकता है।

उदाहरण–4

एक शोधकर्ता, बुद्धि एवं शैक्षिक उपलब्धि के बीच कोई सम्बन्ध है या नहीं, यह जानने के लिये एक कक्षा के 100 छात्रों की बुद्धि का मापन करता है तथा उन्हें तीन श्रेणियों में बाँटता है, जैसे–अधिक बुद्धिमान, साधारण रूप से बुद्धिमान तथा कम बुद्धिमान। इसी प्रकार उनकी शैक्षिक उपलब्धि को चार श्रेणियों में बाँटता है, जैसे प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा असफल। जिस श्रेणी में जितने छात्र आते हैं उन्हें लेकर 4 × 3 की एक तालिका तैयार करता है जिसका प्रारूप तथा काई-वर्ग की संगणना उसके नीचे प्रस्तुत की गई है।

तालिका 3.10. शैक्षिक उपलब्धि

		असफल	III श्रेणी	II श्रेणी	I श्रेणी	योग
बुद्धि	अधिक O	5	6	9	8	28
	बुद्धिमान E	5.88	8.40	7.84	5.88	
	O-E	.88	2.40	1.16	3.88	
	साधारण O	5	16	13	8	42
	बुद्धिमान E	8.82	12.00	11.76	8.82	
	O-E	3.82	3.40	1.24	.82	
	कम O	11	8	6	5	30
	बुद्धिमान E	6.30	9.0	8.40	6.30	
	O-E	4.70	1.0	2.40	1.30	
योग		21	30	28	21	100

तालिका-3.4 में O के सामने प्रत्येक कोषा की प्राप्त आवृत्तियाँ दी गई हैं तथा E के सामने प्रत्याशित आवृत्तियाँ दी हैं। प्रत्याशित आवृत्तियाँ निकालने के प्रत्येक कोषा के पंक्ति-योग तथा स्तम्भ योग को गुणा करके कुल आवृत्तियों की संख्या (N) से भाग दे देते हैं। इसके पीछे इस प्रकार का तर्क रहता है। कोषा एक को लीजिये। इसमें सभी व्यक्ति वे हैं जो प्रथम पंक्ति एवं प्रथम स्तम्भ में आते हैं। किसी एक व्यक्ति के इस पंक्ति में होने की सम्भावना (probability) वह होगी जो इस पंक्ति के योग की कुल संख्या (N) अर्थात् 100 से भाग करने पर आयेगी अर्थात् वह होगी

नोट

28/100। इसी प्रकार उस व्यक्ति के प्रथम स्तम्भ में होने की सम्भावना होगी 21/100। अत: उसकी प्रथम पंक्ति एवं स्तम्भ में होने की सम्भावना होगी $\frac{28}{100} \times \frac{21}{100}$। यह हुई सम्भावना (probability) जो एक में से होती है। कुल आवृत्तियाँ 100 हैं। अत: 100 में से वे कितनी होंगी यह जानने के लिये इस सम्भावना $\left(\frac{28}{100} \times \frac{21}{100}\right)$ को 100 से गुणा कर देंगे। इस प्रकार प्रथम कोषा की कुल प्रत्याशित आवृत्तियाँ होंगी $\frac{28}{100} \times \frac{21}{100} \times \frac{100}{1}$

इसी प्रकार अन्य सभी कोषाओं की प्रत्याशित आवृत्तियाँ उनके पंक्ति-योग एवं स्तम्भ योग को गुणा करके 100 से भाग देकर निकाल सकते हैं। तालिका-4 में ये अंकित हैं। इनके आधार पर अग्रलिखित सूत्र द्वारा प्रत्येक कोषा का काई-वर्ग निकाल सकते हैं:

$$\chi^2 = \frac{(O-E)^2}{E}$$ अर्थात्

$$(.88)^2/5.88 + (2.40)^2/8.40 + (1.16)^2/7.84 + (3.88)^2/5.88 + (3.82)^2/8.82$$
$$+ (3.40)^2/12.60 + (1.24)^2/11.76 + (.82)^2/8.82 + (4.70)^2/6.30$$
$$+ (1.0)^2/9.0 + (2.40)^2/8.40 + (1.30)^2/6.30$$

उपरोक्त का मान निकालने पर काई-वर्ग =

$$.774 + .686 + .172 + 2.560 + 1.654 + .917 + 1.538 + 0.76 + .505$$
$$+ .111 + .686 + .268 = 12.948$$

सार्थकता एवं निष्कर्ष

इस उदाहरण में, $df = (4-1)(3-1) = 6$।

तालिका-D में *df* 6 तथा .05–स्तर पर काई-वर्ग 12.59 है। उदाहरण में प्राप्त मान 12.948 है जो तालिका-मान से अधिक है। अत: H_o कि "बुद्धि शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित नहीं करती" अथवा बुद्धि का शैक्षिक उपलब्धि के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है" को अस्वीकार किया जाता है तथा यह निष्कर्ष स्थापित किया जाता है कि बुद्धि शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित करती है अथवा वे दोनों एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं।

3.14 सांख्यिकीय विश्लेषण के प्रमुख आधार

प्रस्तुत अध्याय में सांख्यिकीय विश्लेषण की प्रक्रिया से संबंधित कुछ अन्य बातों की व्याख्या की गई है। ऐसा करना आवश्यक प्रतीत होता है क्योंकि सांख्यिकीय विश्लेषण के ये प्रमुख आधार हैं:

1. मूलभूत प्रक्रिया
2. अप्रतिष्ठेय उपकल्पना
3. सार्थकता परीक्षा
4. त्रुटियों के प्रकार (सार्थकता के संदर्भ में)

5. सांख्यिकीय परीक्षण प्रतिमान
6. प्राचलीय परीक्षण
7. अप्राचलीय परीक्षण।

नोट

1. मूलभूत प्रक्रिया

प्रत्येक प्रयोगात्मक अनुसंधान के अन्तर्गत सांख्यिकीय विश्लेषण की प्रक्रिया में निम्नलिखित पद-क्रम होता है–

1. सांख्यिकीय उपकल्पना अथवा अप्रतिष्ठेय (null) उपकल्पना का उल्लेख।
2. अप्रतिष्ठेय उपकल्पना की अस्वीकृति हेतु एक उपयुक्त सांख्यिकीय परीक्षा (test) (जैसे टी-टेस्ट अथवा एफ-टेस्ट अथवा कोई अन्य परीक्षा) का चयन।
3. अप्रतिष्ठेय उपकल्पना की अस्वीकृति हेतु सार्थकता के स्तर (जैसे .01 अथवा .05) का चयन एवं उल्लेख।
4. पद-2 के अन्तर्गत निर्धारित सांख्यिकीय परीक्षा-मान (Value of statistical test) का आगणन (computation)A
5. पद-4 के अन्तर्गत प्राप्त सांख्यिकीय मान की तत्संबंधी तालिकागत सांख्यिकीय मान से तुलना करना तथा यह निर्णय लेना कि उसके आधार पर अप्रतिष्ठेय उपकल्पना को अस्वीकार किया जाना चाहिये अथवा नहीं।
6. निष्कर्ष-निरूपण अनुसंधान उपकल्पना के संबंध में।

2. अप्रतिष्ठेय उपकल्पना

प्रयोगात्मक शोध-सामग्री के विश्लेषण का प्रथम द्वार, जहाँ से प्रवेश करना होता है, अप्रतिष्ठेय उपकल्पना (null hypothesis) है। इसका आविष्कार दिवंगत वैज्ञानिक गणितज्ञ रोनाल्ड फिशर ने किया था। अनुसंधान उपकल्पना जिसे वैज्ञानिक उपकल्पना (scientific hypothesis) अथवा मौलिक उपकल्पना (substantive hypothesis) भी कहते हैं तथा जो एक सकारात्मक एवं व्यावहारिक (operational) कथन मात्र होता है तथा जिसमें दो चरों के बीच एक संबंध विशेष की कल्पना निहित रहती है, को अप्रतिष्ठेय उपकल्पना में बदलना होता है क्योंकि अप्रतिष्ठेय उपकल्पना का ही सांख्यिकीय परीक्षण सम्भव होता है। उसी की अस्वीकृति के आधार पर अनुसंधान उपकल्पना के विषय में कुछ कहना अथवा निष्कर्ष निकालना सम्भव होता है। ऐसी कोई भी सांख्यिकीय विधि नहीं है जिसके आधार पर अनुसंधान उपकल्पना को सीधे-सीधे स्वीकार अथवा अस्वीकार किया जा सके तथा उसके संबंध में निष्कर्ष-निरूपण किया जा सके। केवल अप्रतिष्ठेय उपकल्पना के प्रतिख्यान (rejection) अथवा अप्रतिख्यान (non-rejection) के आधार पर ही अनुसंधान उपकल्पना के सम्बन्ध में निष्कर्ष-स्थापना की जाती है। इसी कारण अनुसंधान उपकल्पना को विकल्प उपकल्पना (alternative hypothesis) H_1 भी कहा जाता है। यदि अप्रतिष्ठेय उपकल्पना (H_0) अस्वीकृत हो जाती है तो विकल्प उपकल्पना (H_1) अर्थात्, अनुसंधान उपकल्पना को स्वीकार कर लिया जाता है। इसी प्रकार यदि अप्रतिष्ठेय उपकल्पना (H_0) को अस्वीकार नहीं किया जा सकता तो अनुसंधान उपकल्पना अर्थात् विकल्प उपकल्पना (H_1) को अस्वीकार किया जाता है। अप्रतिष्ठेय (H_0) एवं अनुसंधान (H_1) उपकल्पनाओं के बीच इस प्रकार का प्रतीप (inverse) संबंध रहता है। अनुसंधान

आकल्प की रचना करते समय आरंभ में ही इन दोनों प्रकार की उपकल्पनाओं का उल्लेख करना आवश्यक होता है।

नोट

अप्रतिष्ठेय उपकल्पना को उस स्थिति में अस्वीकार किया जाता है जब प्राप्त सांख्यिकीय मान (टी.एफ, काई-वर्ग आदि) पूर्वनिर्धारित सार्थकता-स्तर पर तत्संबंधी तालिका में दिये गये मान के बराबर अथवा उससे अधिक होता है। इस प्रकार भ0 ही उपलब्ध शोध-सामग्री के परीक्षण का एकमात्र आधार होता है।

3. सार्थकता-परीक्षा

सार्थकता-परीक्षा का उद्देश्य यह जानना होता है कि सांख्यिकीय परीक्षा के आधार पर जो परिणाम, जो सांख्यिकीय मान प्राप्त हुआ है, वह केवल संयोगवश तो नहीं है अर्थात् वह उस चर के कारण है, उस उपचार के कारण है, आश्रित चर पर जिसके प्रभाव का अध्ययन किया जा रहा है। जब H_0 को किसी सार्थकता-स्तर पर अस्वीकार कर दिया जाता है तो यह स्वीकार किया जाता है कि प्राप्त परिणाम अध्ययनगत स्वतन्त्र चर अथवा उपचार के कारण उत्पन्न हुआ है। वह केवल संयोग मात्र नहीं है। दूसरे शब्दों में, प्राप्त परिणाम वास्तविक, यथार्थ (real) है अर्थात् स्वतन्त्र चर के प्रभावस्वरूप उत्पन्न हुआ है, ऐसा माना जाता है। इस प्रकार अग्रलिखित तार्किक क्रम सार्थकता-परीक्षा में निहित रहता है:

H_0 अस्वीकृत → परिणाम सार्थक → परिणाम वास्तविक अर्थात् प्रयोगाधीन उपचार के प्रभाव के कारण, संयोगवश नहीं,

H_0 अस्वीकृत नहीं → परिणाम सार्थकताविहीन → परिणाम संयोगमात्र, अर्थात् प्रयोगाधीन उपचार का कोई प्रभाव नहीं,

इस संदर्भ में सार्थकता-स्तर की संकल्पना को अच्छी तरह समझना अत्यन्त आवश्यक है। इसे ग्रीक भाषा के वर्ण अल्फा (α) के नाम से जाना जाता है। इसका अर्थ होता है। "वह सम्भावना जिसका शोधकर्ता अप्रतिष्ठेय उपकल्पना को अस्वीकार करने हेतु चयन करता है।" उदाहरण हेतु .05 स्तर को इस उद्देश्य से चुना जाता है तो इसका अर्थ होगा कि प्राप्त सांख्यिकीय मान (टी, एफ, काई आदि) के घटित होने की संभाविता (probability) यदि .05 (पाँच प्रतिशत) अथवा उससे कम है तो H_0 को अस्वीकार किया जायेगा। अत: जैसे ही सार्थकता-स्तर का निर्धारण हो जाता है उसी समय यह भी निश्चित हो जाता है कि अप्रतिष्ठेय उपकल्पना (H_0) को कब अस्वीकार किया जायेगा। इस प्रकार सार्थकता-स्तर वह कसौटी है, वह आधार है जिसका प्रयोग H_0 को अस्वीकार करने में किया जाता है। अल्फा अथवा सार्थकता-स्तर समसंभाविता-वक्र की आधार रेखा पर स्थित एक ऐसा विभाजन बिन्दु होता है जिससे नीचे वे सब समसंभावितायें होती हैं जो H_0 को अस्वीकार करती हैं तथा ऊपर वे जो उसे स्वीकार नहीं करतीं।

अप्रतिष्ठेय उपकल्पना को अस्वीकार करने हेतु साधारणतया .05 तथा .01 स्तरों का प्रयोग किया जाता है। परन्तु इनका चयन अधिकतर स्वच्छन्दत: (मनमाने ढंग से) किया जाता है। नियमानुसार सार्थकता-स्तर का चयन वैज्ञानिक एवं तर्कपूर्ण होना चाहिए। साथ ही उसका चयन शोध-सामग्री एकत्र करने से पहले ही किया जाना चाहिए क्योंकि न्यादर्श-परिभाषा (size) एक ऐसा तत्व है जिसका इस निर्णय में ध्यान रखना आवश्यक होता है। अत: शोधकर्ता को समस्या के स्वरूप को ध्यान में रखते हुए परिणामों के महत्त्व एवं वांछनीय शुद्धता के आधार पर अल्फा का चयन करना चाहिए। यह निर्णय लेते समय कुछ इस प्रकार के प्रश्नों के उत्तर देने चाहिए:

1. परिणाम कितने महत्त्वपूर्ण हैं?
2. अशुद्ध परिणामों में कितना जोखिम (हानि) होने की संभावना है?
3. कितनी शुद्धता (accuracy) अनिवार्य है?
4. परिस्थितियों के अनुसार संयोग-त्रुटि (chance error) के घटित होने की क्या संभावना है? आदि

नोट

4. त्रुटियों के प्रकार

चाहे अनुसंधान का आकल्प किसी भी प्रकार का हो तथा अल्फा-स्तर भी कोई हो, अप्रतिष्ठेय उपकल्पना (H_0) को अस्वीकार करने अथवा अस्वीकार न करने में त्रुटि होना स्वाभाविक है। सार्थकता-स्तर का निर्णय करते ही इन त्रुटियों का भी निर्धारण हो जाता है। अप्रतिष्ठेय उपकल्पना के अस्वीकृत होने एवं अस्वीकृत न होने पर दो प्रकार की त्रुटियाँ हुआ करती हैं। इन्हें टाइप-I तथा टाइप–II प्रकार की त्रुटियाँ कहते हैं। टाइप–I त्रुटि का अर्थ होता है H_0 की अशुद्ध अथवा गलत (incorrect) अस्वीकृति (rejection): अर्थात् H_0 सत्य होते हुये भी उसे अस्वीकार कर देना। दूसरे शब्दों में, इसका अर्थ है कि यह निष्कर्ष निकालना कि स्वतन्त्र चर अथवा उपचार का आश्रित चर पर प्रभाव पड़ा है जबकि वास्तव में कोई प्रभाव नहीं पड़ा है क्योंकि आश्रित चर में उत्पन्न अथवा उपलब्ध परिवर्तन केवल संयोगवश हो सकता है। दूसरी टाइप–II त्रुटि का अर्थ है H_0 की अशुद्ध अथवा गलत स्वीकृति, अर्थात् H_0 को स्वीकार कर लेना जबकि उसे अस्वीकार किया जाना चाहिए था। दूसरे शब्दों में, यह निष्कर्ष निकालना कि स्वतन्त्र चर का आश्रित चर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, जबकि प्रभाव पड़ता है, कोई संबंध नहीं है, जबकि संबंध है। टाइप–I त्रुटि की संभावित सार्थकता-स्तर पर निर्भर करती है। यदि सार्थकता का स्तर बड़ा हो (जैसे .01 के स्थान पर .05) तो H_0 के अशुद्ध रूप से अस्वीकार होने की संभावना बढ़ जाती है अर्थात् टाइप–I त्रुटि की संभावना बढ़ जाती है। अत: टाइप–I त्रुटि सार्थकता-स्तर में ही निहित रहती है तथा उसे अल्फा (α) ही कहा जाता है। टाइप–II त्रुटि को बीटा (β) कहा जाता है। इन दोनों त्रुटियों की सीमा न्यादर्श के परिमाण पर भी निर्भर करती है। इसलिए ऐसा कहा जाता है कि अल्फा (α) तथा N (न्यादर्श-परिणाम) दोनों के संबंध में निर्णय अनुसंधान के प्रारम्भ में, नियोजन के समय ही लिया जाना चाहिए। सीगल का कहना है कि "यदि हम दोनों प्रकार की त्रुटियों की संभावना को कम करना चाहते हैं तो हमें न्यादर्श का परिमाण (N) बढ़ाना चाहिए।"

दोनों प्रकार की त्रुटियों के बीच एक विशिष्ट प्रकार का सम्बन्ध होता है। यदि एक प्रकार की त्रुटि को कम करने का प्रयास किया जाता है तो दूसरे प्रकार की त्रुटि बढ़ जाती है। इसलिए शोधकर्ता को दोनों प्रकार की त्रुटियों के बीच एक समझौता करके अधिक से अधिक सन्तुलन स्थापित करने का प्रयास करना चाहिये। इसी को सांख्यिकीय परीक्षा की शक्ति (power) कहते हैं। सांख्यिकीय परीक्षा (statistical test) की शक्ति का अर्थ होता है "H_0 की शुद्ध (सही-सही) अस्वीकृति" जिसे एक सूत्र के माध्यम से इस प्रकार व्यक्त किया जाता है–

शक्ति (Power) = $1 - \beta$ (टाइप–II त्रुटि)

क्योंकि टाइप–II त्रुटि की सम्भावना न्यादर्श के छ के बढ़ने पर कम होती है, यह भली-भाँति समझा जा सकता है कि न्यादर्श का परिमाण बड़ा कर देने पर सांख्यिकीय परीक्षा की शक्ति भी बढ़ जाती है।

5. सांख्यिकीय परीक्षा का प्रतिमान

सार्थकता ज्ञात करने अथवा उपकल्पना की परीक्षा करने हेतु किसी एक सांख्यिकीय परीक्षा (टी-टेस्ट अथवा एफ-टेस्ट आदि) का प्रयोग किया जाता है। इनमें से प्रत्येक सांख्यिकीय विधि अथवा परीक्षा एक विशिष्ट सांख्यिकीय प्रतिमान (statistical model) पर आधारित होती है। जैसे–टी-टेस्ट का आधार टी-वितरण प्रतिमान होता है। इसी प्रकार एफ-टेस्ट का आधार एफ वितरण होता है। इसी प्रकार के अनेक सांख्यिकीय प्रतिमान अथवा परीक्षाएँ हैं जिनका प्रयोग विभिन्न परिस्थितियों में उपकल्पनाओं की परीक्षा हेतु किया जाता है। अत: यह समस्या उत्पन्न हो जाती है कि किसी एक परिस्थिति में किस सांख्यिकीय परीक्षा का प्रयोग किया जाये। कई विकल्प सम्भव होने पर किसी एक को चुनने के पीछे एक ठोस तर्क एवं विचार होना चाहिए।

नोट

एक सबसे महत्त्वपूर्ण नियम यह है कि उसी सांख्यिकीय परीक्षा का प्रयोग करना चाहिए जो उस परिस्थिति में सबसे अधिक शक्तिशाली हो अर्थात् जिसमें अप्रतिष्ठेय उपकल्पना की अशुद्ध अस्वीकृति की सम्भावना कम तथा शुद्ध अस्वीकृति से सम्भावना अधिक हो। यही सांख्यिकीय परीक्षा की शक्ति कहलाती है। अत: सांख्यिकीय प्रतिमान के चयन में एक बात ध्यान में रखने की उसकी शक्ति होती है। इसके अतिरिक्त अन्य कुछ बातों का भी ध्यान रखना होता है, जैसे–न्यादर्श के चयन की विधि, जनसंख्या की विशेषताएँ, मापांकों का प्रकार, माप के लिए प्रयुक्त किया गया पैमाना आदि। इन सबसे सम्बन्धित प्रत्येक सांख्यिकीय परीक्षा की कुछ शर्तें होती हैं। ये शर्तें पूरी होने पर ही उस परीक्षा का प्रयोग किया जा सकता है। कुछ सांख्यिकीय परीक्षाएँ ऐसी हैं जिनकी शर्तें बहुत जटिल हैं तथा इसीलिए वे अधिक शक्तिशाली होती हैं। दूसरी ओर कुछ परीक्षाओं की शर्तें या तो हैं ही नहीं और यदि हैं तो बहुत साधारण-सी हैं। अत: ये परीक्षाएँ अधिक शक्तिशाली नहीं होतीं। उनके आधार पर जो परिणाम प्राप्त होते हैं, वे बहुत अधिक शुद्ध एवं वैध न होकर सामान्य स्तर के होते हैं, परन्तु यह भी स्मरण रखना चाहिए कि शक्तिशाली परीक्षाओं की शर्तें, उनकी आधारभूत अभिधारणाएँ यदि पूरी नहीं होतीं तो उन परिस्थितियों में उनके परिणाम कम शक्तिशाली परीक्षाओं के परिणामों से भी कम शुद्ध हो सकते हैं। अत: महत्त्वपूर्ण बात यह देखने की है कि प्रस्तुत परिस्थितियों में कौन-सी परीक्षा अधिक उपयुक्त होगी। कोई सांख्यिकीय परीक्षा ऐसी नहीं है जो सभी परिस्थितियों में शक्तिशाली बनी रहे।

शक्ति एवं आधारभूत अभिधारणाओं (assumptions) के दृष्टिकोण से दो प्रकार के सांख्यिकीय प्रतिमान हैं, जिनका प्रयोग किया जाता है। ये हैं–

(i) प्राचलीय (parametric)

(ii) अप्राचलीय (non-parametric)

प्राचलीय परीक्षाओं के अन्तर्गत टी-टेस्ट, एफ-टेस्ट तथा उनके विभिन्न रूप आते हैं। ये परीक्षाएँ अधिक शक्तिशाली होती हैं, परन्तु इनकी शर्तें भी बहुत कठोर हैं। अत: ये तभी शक्तिशाली होती हैं जब उनकी ये शर्तें पूरी होती हों। दूसरी ओर अप्राचलीय परीक्षाएँ हैं जिनकी नाम मात्र की ही कुछ शर्तें होती हैं, कुछ में तो प्राचल (parameter) सम्बन्धी कोई भी शर्त नहीं होती। प्रत्येक की शर्तें एवं आधारभूत अभिधारणाएँ आगे वर्णित की गई हैं।

6. प्राचलीय परीक्षाओं की शर्तें

बहुत से लेखकों के अनुसार अधिकतर प्राचलीय परीक्षाओं की शर्तें निम्नलिखित होती हैं–

नोट

1. न्यादर्श का चयन उस समग्र जनसंख्या में से किया गया हो जिसमें चरों का वितरण सम (normal) हो। इस सम्बन्ध में ननली का कहना है कि इस शर्त के पूरा न होने से तब तक कोई बड़ी समस्या उत्पन्न नहीं होती जब कि मापांकों का वितरण, सम-वितरण से बहुत अधिक भिन्न (जैसे–J–oØ) न हो। ननली का यह भी कहना है कि यदि यह नियम भंग भी होता है तो भी उससे कोई बहुत बड़ी हानि नहीं होती क्योंकि टी-टेस्ट तथा एफ-टेस्ट अत्यधिक शक्तिशाली माने जाते हैं तथा "सम-वितरण की अभिधारणा के पूरा न होने का परिणामों पर नाममात्र का ही प्रभाव पड़ता है।"
2. दूसरी अभिधारणा (assumption) वितरण की सजातिता (homogeneity) की है। इसका अर्थ होता है कि सभी तुलनीय समूहों का अन्तः समूह विचरण समान होना चाहिए। एफ-टेस्ट के प्रयोग की स्थिति में तो यह अत्यन्त आवश्यक समझा जाता है। ऐसा न होने पर एफ-टेस्ट के परिणाम की सार्थकता उभर कर नहीं आयेगी जबकि वास्तव में समूहों के बीच सार्थक अन्तर होगा।

   उपरोक्त दोनों अभिधारणाओं के सम्बन्ध में **कर्लिंगर** बोनू (1960), **एण्डरसन** (1961), **गेम्स** तथा **लुकास** (1966) आदि का कहना है कि "सम-वितरण एवं सजातिता पर आवश्यकता से अधिक बल दिया गया है।"
3. एक तीसरी अभिधारणा यह है कि चरों पर उपलब्ध मापांक अखण्ड (continuous) एवं सम-अन्तराली (equal interval) होने चाहिये ताकि गणितीय प्रक्रियाओं का सम्पादन सम्भव हो सके।
4. एक चौथी अभिधारणा जिसका उल्लेख सीगल ने किया है, यह है कि समूहों में इकाइयों का वितरण एवं समग्र जनसंख्या में से उनका चयन सम-सम्भाविक विधि द्वारा किया जाना चाहिए, अर्थात् निरीक्षण (observations), मापन आदि स्वतन्त्र होने चाहिए।

यदि ये शर्तें अथवा अभिधारणाएँ किसी शोध-परिस्थिति में पूरी नहीं होती तो प्राचलीय परीक्षाओं के विषय में यह कहना है कि वे अधिक शक्तिशाली होती हैं, उचित नहीं होगा। सम्भवतः यह कहना भी कठिन होगा कि अमुक परीक्षा की शक्ति क्या है। उस स्थिति में शोध के परिणामों की शुद्धता के विषय में भी अनुमान लगा सकना कठिन होगा। साथ ही उस स्थिति में उपकल्पना-परीक्षण की सम्भाविता उल्लेख भी अर्थपूर्ण नहीं होगा।

7. अप्राचलीय परीक्षाओं की शर्तें

अप्राचलीय परीक्षाएँ मापांकों के वितरण के सम्बन्ध में सम-वितरण जैसी किसी अभिधारणा का बन्धन नहीं लगातीं। अतः इस दृष्टिकोण से उन्हें वितरणमुक्त (distribution-free) परीक्षाएँ कहा जाता है। इसी प्रकार मापांकों की अखण्डता एवं उनके सम-अन्तराली होने की शर्त भी ये नहीं लगातीं। इन परीक्षाओं का प्रयोग बहुत छोटे न्यादर्शों की स्थिति में भी किया जा सकता है। अतः उन्हें लघु-न्यादर्श परीक्षाएँ भी कहा जाता है। बहुत छोटे न्यादर्श की स्थिति में प्राचलीय परीक्षाओं का प्रयोग नहीं किया जा सकता।

अप्राचलीय परीक्षाओं का प्रयोग निम्नलिखित परिस्थितियों में किया जाता है–

(i) जब शोध-सामग्री अर्थात् मापांक (जैसे–I, II, III) अथवा अनुस्थिति (तंदो) के रूप में हों।

(ii) जब मापांकों का वितरण अत्यन्त विषम (skewed) हो अथवा वितरण कैसा होगा, अनुमान लगा सकना सम्भव न हो।

(iii) जब न्यादर्श का परिमाण बहुत छोटा हो।

नोट

(iv) जब शोध-सामग्री खण्ड मापांकों में न होकर केवल प्रवृत्तियों के रूप में उपलब्ध हों।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि सांख्यिकीय परीक्षा का चयन करते समय उपरोक्त बहुत-सी बातों को ध्यान में रखना पड़ता है। विशेष रूप से–

(i) परीक्षा की शक्ति।

(ii) परीक्षा की आधारभूत अभिधारणाएँ।

(iii) उपलब्ध मापांकों का स्वरूप, आदि।

आगामी कुछ अध्यायों में महत्त्वपूर्ण प्राचलीय एवं अप्राचलीय परीक्षाओं का वर्णन किया गया है। उनका प्रयोग कहाँ तथा कैसे किया जाता है, इसका विस्तार से वर्णन किया गया है।

3.15 प्राचलीय परीक्षाः टी-टेस्ट

प्राचलीय परीक्षाओं के अन्तर्गत टी-टेस्ट तथा एफ-टेस्ट आते हैं। इस अध्याय में केवल टी-टेस्ट का वर्णन किया गया है।

यदि स्वतन्त्र चर पर केवल समूहों की रचना की गई है अर्थात् स्वतन्त्र चर का प्रहस्तन (manipulation) केवल दो श्रेणियों में किया गया है तथा केवल इन दो समूहों की ही तुलना आश्रित चर पर की जानी है तो उस स्थिति में टी-टेस्ट का प्रयोग किया जाता है। टी-टेस्ट प्राचलीय परीक्षा है तथा इसमें एक ही स्वतन्त्र चर होता है जिसका दो या दो से अधिक श्रेणियों में प्रहस्तन किया जाता है। इस प्रकार के अनुसंधान आकल्पों को "एकल चर आकल्प" (single variable designs) कहते हैं।

इस दृष्टिकोण से टी-टेस्ट दो प्रकार के होते हैं–

(i) स्वतन्त्र समूहाधारी, तथा

(ii) सह-सम्बन्धी अथवा पुनर्मापाधारी।

स्वतन्त्र समूह की स्थिति में दोनों समूहों की इकाइयाँ भिन्न होती हैं। सह-सम्बन्धी समूहों की स्थिति में इकाइयों के एक ही समूह को दो उपचारों के आधीन रखा जाता है। यदि इकाइयों को समानीकृत करके दोनों समूहों में वितरित किया जाता है तो समूहों की इकाइयाँ भिन्न होते हुए भी उन्हें सह-सम्बन्धी ही समझा जाता है। टी-टेस्ट का प्रयोग दोनों ही स्थितियों में किया जा सकता है, परन्तु दोनों के सूत्र अलग-अलग हैं।

एक दूसरे दृष्टिकोण से उपरोक्त दोनों प्रकार की टी-परीक्षाओं के दो रूप होते हैं–

(i) लघु-न्यादर्शीय तथा

(ii) वृहद्-न्यादर्शीय।

इन दोनों स्थितियों में भी अलग-अलग सूत्रों का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार टी-परीक्षा के कुल चार प्रकार होते हैं–

(i) वृहद्-न्यादर्श स्वतंत्र समूह,

(ii) वृहद् न्यादर्श सह-सम्बन्धी समूह,

(iii) लघु-न्यादर्श स्वतंत्र समूह,

(iv) लघु न्यादर्श सह-सम्बन्धी समूह।

प्रत्येक का अलग-अलग वर्णन आगे किया गया है।

1. वृहद् न्यादर्श स्वतंत्र समूह टी-टेस्ट

इस परीक्षा का प्रयोग वहाँ किया जाता है जहाँ समूहों की संख्या दो हो, समूह स्वतंत्र हों, न्यादर्श वृहद् हो तथा प्राचलीय परीक्षाओं की शर्तें पूरी होती हों। इसमें समूहों की तुलना उनके मध्यमानों के अन्तर के आधार पर की जाती है। उपकल्पना, जिसका परीक्षण किया जाता है वह इस प्रकार की होती है, "समूहों के मध्यमानों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।" इसके लिये मध्यमानों के अन्तर को टी-मान अथवा काष्ठा-अनुपात (C.R. Value) में परिवर्तित किया जाता है। प्राप्त टी अथवा काष्ठा अनुपात की तुलना पूर्वचयनित सार्थकता-स्तर पर (.05 अथवा .01) टी-तालिका में दिये गये मान से की जाती है। तालिका में टी का मान देखते समय स्वातन्त्र्यांशों (degrees of freedom) को भी ध्यान में रखना होता है। यदि प्राप्त टी-मान उस सार्थकता-स्तर पर तथा उतने स्वातन्त्र्यांश पर तालिका मान के बराबर अथवा उससे अधिक होता है तो अप्रतिष्ठेय उपकल्पना (H_o) को अस्वीकार कर दिया जाता है और विकल्प उपकल्पना (H_1) को स्वीकार किया जाता है। यदि यह प्राप्त मान तालिका मान से कम पाया जाता है तो H_o को अस्वीकार न करके H_1 को अस्वीकार किया जाता है। इस प्रकार, अप्रत्यक्ष रूप से अर्थात् H_o को अस्वीकार न करके अनुसंधान-उपकल्पना के विषय में निष्कर्ष निकाला जाता है। नीचे दिये गये उदाहरण द्वारा यह स्पष्ट हो जायेगा:

विश्लेषण आकल्प–उच्च उपलब्धि प्रेरणा (ach. motivation) वाले एवं निम्न उपलब्धि प्रेरणा वाले 11 वर्षीय बालकों के दो स्वतन्त्र समूहों की रचना करके उनकी शैक्षिक उपलब्धि (परीक्षा के अंकों) के अलग-अलग मध्यमान तथा विचलन मान निकाले जाते हैं।

निम्न उदाहरण की तालिका में सामग्री को प्रस्तुत किया गया है–

तालिका 3.11 उपलब्धि-प्रेरणा एवं शैक्षिक-उपलब्धि में सम्बन्ध

	समूह-I (निम्न प्रेरणा)	**समूह-II (उच्च प्रेरणा)**
मध्यमान	88.00	90.5
वि.मान	7.81	11.56
सं. (N)	83	97

यह वृहद् न्यादर्श स्वतन्त्र समूह का उदाहरण है। इसमें काष्ठा अनुपात (C.R. अथवा टी) निकालने की प्रक्रिया इस प्रकार की होती है–

पदक्रम 1: प्रत्येक मध्यमान की प्र.त्रुटि (S.E.) निकालिये। इसका सूत्र है–

$$S.E. = \frac{S.D.}{\sqrt{N}}$$

अतः $$S.E._1 = \frac{7.81}{\sqrt{83}} = .857$$

इसी प्रकार, $$S.E._2 = \frac{11.56}{\sqrt{95}} = 1.86$$

नोट

पदक्रम 2: अब इनके आधार पर $S.E._D$ (S.E. of difference) निकालिये। इसका सूत्र है–

$$S.E._D = \sqrt{[(S.E._1)^2 + (S.E._2)^2]} \quad \text{...सूत्र (1)}$$

इस सूत्र के अनुसार, $S.E._D = \sqrt{(.857)^2 + (1.96)^2]}$

$= 1.462$

पदक्रम 3: अब टी का मान ज्ञात कीजिये। इसका सूत्र है–

$$t = \frac{D}{S.E._D} = \frac{1.70}{1.462} = 1.162$$

पदक्रम 4: सार्थकता की जाँच–इसके लिए 196 कि तथा .05 स्तर पर तालिका (B) में दिये गये टी मान (1.97) के साथ प्राप्त टी-मान की तुलना करनी होगी। स्पष्ट है कि प्राप्त टी-मान 1.162 तालिकागत टी मान 1.97 से कम है। अत: यह अन्तर .05 स्तर पर सार्थक नहीं है। इस स्तर पर सार्थक नहीं है तो .01 स्तर पर भी सार्थक नहीं होगा। अत: H_0 को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। परिणामस्वरूप H_1 (अन्तर होता है) को अस्वीकार किया जाता है।

पदक्रम 5:

निष्कर्ष–अत: यह निष्कर्ष निकला कि दोनों समूहों के मध्यमानों में वास्तविक अन्तर नहीं है अर्थात् उपलब्धि-प्रेरणा तथा शैक्षिक उपलब्धि में सम्भवत: कोई सम्बन्ध नहीं होता।

2. वृहद्-न्यादर्श सह-सम्बन्धी समूह टी-टेस्ट

उदाहरण–1 में दी गई विधि का प्रयोग वहाँ किया जाता है जहाँ समूह स्वतंत्र होते हैं, परन्तु जब समूह सह सम्बन्धी अथवा समानीकृत (matched) होते हैं तो निम्नलिखित विधि का प्रयोग किया जाता है। इसमें प्रमाप त्रुटि (S.E.) निकालने का सूत्र तो उदाहरण–1 की भाँति ही रहता है, परन्तु $S.E._D$ निकालने का सूत्र निम्नलिखित होता है–

$$S.E._D = (S.E._1^2 + S.E._2^2 - 2r_D S.E._1 S.E._2) \quad \text{.....सूत्र (2)}$$

अथवा

$$\sqrt{\left[\frac{1}{N}\left(S.D._2^2 - 2r_D\right)(S.D._1 \times S.D._2)\right]}$$

इसी प्रकार टी का मान निकालने का सूत्र भी पूर्ववत् ही रहता है अर्थात्

$$t = \frac{D}{S.E._D}$$

नीचे दिये गये उदाहरण द्वारा इसे स्पष्ट किया गया है।

उदाहरण–2: ग्यारह वर्षीय 625 बालकों के एक समूह को एक व्यक्तित्व सन्तुलन परीक्षा दी गई। इस पर उनके मध्यमान एवं प्र.वि. (S.D.) क्रमश: 96.7 तथा 8.0 पाये गये। इसके बाद उन्हें दो माह तक सामूहिक परामर्श उपचार दिया गया। दो माह पश्चात् उन्हें पुन: वही सन्तुलन परीक्षा दी गई। इस बार उनके सन्तुलन का मध्यमान 106.7 तथा प्र.वि. 10.0 पाया गया। दोनों बार की सन्तुलन परीक्षाओं के बीच सह-सम्बन्ध 0.52 था। क्या सामूहिक परामर्श उपचार प्रभावशाली था?

इस प्रश्न का उत्तर प्राप्त करने के लिये दोनों बार की सन्तुलन परीक्षा के मध्यमानों के अन्तर की सार्थकता की परीक्षा करनी होगी, क्योंकि दोनों समूह सह-सम्बन्धी हैं। अत: उनके मध्यमानों के अन्तर की S.E.D निकालने के लिये सूत्र-2 का प्रयोग करना होगा। सम्पूर्ण प्रक्रिया इस प्रकार होगी–

नोट

1. $S.E._1$ (प्रथम बार के मध्यमान की) $= \frac{S.D.}{\sqrt{N}} = \frac{8}{\sqrt{625}} = \frac{8}{25} = .32$

2. $S.E._2$ (दूसरी बार के मध्यमान की) $\frac{S.D.}{\sqrt{N}} = \frac{10}{\sqrt{625}} = \frac{10}{25} = .40$

3. $S.E._D = \sqrt{(S.E._1^2 + S.E._2^2 - 2r_{12} S.E._1 S.E._2)}$

$= \sqrt{[(.32)^2 + (.04)^2 - 2 \times .52 \times .32 \times .40]}$

$= .3596$

दूसरे विकल्प-सूत्र का प्रयोग करने पर भी $S.E._D$ का यही मान आयेगा।

4. $t = \frac{D}{S.E._D} = \frac{106.7 - 96.7}{.3596} = \frac{10}{.3596} = 27.80$

यह टी-मान प्रत्येक स्तर पर तालिका-B में 624 *df* (N – 1) पर दिये गये मान से बहुत अधिक है। अत: H_0 को अस्वीकार किया जाता है तथा यह निष्कर्ष निकलता है कि सामूहिक परामर्श उपचार का सन्तुलन पर निश्चित प्रभाव पड़ता है।

स्वातंत्र्यांशों का आगणन

यह स्मरण रखना आवश्यक है कि स्वतन्त्र समूहों की स्थिति में स्वातंत्र्यांशों का आगणन $n_1 + n_2 - 2$ सूत्र के आधार पर किया जाता है। इसका कारण यह है कि सह-सम्बन्धी तथा समानीकृत समूहों की स्थिति में एक ही व्यक्ति की परीक्षा दो बार होती है, अत: उनके मापांकों के बीच सह-सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। दूसरी बार की परीक्षा पर प्राप्त होने वाले मापांकों के परिवर्तन की स्वतंत्रता घट जाती है क्योंकि समूह वही रहने के कारण समूह की दूसरी बार की उपलब्धि पहली बार की उपलब्धि से बिल्कुल भिन्न, स्वतन्त्र नहीं हो सकती। अत: पहली बार जो मापांक आया है उससे दूसरी बार का मापांक सर्वश: स्वतंत्र नहीं हो सकता। इसलिये एक व्यक्ति के दोनों बार के मापांकों को दो *df* न देकर एक *df* ही दी जाती है। इस प्रकार सह-सम्बन्धी समूहों की स्थिति में *df* निकालने के लिये N – 1 सूत्र का ही प्रयोग किया जाता है।

3. लघु न्यादर्श स्वतंत्र समूह टी-टेस्ट

यदि दोनों स्वतंत्र समूहों की इकाइयों का योग 30 से कम हो तो उसे लघु न्यादर्श समझा जाता है। इस स्थिति में S.D. तथा S.E.D निकालने के सूत्र भिन्न होते हैं। शेष प्रक्रिया पूर्ववत रहती है। S.D. तथा S.E.D निकालने के सूत्र इस प्रकार होते हैं–

(i) $S.D. = \sqrt{\left(\frac{\Sigma x^2 + \Sigma y^2}{N_1 + N_2 - 2}\right)}$

नोट

जिसमें $\sum x^2$ तथा $\sum y^2$ क्रमशः दोनों समूहों के अंकों के अपने-अपने मध्यमानों से लिए गये अन्तरों के वर्गों का योग है।

$$\text{(ii) S.E.}_D = \text{S.D.}\sqrt{\left(\frac{N_1 + N_2}{N_1 \times N_2}\right)}$$

आगणन की सम्पूर्ण प्रक्रिया का स्पष्टीकरण आगे दिये गये उदाहरण द्वारा किया गया है।

तालिका 3.12

Group X			Group Y		
X	x	x^2	Y	y	y^2
110	4.5	20.25	115	2.0	4.0
113	6.5	42.25	113	−1.0	1.0
95	−10.5	110.25	109	−4.0	16.0
105	−0.5	0.25	113	−1.0	1.0
111	5.5	30.25	117	+4.0	16.0
97	−8.5	72.25			
113	6.5	42.25			
108	−2.5	12.25			
Sum = 844		330	565		38
N 8		Σx^2	5		Σy^2
Mean = 105.5			Mean = 113.0		

Steps:

$$\text{1. Pooled S.D.} = \sqrt{\left(\frac{\Sigma x^2 + \Sigma y^2}{N_1 + N_2 - 2}\right)} = \sqrt{\left(\frac{330 + 38}{8 + 5 - 2}\right)} = 5.78$$

$$\text{2. S.E.} = \text{Pooled S.D.} \times \left(\frac{N_1 + N_2}{N_1 \times N_2}\right) = 5.78 \times \sqrt{\left(\frac{13}{40}\right)} = 3.302$$

$$\text{3. C.R. } (t) = \frac{\text{Diff.}}{3.302} = \frac{7.5}{3.302} = 2.271 \text{ for } df \text{ 11}$$

निष्कर्ष: तालिका–B में 11 df $(n_1 + n_2 - 2)$ तथा .05 स्तर पर टी का मान है 2.20, परन्तु प्राप्त टी का मान है 2.271। अतः दोनों मध्यमानों का अन्तर वास्तविक (सार्थक) है। इसलिए इस स्तर पर H_0 को अस्वीकार किया जाता है। .01 स्तर पर यह सार्थक नहीं है क्योंकि उस स्तर पर टी का तालिका मान है तथा प्राप्त मान उससे कम है।

यह विश्लेषण-विधि प्रयोगशाला में किये जाने वाले अध्ययनों के संदर्भ में बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इन अध्ययनों में न्यादर्श का परिणाम छोटा ही होता है परन्तु इस स्थिति में समूहों की सजातिता अथवा समरूपता की जाँच करना आवश्यक होता है। विचलन-समरूपता (homogeneity of variance) होने पर ही इस विधि का प्रयोग किया जा सकता है।

4. लघु न्यादर्श सह-संबंधी समूह टी-टेस्ट

नोट

इस स्थिति में भी $S.E._D$ निकालने का सूत्र वही रहता है जो वृहद् न्यादर्श सह-संबंधी समूह की स्थिति में प्रयोग किया जाता है अर्थात् इस स्थिति में,

$$S.E._D = \sqrt{S.E._1^2 + S.E._2^2 - 2r_{12} \times S.E._1 \times S.E._2}$$

परन्तु इसे प्राप्त करने की एक दूसरी विधि भी है। इसका आधार दोनों समूहों के मापांकों के अन्तरों का वितरण होता है। अन्तरों के मध्यमानों एवं प्र.वि. (S.D.) निकाले जाते हैं। इन्हें क्रमशः क तथा SD की संज्ञा दी जाती है। इनके आधार पर $S.E._D$ निकाली जाती है जिसका सूत्र है–

$$S.E._D = \frac{S_D}{\sqrt{N}}$$

इस $S.E._D$ को $\frac{D}{S.E._D}$ सूत्र द्वारा टी मान में बदल लिया जाता है। निम्नलिखित उदाहरण से यह स्पष्ट हो जायेगा–

तालिका 3.13

X	Y	D	D^2
100	105	−5.0	25
90	95	−5.0	25
106	100	+6.0	36
95	105	−10.0	100
108	99	+2.0	9
104	98	+6.0	36
90	110	−20.0	400
105	106	−1.0	1
99	100	−1.0	1
		$\Sigma D = -27.0$	$\Sigma D^2 = 633$

1. $\bar{D} = \frac{-27}{9} = 3.0$

Let $d = (D - \bar{D})$, a deviation score in D. Then:

2. $\Sigma d^2 = \Sigma D^2 \frac{(\Sigma D)^2}{n} = 633 - \frac{(-27)^2}{9} = 552.00$

3. $S_D = \sqrt{\left(\frac{\Sigma d^2}{n-1}\right)} = \sqrt{\left(\frac{552.0}{8}\right)} = 8.306$

4. $S.E._D = \frac{S_D}{\sqrt{N}} = \frac{8.306}{\sqrt{9}} = 2.768$

5. $Z(t) = \frac{D}{S.E._D} = \frac{-3.0}{2.768} = -1.08$

नोट

यदि सूत्र-2 का प्रयोग करके टी का मान निकाला जाये तो भी उतना ही आयेगा जितना उपरोक्त विधि द्वारा प्राप्त होता है।

तालिका-B में 8 $df(N-1)$ तथा .05 पर टी का मान 2.31 मिलता है। प्राप्त टी-मान 1.08 है जो तालिका मान से कम है। अत: H_0 को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। इसीलिए अनुसंधान उपकल्पना (H_1) को अर्थात् "अन्तर है" को अस्वीकार किया जाता है तथा यह निष्कर्ष स्थापित किया जाता है कि X तथा Y मापांकों के बीच कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

इस विधि का प्रयोग वृहद् न्यादर्श सह-संबंधी समूहों की स्थिति में भी किया जा सकता है। आगणन के दृष्टिकोण से यह विधि बहुत सरल है, परन्तु इसके आधार पर बहुत कम सूचना प्राप्त होती है। इससे दोनों समूहों के मापांकों के बीच सह-संबंध का ज्ञान नहीं होता और न इससे समूहों के मध्यमानों एवं प्र.वि. का ही पता चलता है।

परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि वृहद् एवं लघु न्यादर्श सह-संबंधी समूहों दोनों स्थितियों में टी का मान निकालने की विधियाँ एक ही हैं, परन्तु यदि समूहों को मध्यमान एवं प्र.वि. के आधार पर समान बनाया गया है तो $S.E._D$ निकालने का सूत्र निम्नलिखित होता है–

$$S.E._D = \sqrt{[S.E._1^2 + S.E._2^2 \times (1 - r_{xy}^2)]}$$

शेष समस्त प्रक्रिया इस स्थिति में भी पूर्ववत् ही रहती है।

3.16 टी-टेस्ट : विशिष्ट टिप्पणी

टी-टेस्ट के प्रयोग से संबंधित कुछ अभिधारणाओं का उल्लेख किया जा चुका है। इनमें कुछ हैं: (i) जनसंख्या में चरों के वितरण का सम (normal) होना तथा (ii) न्यादर्शों की जनसंख्याओं (populations) के विचरण (variances) का समरूप होना। इनकी सांख्यिकीय विधियों द्वारा जाँच भी की जा सकती है। इनका उल्लेख सांख्यिकी की उच्च स्तरीय पुस्तकों जैसे, हेज (1973) की पुस्तक आदि में किया गया है। फिर भी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि टी-टेस्ट एक शक्तिशाली सांख्यिकीय परीक्षा है तथा उसके परिणाम उपरोक्त अभिधारणाओं के भंग होने पर भी अधिक कुप्रभावित नहीं होते, परन्तु भिन्न आकार (N) वाले स्वतंत्र समूहों की स्थिति इसका अपवाद (exception) है। इस स्थिति में यदि विचरण की सजातिता (homogeneity of variance) की शर्त पूरी नहीं होती तो परिणाम अवांछनीय रूप से प्रभावित हो सकते हैं। अत: इस स्थिति में उपरोक्त अभिधारणा की जाँच अवश्य की जानी चाहिए। यदि यह शर्त पूरी नहीं होती तो टी-परीक्षा का प्रयोग नहीं करना चाहिए। वृहद् न्यादर्श की स्थिति में इन शर्तों के पूरा न होने पर विशेष अन्तर नहीं पड़ता, परन्तु लघु न्यादर्श की स्थिति में विचरण की समानता का अभाव परिणामों को प्रभावित करता है। परन्तु इस स्थिति में भी यदि न्यादर्शों के परिमाण (Ns) समान हों तो समस्या कुछ कम हो जाती है।

3.17 एक-पुच्छीय एवं द्वि-पुच्छीय परीक्षण

इस संकल्पना की व्याख्या अध्याय-10 में प्रयोगात्मक आकल्प के अन्तर्गत की जा चुकी है। यहाँ केवल यह बताना है कि एक-छोरीय परीक्षा की स्थिति में तालिका का टी मान कैसे देखते हैं। एक-पुच्छीय अथवा एक-छोरीय अथवा सदिश परीक्षा के लिए तालिका में .05 स्तर पर .10 स्तम्भ तथा .01 स्तर पर .02 स्तम्भ में टी का मान देखा जाता है। यदि द्वि-छोरीय परीक्षा के आधार पर कोई प्राप्त टी-मान किसी सार्थकता-स्तर पर सार्थक (significant) नहीं आता है तो एक-छोरीय परीक्षा का प्रयोग करने पर वह कभी-कभी सार्थक घटित हो जाता है, परन्तु यह निर्णय कि कौन

सी परीक्षा (एक-पुच्छ अथवा द्वि-पुच्छ) का प्रयोग किया जायेगा, अनुसंधान की सामग्री एकत्र करने से पूर्व नियोजन स्तर पर ही लिया जाना चाहिए।

टी-टेस्ट की संवेदनशीलता बढ़ाना

नोट

कई ऐसे उपाय हैं जिनके द्वारा टी-परीक्षा की इस संवेदनशीलता को बढ़ाया जा सकता है। इनका उल्लेख आगे किया गया है।

1. **कोलाहल के स्तर को घटाना**–इस संदर्भ में कोलाहल का अर्थ है अनियंत्रित चरों का प्रभाव। ये प्रभाव अनेक रूपों में उपस्थित होते हैं। प्रयोगात्मक आकल्पों के नियमों एवं विभिन्न प्रकारों के अन्तर्गत इनका वर्णन किया जा चुका है। मुख्य रूप से इनके स्रोत होते हैं–
   (i) अनुसंधानाधीन व्यक्तियों को दिये गये निर्देश,
   (ii) अध्ययनेतर चरों का अपूर्ण नियंत्रण,
   (iii) अध्ययन की व्यवस्था एवं परिस्थितियों पर नियंत्रण न होना,
   (iv) शोधकर्ता की अभिनति (bias) तथा
   (v) अनुसंधानाधीन व्यक्तियों की मानसिक स्थिति (mental set)।

   अत: इनके कारण उत्पन्न हुए "कोलाहल" (प्रभाव) को नियंत्रित करने का हर संभव प्रयास करना चाहिए जिससे प्रयोगात्मक प्रभाव (experimental effects) जो स्वतंत्र चर अथवा उपचारों के कारण प्रत्याशित होते हैं, उभरकर सामने आ सकें।
2. **न्यादर्श के परिमाण (size) को बढ़ाना**–टी-परीक्षण की संवेदनशीलता को बढ़ाने का यह दूसरा उपाय है। ऐसा करने से समसंभाविक त्रुटि (random error) कम हो जाती है तथा टाइप-I और टाइप-II त्रुटियाँ भी घट जाती हैं। इस प्रकार, स्वतंत्र चर का प्रभाव अधिक स्पष्ट हो जाता है तथा टी-परीक्षा की संवेदनशीलता बढ़ जाती है।
3. **"फर्श" एवं "छत" के प्रभाव को दूर करना**–इसका अर्थ है कि चरों के मापन हेतु प्रयुक्त परीक्षाएँ न तो बहुत सरल होनी चाहिए और न बहुत कठिन। यदि वे बहुत सरल होंगी तो अधिकतर व्यक्तियों के अंक बहुत ऊँचे होंगे, शत-प्रतिशत भी हो सकते हैं। उस स्थिति में कुछ के परीक्षा पर और ऊँचे जाने की संभावना घट जायेगी। परिणामस्वरूप उपचारों द्वारा उत्पन्न अन्तर कम हो जायेंगे। इस स्थिति को "छत से टकराकर नीचे फर्श की ओर आने की घटना" कहा जाता है। इसी प्रकार यदि परीक्षा बहुत कठिन है तो बहुत से व्यक्ति (प्राप्तांकों के दृष्टिकोण से) फर्श से ही ऊपर नहीं उठ पायेंगे। इसे "फर्श का प्रभाव" कहा जाता है। इस स्थिति में भी उपचारों के प्रभाव स्पष्ट नहीं हो पाते। अत: परीक्षाएँ न तो अधिक कठिन होनी चाहिए और न अधिक सरल, तभी टी-टेस्ट की संवेदनशीलता अधिक हो जाती है।
4. **मापांकों की विश्वसनीयता बढ़ाना**–ऐसा मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की विश्वसनीयता बढ़ाने, एक बार की बजाए कई बार मापन करके तथा उनका औसत लेकर एवं मापन-परिस्थितियों एवं व्यवस्था को अच्छी तरह नियंत्रित करके किया जा सकता है।
5. **अधिक उपयुक्त आकल्प का चयन**–अध्ययन-10 में बहुत से प्रयोगात्मक आकल्पों का उल्लेख किया गया है। इनमें स्वतंत्र समूह आकल्प, समानीकृत समूह आकल्प, सहसंबंधी पुनर्मापाधारी समूह आकल्प (repeated measures design) भी आते हैं। टी-परीक्षा की

नोट

संवदेनशीलता पुनर्मापाधारी समूह आकल्प में सबसे अधिक होती है, उससे कम समानीकृत समूह आकल्प में तथा सबसे कम स्वतंत्र समूह आकल्प में होती है। ऐसा अध्ययनेतर चरों के कम एवं अधिक नियंत्रण के फलस्वरूप होता है। स्वतंत्र समूह आकल्प में यह नियंत्रण सबसे कम होता है। अत: टी-परीक्षा की संवेदनशीलता बढ़ाने का एक उपाय यह भी है कि उस आकल्प का चयन किया जाये जिसमें टी-परीक्षा की संवेदनशीलता सबसे अधिक होती है, परन्तु सदैव ऐसा संभव नहीं होता। उस स्थिति में टी-परीक्षा की संवेदनशीलता भी अन्य दो की अपेक्षा कम होती है। अत: प्रत्येक के गुण-दोषों एवं उसकी प्रयुक्तता को ध्यान में रखना भी आवश्यक होता है। फिर भी यदि अनुसंधान की परिस्थिति में संभव हो तो उसी आकल्प का चयन करना चाहिए जो टी-परीक्षा की सबसे अधिक संवेदनशीलता को धारण करता है।

3.18 एकल-दिक् विचरण-विश्लेषण

'विचरण' का शाब्दिक अर्थ भाषा में 'अन्तर' होता है, परन्तु सांख्यिकी की भाषा में इसका अर्थ होता है "अन्तरों के वर्गों का औसत।" ये अन्तर मापांकों एवं मध्यमान के बीच लिये जाते हैं। मूल रूप से विचरण का सूत्र होता है:

$$\text{विचरण (variance)} = \frac{\Sigma (X - \bar{X})^2}{N}$$

अथवा और शुद्ध रूप में $= \frac{\Sigma (X - \bar{X})^2}{N-1}$ अथवा $\frac{\Sigma x^2}{N-1}$

1. सम्पूर्ण विचरण के खण्ड

कम से कम दो भाग अथवा खण्ड तो सदैव ही रहते हैं। ये हैं: (1) अन्तर्समूह विचरण (between groups variance) तथा अन्त: समूह विचरण (within groups variance)। यदि इन दोनों का योग करें तो वह सम्पूर्ण विचरण के बराबर होगा। नीचे दिये गये उदहारण द्वारा इसे स्पष्ट किया गया है:

तालिका 3.14. तीन समुच्चयों के आँकड़े

A-1			A-2			A-3		
X_2	x_2	x_1^2	X_3	x_3	x_2^2	X_4	x_4	x_3^2
6	2	4	4	1	1	6	+1	1
2	–2	4	2	–1	1	5	+0	0
3	–1	1	5	2	4	4	–1	1
5	1	1	1	–2	4	4	–1	1
4	0	0	3	0	0	6	1	1
$\Sigma X = 20$			15			25		
$\Sigma X = 20$			3			5		
Σx^2		10			10			04
$\Sigma X_1 = 60$								

मान लीजिये कि उपरोक्त तालिका तीन स्वतन्त्र सह-सम्भाविक समूहों (उच्च प्रेरणा, सामान्य प्रेरणा, निम्न प्रेरणा स्तर वाले) के बालकों की शैक्षिक उपलब्धि के प्राप्तांक प्रस्तुत करती है। इन समूहों को A–1, A–2, A–3 कह सकते हैं। इस तालिका के विश्लेषण के आधार पर यह परीक्षा करनी है कि "क्या प्रेरणा का शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव पड़ता है?"

इस तालिका के आधार पर पहले सम्पूर्ण विचरण की गणना करते हैं जिसे उदाहरण-1 में प्रस्तुत किया गया है।

उदाहरण-1

कुल विचरण की गणना

X	x	x^2	
6	2	4	
2	–2	4	कुल विचरण $(V_t) = \frac{\Sigma x^2}{N-1} = \frac{34}{14}$
3	–1	1	$= 2.428$
5	+1	1	
4	0	0	
4	0	0	
2	–2	4	
5	+1	1	इस सूत्र का प्रयोग करने पर $\frac{\Sigma x^2}{N}$, आता है
1	–3	9	$\frac{34}{15} = 2.266$
3	–1	1	
6	2	4	
5	1	1	
4	0	0	
4	0	0	
6	2	4	
X = 60			
M = 4.0			
Σx^2 =		34	

यह सम्पूर्ण विचरण दो कारणों से उत्पन्न माना जा सकता है। एक तो उन अन्तरों के कारण जो प्रेरणा के तीन भिन्न स्तरों में निहित हैं। दूसरे उन अन्तरों के कारण जो प्रत्येक समूह में स्थित बालकों के बीच रहते हैं। इन दोनों कारणों से उत्पन्न विचरण को (i) अन्तर्समूह विचरण एवं (ii) अन्त: समूह विचरण कहते हैं। अन्तर्समूह विचरण उपचारों के कारण तथा अन्त: समूह विचरण न्यादर्श-चयन की त्रुटि (sampling error) अथवा संयोगजन्य त्रुटि (chance error) जिसे समसम्भाविक त्रुटि भी कहते हैं और जो सारे समूहों को समान बना देने के पश्चात् भी कुछ न कुछ रह ही जाती है, के कारण उत्पन्न हुआ माना जाता है। अन्त:समूह विचरण (within groups variance) प्रत्येक प्रयोगात्मक अनुसंधान में त्रुटि (error) के रूप में ही जाना जाता है।

2. अन्तर्समूह विचरण

नीचे दी गई उदहारण–2 तालिका के आधार पर जिसमें तीनों समूहों के मध्यमानों को मापांकों के रूप में व्यवस्थित किया गया है, अन्तर्समूह विचरण की गणना की गई है। यह सूत्र $\frac{\Sigma x^2}{N-1}$ के द्वारा 1.0 आनी है तथा सूत्र $\frac{\Sigma x^2}{N}$ के द्वारा .666 आती है।

नोट

उदाहरण–2

विचरण की गणना

X	x	x^2	
4	0	0	अन्तर्समूह विचरण
3	–1	1	
5	+1	1	$(V_b) = \frac{\Sigma x^2}{N-1} = \frac{2}{2} = 1.00$
$\Sigma X = 12$			सूत्र प्रयोग करने पर $\frac{\Sigma x^2}{N}$. का
$M = 4.0$			मान है $\frac{2}{3} = .666$
$\Sigma x^2 = 2$			

3. अन्तःसमूह विचरण

तालिका–1 के प्रत्येक समूह (A-1, A-2, A-3) का अन्तःविचरण ज्ञात करने का भी सूत्र वही है जो पीछे दिया गया है। इसे ज्ञात करने के लिये तीनों समूहों का विचरण अलग–अलग ज्ञात करके उनका औसत ले लिया जाता है। प्रत्येक समूह का Σx^2 तालिका–1 में दिया गया है। यह क्रमशः 10, 10, 4 है। प्रत्येक में $N - 1 = 4$ है। अतः

$$\text{अन्तःसमूह विचरण } (V_w) = \frac{\frac{10}{4}+\frac{10}{4}+\frac{4}{4}}{3} = \frac{6}{3} = 2.0 \left(\text{सूत्र } \frac{\Sigma x^2}{N-1} \text{ द्वारा}\right)$$

$$\text{अन्तःसमूह विचरण } (V_w) = \frac{\frac{10}{5}+\frac{10}{5}+\frac{4}{5}}{3} = 1.60 \left(\text{सूत्र } \frac{\Sigma x^2}{n} \text{ द्वारा}\right)$$

दोनों सूत्रों द्वारा उपरोक्त दोनों प्रकार के विचरण निम्न प्रकार हुये:

(i) सूत्र $\frac{\Sigma x^2}{N-1}$ द्वारा (a) $V_b = 2.0$ (b) $V_w = 1.0$

अतः इस सूत्र के अनुसार,

$$V_b + V_w = (2.0 = 1.0) = 3.00$$

(ii) सूत्र $\frac{\Sigma x^2}{N}$ द्वारा (a) $V_t = 1.60$ (b) $V_w = .666$

अत: इस सूत्र के अनुसार,

$$V_b + V_w = 1.60 + .666 = 2.266$$

(iii) सूत्र $\frac{\Sigma x^2}{N-1}$ के अनुसार,

सम्पूर्ण विचरण

$(V_b) = 2.428$

सूत्र $\frac{\Sigma x^2}{N}$ के अनुसार, $V_b = 2.266$

सूत्र $\frac{\Sigma x^2}{N-1}$ के अनुसार, $V_t (2.428) = V_b + V_w (3.0)$

सूत्र $\frac{\Sigma x^2}{N}$ के अनुसार, $V_t (2.666) = V_b + V_w (1.60 + .666) = 2.266$

उपरोक्त गणना के आधार पर यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि सूत्र $\frac{\Sigma x^2}{N}$ का प्रयोग करने पर सम्पूर्ण

विचरण (V_t) जो 2.666 है, अन्तर्समूह विचरण (V_b) तथा अन्त:समूह विचरण (V_w) जो क्रमश: 1.60 तथा .666 हैं, के योग के बिल्कुल बराबर है। अत: यह सिद्ध होता है कि सम्पूर्ण विचरण अन्तर्समूह एवं अन्त:समूह विचरण दोनों के योग के बराबर होता है। इसे सूत्र के रूप में इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है:

$$V_t = V_b + V_w$$

परन्तु सूत्र $\frac{\Sigma x^2}{N-1}$ का प्रयोग करने पर ऐसा नहीं पाया जाता। उनमें थोड़ा अन्तर आता है। इस स्थिति में $V_t = 2.48$ है तथा $V_b + V_w = 1 + 2 = 3.0$ आता है। यह अन्तर इसलिये आता है कि सूत्र $\frac{\Sigma x^2}{N-1}$ में हर (denominator) के स्थान पर स्वतंत्र्यांश (N – 1) की संकल्पना को प्रयोग में लाया जाता है। गणित के नियमों के अनुसार ऐसा किया जाना अधिक वैज्ञानिक एवं सन्तोषप्रद समझा जाता है, क्योंकि इस सूत्र के आधार पर उपलब्ध ये मान समग्र जनसंख्या (population) में स्थित इन्हीं मानों के बहुत समीप आ जाते हैं। अत: इसी सूत्र का प्रयोग इन मानों को ज्ञात करने में सर्वदा किया जाता है। सूत्र $\frac{\Sigma x^2}{N}$ का तो यहाँ प्रयोग केवल यह स्पष्ट करने के लिये किया गया है कि (V_t) को सदैव ही दो भागों (V_b तथा V_w) में बाँटा जा सकता है। V_b को SS_A तथा V_w को SS_w तथा टज को SS_T के रूप में लिखा जाता है। अत: $SS_T = SS_A + SS_w$ । इस सूत्र को सदा याद रखना चाहिये।

4. अन्तर्समूह विचरण (SS_A) की व्याख्या

अन्तर्समूह विचरण वह विचरण होता है जो प्रत्येक समूह के मध्यमान एवं तीनों समूहों के (यदि तीन से अधिक समूह हैं तो उन सबके) सामूहिक मध्यमान के अन्तरों के वर्गों के योग को N

नोट

– 1 से भाग करने पर आता है। उदाहरण–2 से यह स्पष्ट है। इस विचरण की उत्पत्ति का कारण स्वतंत्र चर (उसके विभिन्न स्तरों में किये गये अन्तरों अथवा विभिन्न उपचरों) को माना जाता है।

यह विचरण पूरा का पूरा उपचरों (स्वतंत्र चर) के कारण प्राय: नहीं होता। कम से कम सम–सम्भाविक त्रुटि (संयोगजन्य), त्रुटि तो उसमें रहती ही है। इस त्रुटि से यदि यह विचरण अधिक हो तभी उसे निश्चित रूप से उपचरों के कारण स्वीकार किया जा सकता है।

नोट

अन्त:समूह विचरण (SS_A) की व्याख्या

यह वह विचरण होता है जो अलग–अलग समूहों में स्थित व्यक्तियों अथवा इकाइयों के बीच शेष रहे अन्तरों के कारण उत्पन्न होता है। यह सही है कि समूहों को सम–सम्भाविक विधि द्वारा तथा अध्ययनेतर चरों को नियंत्रित करके यथासम्भव समान बनाने का प्रयास किया जाता है तो भी ऐसा हो नहीं पाता कि सब समूहों की इकाइयों के बीच अन्तर पूर्णतया समाप्त हो जाये। अत: इस कारण से अन्त:समूह विचरण भी पूर्णतया शून्य नहीं हो पाता। इस शेष विचरण को ही SS_W कहा जाता है तथा इसे संयोगजन्य माना जाता है। इस विचरण की विशेषता यह है कि इसका अनुमान (estimate) लगाया जा सकता है, परन्तु इसे पूर्णतया समाप्त नहीं किया जा सकता। इसीलिये इसे "त्रुटि" की संज्ञा दी गई है।

एफ–अनुपात

अनोवा (Anova) में समूहों के बीच अन्तर की सार्थकता, उनकी पारस्परिक तुलना का आधार यही अनुपात होता है। इसी अनुपात अर्थात् SS_A/SS_W को एफ–अनुपात (F-ratio) कहते हैं। सर रोनाल्ड फिशर के एक शिष्य स्नेडेकोर (Snedecor) ने उनके सम्मानस्वरूप इस अनुपात को एफ (F) की संज्ञा दी थी।

यदि प्राचलीय परीक्षाओं की अभिधारणाओं की पूर्ति होती है तथा अनेक सम–सम्भाविक न्यादर्शो को लेकर एफ–अनुपात निकाले जाते हैं तो उनका वितरण सम होगा, गणितज्ञों की ऐसी मान्यता है। इसी आधार पर एफ–मानों की एक तालिका भिन्न–भिन्न स्वतंत्र्यांशों को लेकर स्नेडेकोर ने तैयार की है जिसे एफ–तालिका कहा जाता है। इसे इस पुस्तक के अन्त में परिशिष्ट के अन्तर्गत तालिका–ब करके प्रस्तुत किया गया है। इस तालिका में दिये गये एफ–मानों के साथ प्राप्त एफ–मान की तुलना करके निष्कर्ष–स्थापन किया जाता है। इस मूल्यांकन के पीछे तर्क इस प्रकार रहता है। यदि उपचारों में किये गये अन्तरों का कोई प्रभाव आश्रित चर पर नहीं पड़ता तो SS_A का मान SS_W के बराबर ही होना चाहिये। उस स्थिति में एफ का मान 1.0 होगा।

इसी प्रकार यदि स्वतन्त्र चर का वास्तव में आश्रित चर पर प्रभाव पड़ा है अर्थात् वह आश्रित चर का कारण है तो एफ का मान 1.0 से अधिक होना चाहिये, परन्तु 1.0 से वह कितना ऊपर हो यह कहा जा सके कि स्वतन्त्र चर अथवा उपचरों का प्रभाव सार्थक (significant) अर्थात् वास्तविक है? इस समस्या का समाधान एफ–तालिका में दिये गये मानों के द्वारा हो जाता है। प्रक्रिया इस प्रकार की है कि शोध–सामग्री के आधार पर पहले एफ का मान निकाला जाता है। इस एफ–मान की तुलना फिर तालिका में दिये गये मान से की जाती है। यदि शोध–सामग्री के आधार पर प्राप्त किया गया एफ–मान तालिका के .05 अथवा .01 किसी भी स्तर पर निर्धारित स्वतंत्र्यांशों पर दिये गये मान के बराबर अथवा उससे अधिक है तो अप्रतिष्ठेय उपकल्पना को अस्वीकार किया जाता है तथा यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि उपचारों का आश्रित चर पर वास्तविक प्रभाव पड़ता है। एफ–मान के समबन्ध में कुछ अन्य तथ्यों को भी अच्छी तरह समझना चाहिये। ये हैं–

नोट

1. एफ-मान निकालने के नियम तो यह हैं कि SS_A तथा SS_W में जो भी बड़ा हो उसे ऊपर अंश (numerator) के स्थान पर तथा दूसरे को नीचे हर (denominator) के स्थान पर रखा जाता है। बड़ा दोनों में से कोई भी हो सकता है। अत: कोई भी ऊपर या नीचे रखा जा सकता है, परन्तु विचरण विश्लेषण की स्थिति में SS_A को ही सदैव ऊपर रखना चाहिये। यदि किसी स्थिति में SS_A कम तथा SS_W अधिक हो तो एफ का मान निकालने की आवश्यकता ही नहीं है क्योंकि इससे यह तुरन्त स्पष्ट हो जाता है कि उपचारों का कोई प्रभाव परिणामों पर नहीं है अर्थात् एफ सार्थक नहीं है।
2. एफ-टेस्ट अनिवार्यत: एक-छोरीय (one-tailed) टेस्ट है क्योंकि उसके संदर्भ में यह विचार किया जाता है कि क्या SS_A मान SS_W से इतना ऊपर है कि उसे सार्थक कहा जा सके? इसके लिये SSW को समवितरण वक्र के मध्य (0.0 बिन्दु पर) रखा जाता है तथा यह देखा जाता है कि SS_A उससे कितना ऊपर है। ऊपर वक्र का एक छोर, एक ही दिशा में हो सकता है। इसीलिये यह एक पुच्छ परीक्षा होती है।
3. स्वतंत्र्यांशों की संकल्पना एफ-टेस्ट में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इनका प्रयोग तालिकागत उस मान के चयन में किया जाता है जिसके साथ प्राप्त एफ-मान की तुलना करनी होती है। इसके लिये एफ-अनुपात तालिका-C को अच्छी तरह समझना आवश्यक है। इस तालिका में सबसे ऊपर क्षैतिज दिशा में SS_A के स्वतंत्र्यांश (*df*) तथा बायीं ओर स्तम्भ में लम्बीय रूप में SS_W के *df* देखकर दोनों ओर से चलकर जहाँ एक बिन्दु पर मिलते हैं उस स्थान पर दो मान उपलब्ध होते हैं। इनमें एक हल्के काले रंग में तथा दूसरा मोटे गहरे रंग का होता है। गहरे काले रंग वाला अथवा बड़ा मान .01 स्तर का तथा हल्के काले रंग वाला अर्थात् छोटा मान .05 स्तर का होता है। आगे दिये गये उदहारणों से ये सब बातें स्पष्ट हो जायेंगी।

3.19 सम-सम्भाविक समूह आकल्प

(एकल दिक् अनोवा)

पिछले अध्याय में SS_t, SS_A, तथा SS_W निकालकर दिखाये गये थे, परन्तु जिस विधि से उन्हें निकाला गया था, वास्तव में उसका प्रयोग नहीं किया जाता है। वास्तव में जिस विधि का प्रयोग किया जाता है, उसका पद-क्रम इस इस प्रकार होता है:

(1) C शुद्धि-पद का मान (correction term) निकालना,

(2) SS_t निकालना,

(3) SS_A निकालना,

(4) SS_W निकालना,

(5) SS_A तथा SS_W को मध्यमानों में बदलना,

(6) एफ-अनुपात निकालना,

(7) इसकी तालिका के मान से तुलना करना,

(8) सार्थकता की परीक्षा के आधार पर निष्कर्ष निकालना।

नीचे दी गई तालिका के आधार पर इन सबको ज्ञात करने की विधियाँ स्पष्ट की गई हैं। इस तालिका में X स्वतन्त्र चर है जिसके तीन स्तर, X_1, X_2 तथा X_3 हैं। इन तीनों समूहों में स्थित व्यक्तियों के आश्रित चर पर प्राप्तांक बीच में दिये गये हैं–

नोट

उदाहरण-3

तालिका 3.15. विचरण का एकल-दिक् विश्लेषण

X_1	X_2	X_3
6	4	6
2	2	5
3	5	4
5	1	4
4	3	6
Σ = 20	15	25 = 60

(Having obtained measures on dependent variable for all the subjects in the different groups a table like the above is prepared. In this X is our independent variable which has three treatment conditions or levels, X_1, X_2 and X_3. The analysis of variance will follow the following steps):

1. Correction Term (C) = $(\Sigma X)^2/N = (60)^2/15 = 240.0$
2. SS_T = तालिका-2 में वर्गों के सभी आँकड़ों का योग दिया गया है।
   $Ex^2 - c = (6^2 + 2^2 \ldots 4^2 + 6^2) - 240.0 = 34.0$
3. $$SS_A = \frac{(\Sigma X_1)^2}{N_1} + \frac{(\Sigma X_2)^2}{N_2} + \frac{(\Sigma X_3)^2}{N_3} - C$$
   यदि सभी समूहों में छ समान है, तो उपरोक्त सूत्र इस तरह लिखेंगे रखने पर,
   $\frac{\Sigma X_1^2 + \Sigma X_2^2 + \Sigma X_3^2}{N} - C$; सभी मानों को रखने पर,
   $$SS_A = \frac{(20)^2 + (15)^2 + (25)^2}{5} - 240.0 = 10.0$$
4. $SS_W = SS_T - SS_A = 34.0 - 10.0 = 24.00$
5. Mean $SS_W = \frac{10}{2} = 5.0$, चूँकि यहाँ तीन समूह हैं और df है $(3 - 1) = 2$
6. Mean $SS_W = \frac{24}{12} = 2.00$, df होगा 12.
7. F-ratio $\frac{M_{SS_A}}{M_{SS_W}} = \frac{5}{2} = 2.50$
8. **सार्थकता**–एफ-मान सार्थक नहीं है क्योंकि 2, 12 *df* पर तथा .05 स्तर पर तालिका-C का एफ-मान 3.88 है। प्राप्त F-ratio इससे कम है। अतः H_0 को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। परिणाम सार्थक नहीं है।

9. निष्कर्ष–उपचार एक-दूसरे से भिन्न नहीं हैं तथा प्रत्येक का आश्रित चर पर समान प्रभाव पड़ता है। दूसरे शब्दों में, स्वतन्त्र चर X आश्रित चर को प्रभावित नहीं करता।

टिप्पणी-1

नोट

SS_W के स्वतंत्र्यांशों (*df*) की गणना दो प्रकार से की जा सकती है:

(i) प्रत्येक समूह के N में से एक घटाकर शेष सबको जोड़कर जैसे पिछले उदाहरण में $(5 - 1) + (5 - 1) + (5 - 1) = 12$ किया गया है।

(ii) दूसरी विधि है कि सम्पूर्ण *df* में से समूहों के *df* की संख्या घटाकर, जैसे पिछले उदहारण में सम्पूर्ण र्का की संख्या $15 - 1 = 14$ है तथा समूहों के र्का की संख्या $3 - 1 = 2$ है। अत: SS_W की $df = 14 - 2$ अथवा 12। (iii) SS_A के स्वातंत्र्यांशों की संख्या समूहों की कुल संख्या में से एक घटाकर आ जाती है।

टिप्पणी-2

यह भी देखें कि SS_t तथा SS_A के निकालने की विधि भी वही है जिसका स्पष्टीकरण उदाहरण-1 तथा 2 में किया गया था। केवल अन्तर यह है कि उस उदाहरण में यह विधि मध्यमान तथा प्रत्येक के अन्तर (deviation) के रूप में थी जबकि उपरोक्त उदाहरण में वह मौलिक मापांकों (raw scores) के प्रयोग पर आधारित है। अन्तर-प्रधान मापांकों (deviation form) के रूप में उसका सूत्र था $\Sigma x^2/N_1$, परन्तु मौलिक अंकों के रूप में यह सूत्र होता है:

$$\Sigma x^2 - \frac{(\Sigma X)^2}{N}$$

जिसमें $\Sigma x^2/N_1$ शुद्धि-पद (C) होता है। यह शुद्धि-पद SS_A तथा SS_t सबके निकालने में एक ही रहता है। अत: उसे एक बार केवल आरम्भ में ही निकालना होता है क्योंकि इस विधि में मौलिक अंकों का प्रयोग किया जाता है। अत: SS_T का अर्थ होता है समस्त आँकड़ों (scores) के अलग-अलग वर्गों का योग। इसी प्रकारै। का अर्थ होता है समूहों (स्तंभों) के योग के अलग-अलग वर्गों का जोड़।

3.20 पुनर्मापाधारी-आकल्प (एकल दिक् अनोवा)

पूर्वगत उदाहरण में स्वतन्त्र समूहों को लेकर एकल-दिक् अनोवा के विश्लेषण की विधि का वर्णन किया गया था। यहाँ उसी विधि का वर्णन पुनर्मापाधारी आकल्प (repeated measures design) के संदर्भ में किया जा रहा है। इस स्थिति में व्यक्तियों का एक ही समूह सब उपचारों के अधीन रखा जाता है। जैसे पूर्व-परीक्षण, पश्च-परीक्षण आकल्प में व्यक्तियों के एक ही समूहों का पहले तथा बाद में दो बार परीक्षण किया जाता है। इसी प्रकार व्यक्तियों को एक या दो चरों पर समान बनाकर फिर उन्हें समूाहों में वितरित करके उनका मापन किया जाता है। इन दोनों प्रकार की व्यवस्थाओं में अनोवा (एकल दिक्) के पुनर्मापाधारी आकल्प का प्रयोग किया जाता है। इस विधि के अन्तर्गत जो गणना की जाती है वह पूर्वगत स्वतन्त्र समूहों की विधि से थोड़ा भिन्न होती है।

पुनर्मापाधारी आकल्प की विशेष उपयोगिता इस बात में निहित है कि उसके द्वारा समूहगत इकाइयों के मध्य स्थित अन्तरों के कारण जो विचरण उत्पन्न होता है तथा जिसे त्रुटि-विचरण कहते हैं, वह कम हो जाता है तथा इस प्रकार अनुसंधान की शुद्धता एवं वैधता बढ़ जाती हैं। अत:

नोट

इकाइयों की भिन्नता (heterogeneity of subjects) के नियंत्रण का यह एक सशक्त माध्यम है, परन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिये कि ये अन्तर, भिन्नतायें बिल्कुल समाप्त हो जाती हैं। कुछ तो फिर भी बनी रहती हैं, फिर भी वे कम अवश्य हो जाती हैं, क्योंकि इसमें एक ही समूह की इकाइयाँ नियन्त्रित समूह की इकाइयों के रूप में कार्य करती हैं।

इस आकल्प का एक दोष यह बताया जाता है कि इसमें इकाइयों के पूर्व-परीक्षण का प्रभाव उनके पश्च-परीक्षण पर पड़ता है। पूर्व-परीक्षण के पश्चात् इकाइयों में बहुत से परिवर्तन आ जाते हैं और वे उस समग्र जनसंख्या (population) की प्रतिनिधि नहीं रहतीं जिसमें से उनका चयन किया गया है। इन दो कारणों से अनुसंधान के परिणमों की शुद्धता (precision) एवं बाह्य वैधता (external validity) दोनों पर अवांछनीय प्रभाव पड़ता है। इन कठिनाइयों के होते हुये इस आकल्प को स्वतन्त्र-समूह आकल्प से श्रेष्ठ समझा जाता है। इसे अन्त:समूह आकल्प अथवा सह-सम्बन्धी समूह आकल्प भी कहा जाता है। इस आकल्प में विचरण का एक नया स्रोत और जुड़ जाता है जिसे अन्तर्व्यक्ति विचरण (between subjects variance) अथवा SS_S कहते हैं जिसे SS_T में से निकाल देने पर त्रुटि-विचरण SSw और भी कम हो जाता है। इस प्रकार इस स्थिति में SS_T के तीन भाग हो जाते हैं अर्थात् $SS_T = SS_A + SS_s + SS_{wI}$ इसमें SS_w को SSerror भी कहते हैं। आगे दिये गये उदाहरण से स्पष्ट हो जायेगा कि इन विचरणों की गणना किस प्रकार की जाती है तथा किस प्रकार निष्कर्ष की स्थापना की जाती है।

उदाहरण-4

प्रत्यास्मरण (recall) पर याद करने की क्रम-पद्धति (order) के प्रभाव का अध्ययन करने हेतु 8 छात्रों को एक शब्दों के 10 युग्म याद करने को दिये गये तथा दो दिन बाद उन्हें प्रत्यास्मरण करने को कहा गया। इसके बाद उन्हें शब्दों के 10 युग्मों की दूसरी सूची याद करने को दी गई तथा दो दिन बाद पुन: उन्हें प्रत्यास्मरण करने को कहा गया। इस प्रकार याद करना, प्रत्यास्मरण करना यह कार्य शब्दों की 6 सूचियों तक चला। इसके आधार पर जिस उपकल्पना की परीक्षा की जानी थी वह थी "प्रत्यास्मरण पर याद करने की क्रम-पद्धति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।" ऐसी धारणा थी कि प्रथम सूची के बाद प्रत्यास्मरण सबसे अधिक होता है तथा उसके बाद क्रमश: वह कम होता जाता है।

परीक्षण-विधि का स्पष्टीकरण करने हेतु शोध-सामग्री को निम्नलिखित तालिका में प्रस्तुत किया गया है। सांख्यिकीय गणना एवं विश्लेषण हेतु थोड़े परिवर्तन के साथ उसी पद-क्रम को अपनाया गया है जिसका वर्णन स्वतन्त्र-समूहों की स्थिति में किया जा चुका है। यह इस प्रकार है:

तालिका 3.16. तालिका का पद-क्रम

विषय	L-1	L-2	L-3	L-4	L-5	L-6	योग
S1	7	3	2	2	1	1	16
S2	4	8	3	8	1	4	26
S3	7	6	3	1	5	0	26
S4	8	6	1	0	2	3	17
S5	7	2	3	0	1	1	16
S6	6	3	3	1	1	0	15

नोट

S7	4	2	0	0	0	2	6
S8	6	7	5	1	3		24
योग Σ =	49	37	20	13	14	13	146

इस केस में विश्लेषण को पूरा करने के लिए हम स्वतंत्र समूह आकल्प के पिछले उदाहरण का अनुसरण करेंगे।

1. $C = (146)^2/48 = 444.08$

2. $SS_T = (7^2 + 4^2 .... (0)^2 + 2^2) - 444.08$

$= 740.0 - 444.08 = 295.92$

3. $SS_A = \frac{(49)^2 + (37)^2 + (20)^2 + (13)^2 + (14)^2 + (13)^2}{8} - 444.08$

$= \frac{4704}{8} - 444.08 = 143.92$

4. $SS_s = \frac{16^2 + 26^2 + 26^2 + 17^2 + 16^2 + 15^2 + 6^2 + 24^2}{6} - 444.08$

$= \frac{2990}{6} - 444.08 = 54.25$

5. $SS_{e \times r} = SS_T - (SS_A + SS_s)$

$= 295.92 - (143.43 + 54.25)$

$= 295.92 - 198.17 = 97.75$

उपरोक्त में, $SS_{e \times r}$ का अर्थ है स्तम्भों (columns) तथा पंक्तियों (rows) के बीच होने वाली अन्तर्क्रिया द्वारा उत्पन्न विचरण। इसे अन्तर्क्रिया-विचरण (interaction variance) कहते हैं।

6. $\text{Mean } SS_A = 143.92/5 = 28.78$

7. $\text{Mean } SS_{r \times r} = 97.75/35 = 2.79$

8. $\text{F-ratio} = \frac{28.78}{2.79} = 10.32$

9. **निष्कर्ष**–तालिका–C में 3, 35 *df* तथा .01 स्तर पर F का मान 3.59 है। प्राप्त एफ-मान 10.32 है जो तालिका-मान से बहुत अधिक है। अत: H_o को अस्वीकार करके यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि याद करने की क्रम-पद्धति का प्रत्यास्मरण पर निश्चित प्रभाव पड़ता है। प्रथम सूची के बाद प्रत्यास्मरण सबसे अधिक था। उसके बाद वह क्रमश: कम होता जाता है।

संगणना-सम्बन्धी व्याख्या

पुनर्मापाधारी आकल्प की स्थिति में एफ-मान निकालने की विधि स्वतंत्र समूह आकल्प की स्थिति से कुछ भिन्न होती है। इस स्थिति में प्रत्येक व्यक्ति का दूसरी, तीसरी, चौथी बार आदि अर्थात्

नोट

एक से अधिक बार मापन किया जाता है। अत: उनके मापांकों के बीच सह-सम्बन्ध (correlation) घटित हो जाता है। दूसरे शब्दों में, व्यक्तियों (subjects) के युग्मों के बीच भी एक नये प्रकार का विचरण उत्पन्न हो जाता है। यद्यपि प्रत्येक समूह में वही व्यक्ति रहते हैं, परन्तु एक परीक्षण के बाद उनमें कई प्रकार के अन्तर आ जाते हैं तथा वे पूर्णतया वैसे ही नहीं रहते जैसे थे। इस कारण विचरण का एक नया प्रकार जुड़ जाता है। अत: SST के तीन भाग हो जाते हैं– SS_A + SS_S + SS_W। इनमे से SS_S को वह विचरण समझा जाता है जो व्यक्तियों के एक ही समूह को भिन्न-भिन्न मापन-स्थितियों में रखने के कारण उत्पन्न हुए उनके बीच अन्तरों द्वारा पैदा होता है। इसे पंक्ति-मध्य (between rows) विचरण SS_r अथवा SS_s भी कहा जाता है। SS_A की भाँति SS_s क्रमबद्ध (systematic) विचरण होता है। समूहों के मापांकों के बीच जितना अधिक सह-सम्बन्ध होता है, क्रमबद्ध विचरण उतना ही अधिक होता है तथा त्रुटि विचरण उतना ही कम होता है। इसीलिये SS_s अथवा SS_{rows} की संगणना की जाती है। उदाहरण के पद-क्रम-4 के अन्तर्गत इसे स्पष्ट किया गया है।

स्वतंत्र समूह आकल्प एवं पुनर्मापाधारी आकल्प के बीच सांख्यिकीय विश्लेषण के दृष्टिकोण से दूसरा अन्तर त्रुटि-पद (error term) अर्थात् SS_w के चयन में होता है। स्वतन्त्र-समूह आकल्प की स्थिति में यह SS_w होता है, परन्तु पुनर्मापाधारी आकल्प में यह "शेष विचरण" (residual variance) जिसे अन्तर्क्रिया-विचरण (interaction variance) अथवा $SS_{c \times r}$ भी कहते हैं, होता है। वास्तव में पुनर्मापाधारी आकल्प की स्थिति में SS_w की संगणना समभव ही नहीं होती, परन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि SS_w तथा SS_{res}, दोनों त्रुटि का ही अनुमान (estimate) प्रस्तुत करते हैं, बल्कि SS_{res} अधिक अच्छा अनुमान समझा जाता है। अत: पुनर्मापाधारी आकल्प की स्थिति में SS_w की बजाय SS_{res} का ही एफ-मान निकालने में प्रयोग किया जाता है। इसकी संगणना जैसाकि पूर्वगत उदाहरण के पद-क्रम-5 में दर्शाया गया है SS_T से SS_A तथा SS_s दोनों के योग को घटाकर की जाती है। इसीलिये इसे "शेष विचरण" (residual अथवा remainder variance) भी कहा जाता है।

3.21 द्वि-दिक् विचरण-विश्लेषण (स्वतंत्र समूह)

पूर्वोल्लिखित विधि का प्रयोग जैसाकि उदाहण में बताया गया है, वहाँ किया जाता है जहाँ इकाइयों के एक ही समूह का आश्रित चर पर बार-बार मापन किया जाए अथवा समानीकृत समूहों का प्रयोग किया जाए, परन्तु इसका प्रयोग उस स्थिति में भी किया जा सकता है जहाँ किसी एक चर के प्रभाव को नियंत्रित करना हो। इसका एक उदाहरण नीचे दिया गया है। यह विधि द्वि-दिक् विचरण-विश्लेषण (स्वतन्त्र समूह) की श्रेणी में आती है।

उदाहरण-5

एक शोधकर्ता 11-वर्षीय बालकों के गृह-परिवेश के उनके मनोवैज्ञानिक विकास पर पड़े प्रभाव का अध्ययन करना चाहता है। वह पाँच विद्यालयों के बालकों के गृह-परिवेश एवं उनके मनोवैज्ञानिक विकास के मापांक एकत्र करता है। गृह-परिवेश पर वह विद्यालयवार बालकों के दो समूह (वांछनीय एवं अवांछनीय गृह-परिवेश वाले) बनाता है।

विद्यालयवार उनके आश्रित चर (विकास) पर प्राप्तांकों को मध्यमान के रूप में नीचे दी गई तालिका में व्यवस्थित करके एफ-टेस्ट द्वारा विश्लेषण करना चाहता है। परन्तु वह संदेह करता है कि विभिन्न विद्यालयों का वातावरण एक-दूसरे से बहुत भिन्न होने के कारण विद्यालयों का प्रभाव

गृह-परिवेश के प्रभाव को उभरने से रोक सकता है। अत: उसे नियन्त्रित किया जाना चाहिये। इसलिये वह पूर्वोक्त विधि का निम्नलिखित प्रकार प्रयोग करता है जिससे विद्यालयों का प्रभाव समाप्त हो जाए।

तालिका 3.17. गृह-परिवेश एवं मनोवैज्ञानिक विकास के मध्य संबंध (N = 9 in each Cell)

स्कूल	गृह-परिवेश		कुल
	(निम्न समूह)	(उच्च समूह)	
1	56	35	91
2	59	38	97
3	62	32	94
4	57	31	88
5	52	45	97
योग Means	286 6.36	181 4.02	467

इसे ठीक उसी तरह किया जा सकता है जैसा कि पहले उदाहरण में किया गया था जिसमें कि विषयों के मध्य अंतर होने के कारण विचरण समाप्त कर दिया गया था (पंक्तियों के मध्य अन्तर) इस पूरी प्रक्रिया को इस तरह देखें:

1. C (correction term) = $(467)^2/10 = 21808.9$

(प्रत्येक समूह के माध्य स्कोर को व्यक्तिगत स्कोर के रूप में लिया गया)

2. $SS_T - (56^2 + 59^2 \ldots\ldots 31^2 + 45^2) - C$ $\qquad = 1204.1$

3. SS_A (गृह परिवेश) $= \dfrac{286^2 + 181^2}{5} - C$ $\qquad = 1102.5$

4. $SS_{[illegible]}$ (विद्यालय) $= \dfrac{91^2 + 97^2 \ldots\ldots 88^2 + 97^2}{2} - C$

5. $SS_{[illegible]} = SS_T - (SS_A + SS_{schools})$

$= 1284.1 - (1102.5 + 30.6)$ $\qquad = 151.0$

6. Mean $SS_{(A)} = 1102.5/1$, df being 1 $\qquad = 1102.5$

7. Mean $SS_{[illegible]}$ = Mean $SS_{B \times s} = \dfrac{151 - 0}{4}$ $\qquad = 37.75$

8. $F = \dfrac{1102.5}{37.75}$ $\qquad = 29.20$

9. **निष्कर्ष**–तालिका–C में 1, 4 *df* तथा .01-स्तर पर एफ का मान है 21.27 जबकि शोधकर्ता का प्राप्त एफ-मान 29.20 है जो तालिका मान से अधिक है। अत: H_0 को

अस्वीकार किया जाता है तथा यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि गृह-परिवेश बालकों के मनोवैज्ञानिक विकास को प्रभावित करता है।

नोट

इसमें भी पूर्वोल्लिखित विधि की भाँति SST को तीन भागों में विभाजित किया जाता है– $SS_A + SS_{schools} + SS_{res}$। विद्यालयों के अन्तरों के कारण उत्पन्न विचरण $(SS_s)_{rows}$ को SS_T में से निकाल दिया जाता है। यह ध्यान में रखने की बात है कि यदि विद्यालयों के बालकों की संख्या समान है तो उनके मापांकों के मध्यमानों को एक-एक मापांक के रूप में मानकर तालिका में प्रयुक्त किया जा सकता है। संगणना के दृष्टिकोण से इससे परिणामों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यह सम्पूर्ण प्रक्रिया ठीक वैसी है जैसी उदाहरण-4 में उल्लिखित है।

त्रुटि-विचरण (SS_{res})

उदहारण-4 तथा उदाहरण-5 के अन्तर्गत जिस त्रुटि-विचरण का उल्लेख किया गया है इसके कई नाम हैं जैसे "शेष विचरण" (remainder अथवा residual variance) तथा "अन्तर्क्रिया विचरण" (interaction variance)। इसी प्रकार इसे लिखा भी कई प्रकार से जाता है जैसे SS_{res}, $SS_{e \times r}$ आदि। यह वह विचरण होता है जो उपचारों के कारण कोई अन्तर न होने पर भी रहता है तथा जिसे संयोगजन्य अथवा सम-सम्भाविक विधि द्वारा इकाइयों का चयन करने तथा समूहों में उनका वितरण करने पर भी उनके बीच रह गये अन्तरों द्वारा उत्पन्न माना जाता है। साथ ही यह वह विचरण होता है जो सम्पूर्ण विचरण में से उपचारों के विचरण (SS_A) तथा विद्यालयों के विचरण (SS_S) दोनों को निकाल देने पर शेष बचता है। इसीलिये इसे SS_w की अपेक्षा अधिक शुद्ध माना जाता है। यदि विद्यालयों के वातावरण के अन्तरों के प्रभाव, अध्ययनेतर चरों के प्रभाव एवं उपचारों के प्रभाव को पूर्णतया समाप्त कर दिया जाये तो SScxr का मान SS_w के बराबर ही होगा अन्यथा SS_{cxr} का मान SS_w से सदैव कम ही होता है। यदि यह उससे कम हो तो उसे संयोगवश ही समझना चाहिये तथा उस स्थिति में SS_w का ही एफ मान हेतु प्रयोग करना चाहिए।

3.22 द्वि-दिक् विचरण-विश्लेषण (सह-सम्बन्धी समूह)

द्वि-दिक् अथवा द्विपथ (स्वतन्त्र-समूह) विचरण विश्लेषण का उदाहरण पिछले पृष्ठों में (उदाहरण-5) में प्रस्तुत किया जा चुका है, परन्तु अनुसंधान की ऐसी स्थिति भी हो सकती है जिसमें समूह सह-सम्बन्धी अथवा समानीकृत हों। इस स्थिति में भी अनोवा का प्रयोग किया जा सकता है परन्तु इसकी विधि में पहले से थोड़ा अन्तर होता है। द्विपथ विचरण-विश्लेषण (सह-सम्बन्धी समूह) की इस विधि का उदाहरण आगे दिया गया है।

उदाहरण-6

एक शोधकर्ता 6-वर्षीय बालकों के सीखने पर अभ्यास के प्रभाव का अध्ययन करना चाहा। लिंग (sex) के प्रभाव को उसने नियन्त्रित किया। अत: 5 बालक एवं 5 बालिकाओं को उसने सम-सम्भाविक विधि से चुना तथा उन्हें पाँच अभ्यास-अन्वीक्षाओं (practice trial) के अधीन किया। प्रत्येक अन्वीक्षा के बाद उनके अधिगम का मापन किया गया। इस प्रकार जो शोध-सामग्री प्राप्त हुई उसके आधार पर आगामी तालिका तैयार की गई तथा आवश्यक विभिन्न विचरणों की संगणना की गई। सम्पूर्ण संगणना को तालिका के नीचे दर्शाया गया है:

तालिका 3.18. (द्वि-दिक् विचरण) (सह-संबंध मापक आकल्प) सीखने की प्रक्रिया

	S_s	I	II	III	IV	V	Total
	1	4	7	3	4	6	24
	2	3	4	6	9	7	29
लड़के	3	2	2	8	5	8	25
	4	5	5	5	8	5	28
	5	4	6	7	6	9	32
	Σx	18	24	29	32	35	138 (समूह-I)
	1	6	3	4	8	10	31
	2	8	5	5	7	8	33
लड़कियाँ	3	4	5	5	5	9	28
	4	3	3	6	6	10	28
	5	6	6	8	9	10	39
	Σx	27	22	28	35	47	159 (समूह-II)

इस विश्लेषण में निम्नांकित पद-क्रम शामिल हैं–

1. C = कुल संख्या को समूह I तथा समूह II में विभक्त करने पर वर्गों का कुल योग

$$= \frac{297^2}{50} = 1764.18$$

2. SSt = 1991 – 1764.18 = 226.82
3. SST = Sum of squares of the totals of all the ten groups divided by n minus the correction.

$= 18^2 + 24^2 + ... + 35^2 + 47^2/5 - 1764.18$

$$= \frac{9421}{5} - 1764.18 = 1884.2 - 1764.18 = 120.02$$

4. SS_s = Sum of squares of the totals of all the rows divided by n minus the correction term.

= 242 + 292 +....... 282 + 392/5 – 1764.18

$$= \frac{8989}{5} - 1764.18 = 1797.8 - 1764.18 = 33.62$$

5. SS_{Trials} = Sum of squares of the totals of all the trials (column sum of scores for boys and girls both for each trial divided by n minus correction).

$$= \frac{45^2 + 46^2 + 57^2 + 67^2 + 82^2}{10} - 1764.18$$

= 18603/10 – 1764.18

= 1860.3 – 1764.18 = 96.12

नोट

नोट

6. SS_G = Sum of Squares between Groups of boys and girls

$$= \frac{138^2 + 159^2}{25} - 1764.18$$

$$= \frac{44325}{25} - 1764.18 = 1773 - 1764.18 = 8.82$$

7. SS_w = Within groups sum of squares.

This is obtained by subtracting between-groups variance from SSs (sum of squares among subjects).

33.62 – 8.82 = 24.8

8. SS_s × Trials = This can be obtained by subtracting SSs and SSTrials from SSt (total sum of squares).

226.82 – (33.62 + 96.12) = 97.08

9. $SS_{Groups \times Trials}$

This we can get by subtracting SSGroups (Sum of squares between groups) and SSTrials from SSTr as follows:

120.02 – (8.82 + 96.12) = 15.08

10. Pooled $SS_{s \times Trials}$

This we can get by subtracting $SS_{groups \times Trials}$ from $SS_{s \times Trial}$. It is used as the error term for determining the significance of treatments. = 97.08 – 15.08 = 82.0

सारांश तालिका 3.19

विचलन के स्रोत	SS	df	MeanSS	F
Groups (Sex)	8.82	1	8.82	3.44 Sig. at .05 level
Within groups (error)	24.80	8	3.10	9.386**
Trials	96.12	4	24.03	1.472 Not Sig.
Group × Trials	15.08	5	3.77	
Pooled $SS_{x \times Trials}$	82.00	32	2.56	

** Sig. at .01 level.

निष्कर्ष–एफ तालिका–C में 4, 32 *df* तथा .01–स्तर पर F का मान है 4-02 *wf* जबकि अभ्यास का प्राप्त F–मान है 9.386 जो तालिका–मान से बहुत अधिक है। अत: H_0 को अस्वीकार किया गया तथा यह निष्कर्ष निकाला गया है कि अभ्यास का अधिगम पर निश्चित प्रभाव पड़ता है। लिंग (sex) की F-ratio भी .05 स्तर पर सार्थक है। अत: स्वीकार करना होगा कि लिंग का प्रभाव भी अधिगम पर पड़ता है अर्थात् बालक एवं बालिकाओं के अधिगम में अन्तर होता है, परन्तु अन्तर्क्रिया–विचरण (1.472) सार्थक नहीं है जिसके आधार पर कहना होगा पड़ेगा कि अभ्यास तथा लिंग दोनों जब एक–दूसरे के साथ अन्तर्क्रिया करते हैं तो उसका अधिगत पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता।

द्वि–दिक् अनोवा (सह–सम्बन्धी समूह) का प्रयोग वहाँ किया जाता है जहाँ दो स्वतन्त्र चर हों तथा इकाइयों के एक ही समूह का आश्रित चर पर मापन बार–बार किया गया हो। इसका प्रयोग

वहाँ भी किया जा सकता है जहाँ किसी एक चर के प्रभाव को नियन्त्रित करके दूसरे के प्रभाव का अध्ययन किया जाना हो।

3.23 सम-सम्भाविक संवर्ग-आकल्प

नोट

इस अध्याय के आरम्भ में "सम-सम्भाविक समूह आकल्प" का वर्णन किया गया था जिसमें इकाइयों को सम-सम्भाविक विधि से समूहों में वितरित किया जाता है तथा यह मान लिया जाता है कि समूह अध्ययनेतर चरों के दृष्टिकोण से समरूप हो गये, परन्तु वास्तव में समरूप हो नहीं पाते। उनकी इकाइयों में फिर भी अन्तर रह जाते हैं जिनके कारण अनुसंधान की शुद्धता (accuracy) कम हो जाती है। इकाइयों, विशेष रूप से मनुष्यों, के बीच अनेक प्रकार की विभिन्नतायें पाई जाती हैं। समूहों में उनका सम-सम्भाविक वितरण इन अन्तरों एवं भिन्नताओं को पूर्णतया समाप्त करने में सक्षम नहीं होता। परिणामस्वरूप उपचारों के प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं हो पाते । अत: इन अन्तरों को और भी कम करने तथा अनुसंधान की शुद्धता अथवा आन्तरिक वैधता बढ़ाने के उद्देश्य से शोध कर्ता एक अन्य आकल्प का प्रयोग करते हैं जिसे "सम-सम्भाविक संवर्ग आकल्प" (randomized block-design) कहते हैं। संक्षेप में इसे RB-*k* आकल्प के रूप में लिखा जाता है जिसका अर्थ है k संख्या-समूह आधारित सम-समभाविक संवर्ग आकल्प। इस आकल्प के द्वारा शोध-सामग्री प्राप्त होती है उसका विचरण-विश्लेषण भी उदाहरण-5 में दी गई विधि के अनुरूप होता है, जिसमें त्रुटि-पद (error term) के स्थान पर SS_w का प्रयोग न करके $SS_{e \times r}$ का प्रयोग किया जाता है। आगे दिये गये उदाहरण में इसकी सम्पूर्ण प्रक्रिया का वर्णन किया गया है।

उदाहरण-7

एक शोधकर्ता 11-वर्षीय बालकों के अधिगम पर व्यवहार-नियन्त्रण की दो तकनीकों (प्रशंसा एवं दण्ड) के प्रभाव का अध्ययन करना चाहता था। साथ ही बुद्धि को नियंत्रित करना चाहता था क्योंकि बुद्धि अधिगम का प्रमुख कारक तत्व समझा जाता है। अत: उसने बुद्धि पर 3-3 बालकों के समान बुद्धि वाले पाँच संवर्ग (blocks) बनाये। एक संवर्ग में तीन बालकों की क्रमश: 119, 120, 121 बुद्धि-लब्धि थी, दूसरे में 110, 111, 112 बुद्धि-लब्धि थी, तीसरे में 99, 100, 101 चौथे में 90, 91, 92 तथा पाँचवें में 81, 82, 83 बुद्धि-लब्धि थी। प्रत्येक संवर्ग में से एक-एक बालक को सम-सम्भाविक विधि से उसने तीन समूहों (प्रशंसित समूह, दण्डित समूह, नियन्त्रित समूह) में वितरित किया। प्रयोग एक माह तक चला। उसके बाद उनके अधिगम का मापन किया गया। समस्त सामग्री को निम्न प्रकार तालिका में समाहित किया गया। इसके पश्चात् विचरण-विश्लेषण किया गया। सम्पूर्ण संगणन-प्रक्रिया तालिका में नीचे दी गई है:

तालिका 3.20. सम-संभाविक संवर्ग आकल्प

संवर्ग	पुरस्कृत समूह	दंडित समूह	नियंत्रित समूह	योग
1	14	13	10	37
2	13	14	11	38
3	15	10	12	37
4	18	14	13	45
5	10	11	14	35
Sum	70	62	60	192

नोट

Now, the ANOVA was carried out. The following values were computed stepwise.

1. $C = (192)^2/15 = 2457.6$
2. $SS_T = 14^2 + 13^2 .... 13^2 + 14^2) - 2457.6$
   $= 2526 - 2457.6 = 68.4$
3. $SS_A = \frac{70^2 + 62^2 + 60^2}{5} 5 - 2457.6 = 2468.8 - 2457.6 = 11.2$
4. $SS_{Blocks} = \frac{37^2 + 38^2 + 37^2 + 45^2 + 35^2}{5} - 2457.6$
   $= 2477.3 - 2457.6 = 19.7$
5. $SS_{e \times r} = SS_T - (SS_A + SS_{Blocks}) = 68.4 - (11.2 + 19.73)$
   $= 68.4 - 30.93 = 37.47$
6. Mean $SS_A = \frac{11.2}{2} = 5.6$, *df* being 2
7. Mean $SS_{c \times r} = \frac{37.47}{8} = 4.68$ *df* being 8 (2 × 4, i.e., 2 for columns and 4 for rows)
8. F-ratio $= \frac{Mss_{(A)}}{MSS_{(C \times r)}} =$ $= 1.196$
9. **निष्कर्ष**–प्राप्त F-ratio (1.196) तालिका–C में 2, 8 *df* तथा .05–स्तर पर दिये गये मान 4.46 से कम है। अत: H_0 को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। यह निष्कर्ष निकला कि व्यवहार–नियंत्रण की विधियों में कोई अन्तर नहीं है। उनका अधिगम पर समान प्रभाव पड़ता है।

सरलता से इस बात को जाना जा सकता है कि $SS_{block \times treatment}$ अर्थात् शेष विचरण SS_w से कभी भी अधिक नहीं हो सकती। इसका परिमाण (size) SS_{blocks} के परिमाण पर निर्भर करता है। यदि यह बड़ा होगा तो $SS_{c \times r}$ का परिमाण छोटा होगा।

RB-*k* आकल्प की उपयोगिता

इस आकल्प के निम्नलिखित लाभ हैं–

1. इसमें इकाइयों के बीच स्थित अन्तर कम हो जाते हैं क्योंकि उन्हें समान बनाकर संवर्गो में वितरित किया जाता है। इस कारण त्रुटि–विचरण SS_w भी कम हो जाता है तथा अनुसंधान की आन्तरिक वैधता बढ़ जाती है।
2. संवर्गो में अन्तर होने के कारण जो विचरण उत्पन्न होता है उसे भी निकाल दिया जाता है। अत: इस कारण त्रुटि भी कम हो जाती है।
3. स्वतन्त्र समूह–सम्भाविक आकल्प की तुलना में यह आकल्प श्रेष्ठ है। इसकी प्रभाविकता (efficiency) की संगणना भी सूत्र $\frac{\text{Mean } SS_w}{\text{Mean } SS_{c \times r}} \times 100$ आधार पर की जा सकती

है। इससे स्पष्ट है कि यह आकल्प सम-सम्भाविक समूह आकल्प की तुलना में अधिक शक्तिशाली है।

4. यह आकल्प अत्यन्त लचीला है। संवर्गो तथा उपचार के कितने ही स्तरों को लेकर यह विश्लेषण किया जा सकता है।
5. विश्लेषण की सरलता इसकी अतिरिक्त विशेषता है।

नोट

दोष–इस आकल्प का एक दोष, उसकी एक असुविधा भी है। जब उपचारों की संख्या अधिक होती है। तो संवर्गों में समरूप इकाइयों की संख्या अधिक होने के कारण उन्हें समरूप बनाना कठिन हो जाता है। एक संवर्ग में इतनी अधिक समान इकाइयों का मिलना बहुत असुविधाजनक हो जाता है और यदि एक से अधिक चरों पर उन्हें समान बनाना हो तो यह और अधिक कठिन हो जाता है।

3.24 सह-विचरण विश्लेषण

प्रयोगात्मक अनुसंधान में अध्ययनेतर चरों का नियंत्रण अत्यन्त आवश्यक समझा जाता है क्योंकि उसके अभाव में परिणाम अधिक शुद्ध एवं वैध नहीं हो पाते। इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु कई उपायों एवं विधियों का उल्लेख किया गया है। इनमें से एक सह-विचरण-विश्लेषण (analysis of covariance) हैं। इसे संक्षेप में "अनकोवा" (ANCOVA) भी कहते हैं। यह अनोवा का ही विस्तार-रूप है। अनकोवा चरों के नियंत्रण की एक सांख्यिकीय विधि है। इससे अनुसंधान के परिणामों की शुद्धता एवं वैधता बढ़ जाती है। पिछले उदाहरण में सम-सम्भाविक संवर्ग आकल्प का वर्णन किया गया था जिसमें बुद्धि पर इकाइयों को समान बनाकर उन्हें उपचारों के अन्तर्गत वितरित किया गया था इस प्रकार बुद्धि को नियन्त्रित किया गया था। सहविचरण-विश्लेषण में ऐसा न करके उसका मापन किया जा सकता है और सांख्यिकीय विश्लेषण के द्वारा उसके प्रभाव को निष्कासित किया जा सकता है। उपचारों के विचरण (SS_{Tr}) में सांख्यिकीय विधि से संशोधन करके सहचर (covariate) बुद्धि पर आरम्भ में इकाइयों के बीच स्थित अन्तरों के कारण उत्पन्न प्रभाव को निष्कासित किया जा सकता है। बाद वाले मापांकों के प्रारम्भिक मापांकों पर प्रतिगमन प्रभाव जिसे अन्त: समूह प्रतिगमन कहते हैं, के माध्यम से ऐसा सम्भव हो जाता है। इस प्रकार सहविचरण-विश्लेषण एक ऐसी सांख्यिकीय विधि है जिसमें विभिन्न उपचारों के विचरणों के बीच अन्तरों की सार्थकता की परीक्षा तक की जाती है, जब उनमें से उस विचरण को निकाल दिया जाता है जो आरम्भ में अध्ययनेतर चर अथवा चरों के कारण उनके बीच उत्पन्न हुई थी। दूसरे शब्दों में, अन्तर्समूह विचरण में से सहचरों में प्रारम्भिक अन्तरों द्वारा उत्पन्न हुये विचरण को निकालकर अर्थात् उसे संशोधित करके यह विश्लेषण किया जाता है। अत: $SS_{T(y)}$, $SS_{A(y)}$ तथा $SS_{w(y)}$ में से उस विचरण को निकाल दिया जाता है जो X (सहचर) तथा Y (उपचार) के बीच सह-सम्बन्ध होने के कारण उत्पन्न होता है। इस प्रकार अन्तिम विश्लेषण इन संशोधित विचरणों के आधार पर ही किया जाता है। आगामी उदाहरण से यह स्पष्ट हो जायेगा।

निम्नांकित तालिका में X मान लीजिये चर बुद्धि है तथा Y बालकों की अधिगम उपलब्धि है। तीन उपचार समूह (प्रशंसित, दण्डित एवं नियंत्रित) हैं। शोधकर्ता यह जानना चाहता है कि क्या बालकों की अधिगम उपलब्धि पर इन उपचारों का सार्थक रूप से अलग-अलग प्रभाव पड़ता है, परन्तु बुद्धि के प्रभाव को वह नियंत्रित करना चाहता है। सम्पूर्ण शोध-सामग्री तालिका में प्रस्तुत की गई है तथा विश्लेषण की प्रक्रिया का पद-क्रम भी उसके नीचे दिया गया है।

नोट

उदाहरण-8

तालिका 3.21. सह-विचरण विश्लेषण

प्रशंसित समूह			दण्डित समूह			नियंत्रित समूह		
X_1	Y_1	X_1Y_1	X_2	Y_2	X_2Y_2	X_3	Y_3	X_3Y_3
33	18	594	34	31	1054	34	15	510
42	34	1428	55	45	2475	4	08	32
40	22	880	09	1	0009	12	18	216
31	24	744	50	33	1650	16	15	240
Sum 146	98	3646	148	110	5188	66	56	998

1. First of all, we have to find out three correction terms for X, Y and XY:

   (a) C_x (correction term for X) = (146 + 148 + 66)2/12

   = (360)2/12 = 10800.0

   (b) C_y (correction term for Y) = (98 + 110 + 56)2/12 = 5808.00 (c) Cxy (correction term for XY) = (Σx) (ΣY)/N

   $$= \frac{360 \times 264}{12} = 7920.00$$

2. Now, total sum of squares have to calculated for X, Y and XY: (a) $SS_{T(x)} = (33^2 + 42^2 .... 12^2 + 16^2) - C$

   = 13748.0 – 10800.0

   = 2948.0

   (b) $SS_{T(Y)} = (18^2 + 34^2 ..... 18^2 + 15^2) - C$

   = 7454.0 – 5808

   = 1646.0

   (c) $SS_{T(Xy)}$ = Sum of XY total for each treatment group-C

   = (3646 + 5188 + 998) – C

   = 9832 – 7920

   = 1921.0

3. Now, we have to calculate between-groups sum of squares for X, Y and XY as follows:

   (a) $SS_{A(x)} = \frac{146^3 + 148^2 + 66^3}{4} - C$

   = 11894.0 – 10800.0 = 1094.0

नोट

(b) $SS_{A(y)} = \frac{98^2 + 110^2 + 56^2}{4} C$

$= 6210.0 - 5808.0 = 402.0$

(c) $SS_{A(xy)} = \frac{X1Y1 + X2Y2 + X3Y3}{4} - C$

$\frac{146 \times 98 + 148 \times 110 + 66 \times 56}{4} - C$

$= 8571 - 7920$

$= 651.0$

4. Now, SS_w for X, Y and XY can be calculated by just subtracting SS_A from SS_r.
   (a) $SS_w(x) = 2948.0 - 1094.0 = 1854.0$
   (b) $SS_w(y) = 1646.0 - 402 = 1244.0$
   (c) $SS_w(xy) = 1912.0 - 651.0 = 1261.0$

Upto this point the calculations were done exactly in the same way as they were done in case of simple analysis of variance. After this, now, adjusted values of $SS_T(y)$ and $SS_w(y)$ have to be calculated. It is here stage that adjustment for initial differences on the covariate X has to be made. The procedure is as follows:

5. (a) Adj. $SS_{T(y)} = SS_{T(y)} - \frac{SS^2_{r(xy)}}{SS_{T(x)}} = 1646.0 - \frac{(1912)^2}{2948} = 405.93$

   (b) Adj. $SS_{w(y)} = SS_{w(y)} - \frac{SS^2_{w(xy)}}{SS_{w(x)}} = 1244.0 - \frac{(1261)^2}{1854} = 386.33$

   (c) Adj. $SS_{A(y)} = 405.93 - 386.33 = 19.6$

   Adj. $SS_{A(y)}$ is calculated by subtracting Adj. $SS_{W(y)}$ from Adj. $SS_{T(y)}$

6. Next step is to convert Adj. $SS_{A(y)}$ and $SS_{W(y)}$ into mean squares by dividing them by their dergees of freedom as follows:

   (a) Mean Adj. $SS_{A(y)} = \frac{19.6}{2} = 9.8$ *df* being 2

   (b) Mean $SS_{w(y)} = \frac{386.33}{8} = 48.29$, *df* being 8 as one more *df* is lost in case to ANCOVA as compared to ANOVA.

7. F-ratio $= \frac{\text{Mean Adj. } SS_{A(y)}}{\text{Mean Adj. } SS_{w(y)}} = \frac{9.8}{48.29}$ Not Sig.

8. **निष्कर्ष–** H_0 को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। Mean Adj. $SS._{A(y)}$ का मान Mean Adj $SS_{W(y)}$ के मान से कम है। अत: F-ratio निकालने की आवश्यकता ही नहीं है। वह इससे भी कम होगा। अत: सार्थक नहीं हो सकता। इसलिए निष्कर्ष यह निकला कि

बुद्धि को नियन्त्रित करने के बाद उपचारों का कोई प्रभाव बालकों की अधिगम उपलब्धि पर नहीं पड़ता।

अनकोवा निहित अभिधारणाएँ

नोट

अनकोवा का प्रयोग जिन शर्तों अथवा अभिधारणाओं पर आधारित है। वे हैं:

सावधाानी उपचार-समूहों को सम-सम्भाविक विधि द्वारा एक ही जनसृष्टि से चुना जाना चाहिये।

1. अन्त: समूह संशोधित मापांकों का वितरण सम होना चाहिये।
2. उपचार समूहों को समरूप (homogeneous) होना चाहिये।
3. Y मापांकों (बाद वाले) का X मापांक (प्रारम्भिक) पर प्रतिगमन प्रत्येक उपचार समूह में समान होना चाहिये।
4. प्रतिगमन रेखीय (linear) होना चाहिये।

अनकोवा की उपयोगिता

निम्नलिखित परिस्थितियों में अनकोवा की बहुत अधिक उपयोगिता होती है:

1. जहाँ यथास्थित (intact) समूहों का प्रयोग किया जाता है, जैसे–शिक्षा के क्षेत्र में किन्हीं स्कूलों की पूरी कक्षा पर प्रयोग करना क्योंकि कक्षा से केवल कुछ छात्रों को अलग निकालकर उन पर प्रयोग करना सम्भव नहीं होता। उस स्थिति में इकाइयों को सम-सम्भाविक विधि से समूहों में वितरित करना भी सम्भव नहीं होता, परन्तु स्कूल बहुत से दृष्टिकोणों से एक-दूसरे से भिन्न होते हैं। अत: उनके बीच अन्तरों का कुप्रभाव परिणामों पर पड़ता है। उसे समाप्त करने के लिये एक दो महत्त्वपूर्ण चरों का नियन्त्रण अनकोवा के माध्यम से किया जा सकता है।
2. आरम्भ में यदि किसी चर पर इकाइयों के बीच अन्तर होने का आभास न हुआ हो तथा बाद में उसके प्रभाव को निष्कासित करना आवश्यक हो तो अनकोवा का प्रयोग सहायक सिद्ध होता है।

बहु-सहविचरण विश्लेषण

ऊपर एक सहचर (covariate) का उदाहरण प्रस्तुत किया गया है, परन्तु सहविचरण-विश्लेषण का प्रयोग उस स्थिति में भी किया जा सकता है जहाँ एक से अधिक सहचरों (covariates) को नियन्त्रित करना हो। दो सहचरों तक तो संगणना सरल होती है, परन्तु एक से अधिक सहचरों का नियंत्रण करना हो तो संगणना बहुत लम्बी तथा कठिन होती है, परन्तु नियमों में कोई परिवर्तन नहीं होता। इस विधि का सम-सम्भाविक संवर्ग आकल्प के साथ भी प्रयोग किया जा सकता है। लैटिन वर्ग आकल्प तथा हत-आकल्प (factorial designs) के साथ-साथ भी प्रयोग किया जा सकता है। **किर्क** (1968) तथा **लिंडक्विस्ट** (1970) ने इनका विस्तार से वर्णन किया है।

3.25 लैटिन वर्ग आकल्प (L.S.D)

यह आकल्प सम-सम्भाविक संवर्ग आकल्प से भी श्रेष्ठ है। इसमें दो अध्ययनेतर चरों का नियन्त्रण किया जा सकता है। संवर्ग आकल्प की भाँति इसमें भी समूहों को समरूप बनाने के लिये संवर्गों का प्रयोग किया जाता है, परन्तु इसमें दो अध्ययनेतर चरों पर समान संवर्ग बनाये जाते हैं। इस प्रकार

प्रत्येक संवर्ग की इकाइयाँ कम से कम उन दो चरों पर समान हो जाती हैं। इन अध्ययनेतर चरों के विभिन्न स्तरों को स्तम्भों एवं पंक्तियों में वितरित कर दिया जाता है। इस प्रकार लैटिन वर्ग आकल्प (L.S.D.) में अध्ययनेतर चरों के प्रभावों के विषय में जानकारी मिल जाती है।

नोट

अभिधारणाएँ

इस आकल्प का प्रयोग तभी सम्भव होता है:

जब संवर्गाधीन (blocking variables) तथा उपचारों की संख्या बराबर हो। उपचारों को पंक्तियों में तथा स्तम्भों में सम-सम्भाविक विधि से वितरित किया जाता है। साथ ही यह बात भी ध्यान में रखने की है कि प्रत्येक उपचार, प्रत्येक स्तम्भ तथा पंक्ति में एक ही बार आना चाहिए। पंक्ति तथा स्तम्भ के प्रत्येक कोषा (cell) में एक ही उपचार आना चाहिए।

एक यह भी शर्त है इस आकल्प की कि उपचारों के प्रभाव जोड़े जा सकने वाले (additive) होने चाहिए तथा स्तम्भों एवं पंक्तियों के साथ उनकी अन्तर्क्रिया नहीं होनी चाहिए। साथ ही स्तम्भों तथा प्रक्तियों की भी एक-दूसरे के साथ अन्तर्क्रिया नहीं होनी चाहिए। नीचे एक उदाहरण द्वारा इसके उपयोग की प्रक्रिया को समझाया गया है।

मान लीजिये एक शोधकर्ता चूहों की सामान्य क्रियाशीलता पर एक औषधि की पाँच मात्राओं के प्रभाव का अध्ययन करना चाहता है, परन्तु वह सोचता है कि चूहों की उम्र भी एक ऐसा तत्व है जो उनकी क्रियाशीलता को प्रभावित कर सकता है। अत: उम्र को नियन्त्रित करने के लिए वह चूहों के समान उम्र वाले पाँच संवर्ग बनाता है–एक में 5-6 माह, दूसरे में 7-8, तीसरे में 9 से 10, चौथे में 11 से 12 तथा पाँचवें में 13 से 14 माह के चूहे रखता है। प्रत्येक संवर्ग में 5 चूहे रखता है। यदि प्रयोग इस प्रकार का है कि एक दिन में केवल 5 चूहों की परीक्षा ही की जा सकती है तो वह सोचता है कि दिन-प्रतिदिन होने वाले परिवर्तन भी परिणाम को प्रभावित कर सकते हैं तो उन्हें भी वह नियन्त्रित करने का प्रयास करता है। इन सब बातों को ध्यान में रखकर वह शोध-सामग्री को विश्लेषण हेतु व्यवस्थित करने के लिये निम्न प्रकार से एक तालिका तैयार करता है। इसमें दिनों को ऊपर स्तम्भ-शीर्षकों के रूप में तथा उम्र के संवर्गों को बायीं ओर ऊपर से नीचे की ओर रखता है। फिर चूहें के प्रत्येक संवर्ग में से एक-एक लेकर सम-सम्भाविक विधि से पाँच दिनों में अलग-अलग वितरण करता है। उक्त तालिका इस प्रकार का रूप लेती है:

उदाहरण–9

तालिका 3.22. लैटिन वर्ग आकल्प

उम्र महीनों में	दिन				
	सोम.	मंगल.	बुध.	बृ.	शुक्र.
13–14	1	3	4	2	5
11–12	5	4	3	1	2
9–10	2	5	1	4	3
7–8	4	2	5	3	1
5–6	3	1	2	5	4

इसके बाद उपचारों (औषधि) की विभिन्न मात्राओं को सम-सम्भाविक विधि से प्रत्येक स्तम्भ एवं पंक्ति में आरोपित किया जाता है, परन्तु यह शर्त रहती है कि प्रत्येक उपचार पंक्ति एवं स्तम्भ

में केवल एक ही बार आये। इस प्रकार वितरित उपचारों की जो व्यवस्था बनती है वह आगे दी गई तालिका में प्रस्तुत की गई है:

तालिका 3.23. उपचारों की व्यवस्था

नोट

उम्र महीनों में	दिन				
	सोम.	मंगल.	बुध.	बृ.	शुक्र.
13–14	A	E	C	B	D
11–12	D	C	B	A	E
9–10	E	A	D	C	B
7–8	B	D	A	E	C
5–6	C	B	E	D	A

These A, B, C, D and E letters denote five levels of durg in which:

A = 10 mg, B = 15 mg,

C = 20 mg, D = 25 mg.

E = 30 mg,

Suppose the experiment was conducted and the researcher obtained following scores on the dependent variable.

तालिका 3.24. लैटिन वर्ग आकल्प आँकड़ा

उम्र महीनों में	दिन					
	सोम.	मंगल.	बुध.	वृ.	शुक्र.	कुल
13–14	8	10	4	6	10	38
11–12	8	2	4	14	15	43
9–10	12	10	6	5	9	42
7–8	5	4	12	14	3	38
5–6	3	7	12	7	10	39
	36	33	38	46	47	200

The analysis of the data cast in this table is done as follows:

1. $C = \frac{\Sigma X^2}{N} = \frac{200^2}{25} = 1600.00$

2. SS_t = Sum of sequars of all scores in the cells minus the correction term.

   = 1948.0 – 1600.0 = 348.0

3. SS_{age} = Sum of squares of all the row totals divided by n minus the correction term.

$$= \frac{38^2 + 43^2 + 42^2 + 38^2 + 39^2}{5} - 1600$$

$$= \frac{8022}{5} - 1600 = 4.4$$

4. SS_{Days} = Sum of squares of column totals divided by column n

$$= \frac{33^2 + 33^2 + 38^2 + 46^2 + 47^2}{5} - 1600$$

$$= 1630.8 - 1600 = 30.8$$

नोट

We, now, have to find out the sum of all scores for A, B, C, D and E with the help of table-1- How to do it is demonstrated below:

A = 8 + 10 + 12 + 14 + 10 = 54, i.e., A में पाँचों कॉलम के सभी आँकड़ों का योग।

B = 5 + 7 + 4 + 6 + 9 = 31, i.e., B में पाँचों कॉलम के सभी आँकड़ों का योग।

C = 3 + 2 + 4 + 5 + 3 = 17, i.e., C 25में पाँचों कॉलम के सभी आँकड़ों का योग।

D = 8 + 4 + 6 + 7 + 10 = 35, i.e., D में पाँचों कॉलम के सभी आँकड़ों का योग।

E = 12 + 10 + 12 + 14 + 15 = 63, i.e., E में पाँचों कॉलम के सभी आँकड़ों का योग।

5. $SS_{Tr} = \frac{54^2 + 31^2 + 17^2 + 35^2 + 63^2}{5} - 1600$

$$= \frac{9360}{5} - 1600 = 1872 - 1600 = 272.0$$

6. $SS_W = SS_{TC} - (SS_{age} + SS_{days} + SS_{T_r})$

$$= 348 - (4.4 + 30.8 + 272.0) = 348 - 307.2 = 40.8$$

तालिका 3.25. परिणामों का सारांश

विवरण के स्त्रोत	SS	df	Mean SS	F
उम्र	4.4	4	11	
दिन	30.8	272.0	7.7	2.26
उपचार (Drugs)	272.0	4	68.0	20.00
गलती	40.8	12	3.4	

इस प्रकार प्राप्त परिणामों से स्पष्ट होता है कि औषधि की विभिन्न मात्राओं का चूहों की क्रियाशीलता के स्तर पर अलग-अलग सार्थक प्रभाव पड़ता है क्योंकि उपचारों के विचरणों के अन्तर .01 -स्तर पर सार्थक हैं। उपरोक्त उदाहरण में उपचारों का एफ-मान (20.0) है जो 4, 12 *df* पर 01-स्तर पर सार्थक है। अत: निष्कर्ष निकलता है कि औषधि चूहों की क्रियाशीलता को प्रभावित करती है।

लैटिन वर्ग आकल्प के प्रयोग

यह आकल्प उस स्थिति में बहुत उपयोगी है जहाँ शोधकर्ता दो अध्ययनेतर चरों के प्रभाव को नियन्त्रित करना चाहता है। ये चर वे होते हैं जो आश्रित चर से सम्बन्धित होते हैं तथा उन्हें नियन्त्रित नहीं किया जाता तो परिणामों की शुद्धता एवं वैधता संदिग्ध हो जाती है। अत: इन्हें संवर्गीकरण (blocking) के माध्यम से निष्क्रिय किया जाता है। जीव-विज्ञान एवं औषधि विज्ञान में L.S.D. का

नोट

बड़ा महत्त्व है क्योंकि इनमें इकाइयों के बीच स्थित अन्तरों के प्रभाव को समाप्त करके औषधि अथवा स्वतन्त्र चरों के प्रभाव का जीवों के व्यवहार पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया जाता है। संवर्गीकरण के माध्यम से इन अध्ययनेतर चरों के प्रभाव को इस आकल्प में शून्य बना दिया जाता है। इन चरों पर इकाइयों को समान बनाकर उन्हें एक संवर्ग में रखा जाता है। इस प्रकार कई संवर्ग बनाकर इस आकल्प का प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के लिये, यदि भार एवं आकार (size) के आधार पर संवर्ग बनाने हैं तो इस प्रकार बनेंगे:

तालिका 3.26

	Size		
वजन	**छोटा**	**मध्यम**	**ऊँचा**
40 – 50 kg.			
60 – 70 kg.			
80 – 90 kg.			

इस प्रकार, भार एवं आकार के विभिन्न स्तरों को स्तम्भ तथा पंक्तियों में वितरित किया जा सकता है और उनके प्रभाव को प्रयोग से निष्कासित किया जा सकता है। इसकी दूसरी उपयोगिता उपचारों में क्रम प्रतितोलक (counter balancing) में होती है जैसाकि आगे वाली तालिका में दिखाया गया है:

तालिका 3.27

	क्रम-1	**क्रम-2**	**क्रम-3**
समूह-1	a_3	a_1	a_2
समूह-2	a_1	a_2	a_3
समूह-3	a_2	a_3	a_1

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि प्रत्येक उपचार क्रम के अन्तर्गत समान रूप से घटित होता है। पूर्ण सम-सम्भाविक समूह तथा संवर्ग आकल्पों एवं एल. एस. डी. आकल्पों की त्रुटि की तुलना इसे इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है:

पूर्ण-सम-सम्भाविक समूह आकल्प त्रुटि = पूर्ण विचरण (SS_T) -उपचार विचरण (SS_{Tr}) सम-सम्भाविक संवर्ग आकल्प में त्रुटि = $SS_{Tr} - SS_{blocks}$ i.e., $SS_{Tr} - SS_{rows}$ परन्तु एल. एस. डी. में त्रुटि = $SS_{Tr} - (SS_{rows} + SS_{columns})$.

स्पष्ट है कि एल. एस. डी. में $SS_{columns}$ के कारण उत्पन्न त्रुटि का एक अतिरिक्त भाग कम हो जाने से वह उपरोक्त दोनों की तुलना में कम होती है।

सम-सम्भाविक वर्गों की स्वतन्त्र अभ्यावृत्ति

इस आकल्प में स्वतंत्र्यांशों की कमी हो जाती है क्योंकि स्तम्भों तथा पंक्तियों दोनों के *df* को SS_w के *df* में से घटाया जाता है। इस कारण यह आवश्यक हो जाता है कि अधिक *df* के साथ SSW का मान निकाला जाये। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु सम्पूर्ण प्रयोग के अतिरिक्त लैटिन वर्गों की स्वतन्त्र रूप से लेकर अभ्यावृत्ति (replication) की जाये। ये लैटिन वर्ग पहले वाले वर्गों से स्वतन्त्र

होने चाहिये तथा सम-सम्भाविक विधि से उनका चयन किया जाना चाहिये। इन सभी लैटिन वर्गों को एक साथ मिलाकर विश्लेषण करने पर *df* की संख्या बढ़ जाती है तथा अधिक शुद्ध परिणाम प्राप्त होते हैं। इससे उपचारों के प्रभाव भी अधिक स्पष्ट रूप से उभर आते हैं।

नोट

3.26 सारांश

किसी समस्या के कथन से उसके समाधान हेतु एक से अधिक परिकल्पनाओं का प्रतिपादन किया जाता है। शोध प्रक्रिया में परिकल्पना की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। परिकल्पना शोध प्रक्रिया की केन्द्र बिन्दु होती है जो न्यादर्श के चयन, मापन प्रविधियों, शोध प्रारूप, प्रदत्तों के संकलन एवं विश्लेषण की सांख्यिकी प्रविधि के चयन में सहायता करती है। एच.एच. मैकासन का कथन है, शोध का लक्ष्य परिकल्पना का प्रतिपादन करना और उसकी पुष्टि करना नहीं होता है अपितु नवीन तथा नये तथ्यों की खोज करना है। परिकल्पना का निर्माण कर लेने के पश्चात् शोधकर्ता उसका परीक्षण करता है। परीक्षण के आधार पर ही यह निष्कर्ष उपलब्ध होता है कि वह परिकल्पना समस्या का समाधान प्रस्तुत करती है अथवा नहीं।

प्राचलीय परीक्षाओं का प्रयोग जनसंख्या-विशेषताओं (प्राचलों) के विषय में कुछ अवधारणाओं पर आधारित होता है। ठीक इसके विपरीत अप्राचलीय परीक्षाएँ जनसंख्या के प्राचलों के विषय में कोई शर्तें नहीं लगातीं। इसीलिए उन्हें अप्राचलीय परीक्षाएँ कहते हैं।

प्रयोगात्मक शोध-सामग्री के विश्लेषण का प्रथम द्वार, जहाँ से प्रवेश करना होता है, अप्रतिष्ठेय उपकल्पना है। इसका आविष्कार दिवंगत वैज्ञानिक गणितज्ञ रोनाल्ड फिशर ने किया था। यदि स्वतन्त्र चर पर केवल समूहों की रचना की गई है अर्थात् स्वतन्त्र चर का प्रहस्तन (manipulation) केवल दो श्रेणियों में किया गया है तथा केवल इन दो समूहों की ही तुलना आश्रित चर पर की जानी है तो उस स्थिति में टी-टेस्ट का प्रयोग किया जाता है।

टी-टेस्ट की भाँति यह परीक्षा भी जिसे एफ-टेस्ट भी कहा जाता है, एक प्राचलीय परीक्षा है। यह एक अत्यन्त अतिप्रयुक्त परीक्षा है जिसके अनेक परिवर्तित रूप हैं तथा जिसका अनेक अनुसंधान परिस्थितियों में प्रयोग किया जा सकता है।

3.27 अभ्यास-प्रश्न

1. परिकल्पना के प्रतिपादन से आप क्या समझते हैं?
2. परिकल्पना के परीक्षण का वर्णन करें।
3. परिकल्पनाओं की पुष्टि हेतु औपचारिक परिस्थितियों का वर्णन करें।
4. सह-संबंध से क्या तात्पर्य है? क्या यह हमेशा दो चर राशियों के बीच कारण एवं प्रभाव संबंधों को दर्शाता है।
5. कार्ल पियर्सन के सह-संबंध गुणांक की मुख्य विशेषताएँ क्या हैं। यह फार्मूला कौन से अवधारणाओं पर आधारित है?
6. सह-संबंध गुणांक से क्या समझते हो? इसके सामान्य नियम की व्याख्या करें।
7. अप्राचलीय परीक्षाओं से क्या समझते हैं? इनके गुण एवं दोषों का वर्णन करें।
8. काई-वर्ग आकल्प से क्या समझते हैं? इसके प्रकारों का वर्णन करें।

नोट

9. दो-स्वतंत्र समूह आकल्प से क्या समझते हैं? वर्णन करें।
10. कंटिंजेंसी विश्लेषण क्या है–वर्णन करें।
11. सांख्यिकीय विश्लेषण के प्रमुख आधारों का वर्णन करें।
12. प्राचलीय परीक्षा-टी-टेस्ट से क्या समझते हैं? इसके प्रकारों का वर्णन करें।
13. एक-पुच्छीय एवं द्वि-पुच्छीय परीक्षण का वर्णन करें।
14. वृहद्-न्यादर्श सह-संबंधी समूह टी-टेस्ट पर प्रकाश डालें।
15. एकदिश विचरण विश्लेषण से आप क्या समझते हैं?
16. सम-संभाविक समूह आकल्प क्या है? सोदाहरण बताएँ।
17. पुनर्मापाधारी आकल्प पर प्रकाश डालें।
18. द्वि-दिक् विचरण विश्लेषण से आप क्या समझते हैं? विस्तृत वर्णन करें।
19. सम-संभाविक संवर्ग आकल्प किसे कहते हैं? उदाहरण सहित स्पष्ट करें।
20. लैटिन वर्ग आकल्प को समझाएँ।

3.28 संदर्भ पुस्तकें

- शैक्षिक अनुसंधान की कार्यप्रणाली–एल. कौल, विकास पब्लिशिंग।
- शैक्षिक तकनीकी एवं मूल्यांकन–डॉ. रामपाल सिंह, भट्ट ब्रदर्स।
- शैक्षिक तकनीकी–एस.एस. माथुर, भट्ट ब्रदर्स।
- शैक्षिक तकनीकी प्रबंध एवं मूल्यांकन–जे.सी. अग्रवाल, भट्ट ब्रदर्स।

अध्याय-4

वैधता

नोट

(Structure)

4.1 उद्देश्य
4.2 प्रस्तावना
4.3 वैधता का अर्थ
4.4 वैधता के प्रकार
4.5 वैधता ज्ञात करने की विधियाँ
4.6 मापन की प्रक्रिया में वैधता का उपयोग
4.7 परीक्षण वैधता को प्रभावित करने वाले कारक
4.8 वैधता तथा विश्वसनीयता में संबंध
4.9 विश्वसनीयता का अर्थ तथा परिभाषा
4.10 विश्वसनीयता के प्रकार अथवा विश्वसनीयता की विधियाँ
4.11 विश्वसनीयता को प्रभावित करने वाले घटक
4.12 विश्वसनीयता गुणक का अर्थापन
4.13 विश्वसनीयता की उपयोगिता
4.14 सारांश
4.15 अभ्यास-प्रश्न
4.16 संदर्भ पुस्तकें

4.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- वैधता के अर्थ, प्रकार और ज्ञात करने वाली विधियों को समझने में;
- वैधता तथा विश्वसनीयता में सम्बंध की व्याख्या करने में;
- विश्वसनीयता के अर्थ, विधियाँ, प्रभावित करने वाले घटक एवं उपयोगिता को समझने एवं विश्लेषण करने में।

4.2 प्रस्तावना

किसी भी परीक्षण का सबसे महत्वपूर्ण गुण या विशेषता उसकी वैधता है। किसी परीक्षण की वैधता इस बात की सूचक होती है कि उसमें स्थायी त्रुटि (Constant Error) कितनी है। यदि स्थायी त्रुटि कम होती है तो उसकी वैधता अधिक होगी। परीक्षण की वैधता का अर्थ उसके परीक्षण की

सत्यता या सोद्देश्यता से होता है इसका तात्पर्य यह है कि परीक्षण की रचना जिस गुण-विशेष के मापन के लिए की गयी है उसका मापन किसी सीमा तक करता है।

नोट

शिक्षा और मनोविज्ञान के मापन में जिन परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है वे उस विशेषता का मापन पूर्ण से रूप से नहीं कर पाता है, साथ ही किसी अन्य गुण का भी मापन करता है। जैसे-शाब्दिक बुद्धि परीक्षण (Verbal Test of Intelligence) के द्वारा बुद्धि के मापन के साथ-साथ, भाषा की निष्पत्ति (Language Achievement) का भी मापन होता है। जब भी इस परीक्षा का प्रयोग होता है भाषा निष्पत्ति की स्थायी त्रुटि रहती है। इस प्रकार शिक्षा मनोविज्ञान के परीक्षण पूर्णरूप से वैध नहीं होते हैं। यह मापन अप्रत्यक्ष होता है।

एक अच्छे परीक्षण की कई विशेषतायें होती हैं। उनमें से परीक्षण की विश्वसनीयता एक विशेष गुण माना जाता है। परीक्षण की विश्वसनीयता इस तथ्य को प्रकट करती है कि उसमें चर-त्रुटि (Variable Error) कितनी हैं यदि परीक्षण में चर त्रुटि कम है तो वह अधिक विश्वसनीय परीक्षण होगा, इसके विपरीत यदि चर त्रुटि अधिक है तो परीक्षण की विश्वसनीयता कम होगी। परीक्षण की विश्वसनीयता का अर्थ यह होता है कि उस परीक्षण के प्राप्तांकों में स्थायित्व (Consistency) है। इससे तात्पर्य यह है कि यदि एक परीक्षण को एक समूह के विभिन्न अवसरों पर दिया जाये तो अभ्यर्थियों के प्राप्तांकों को समरूपता अथवा स्थायित्व होना चाहिए।

सांख्यिकीय दृष्टि से विश्वसनीयता अपने स्वयं के सह-सम्बन्ध को प्रगट करती है। (Reliability is the self correlation of a test) इस तथ्य को निम्नांकित चित्र द्वारा भी प्रदर्शित किया जा सकता है।

विश्वसनीयता परीक्षण के आकार पर निर्भर करती है, जिसे अंग्रेजी भाषा में व्यक्त करते हैं कि–"Reliability is the function of the test length"

इसका तात्पर्य यह है कि एक परीक्षण में जितने अधिक पदों को सम्मिलित किया जाता है उतना ही परीक्षण अधिक विश्वसनीय होता है। जैसे–निबन्धात्मक परीक्षा में साधारणत: पांच प्रश्न सरल कराये जाते हैं इसलिए कम विश्वसनीय होता है और वस्तुनिष्ठ परीक्षा में लगभग सौ प्रश्न हल कराये जाते हैं, इसलिए अधिक विश्वसनीय होता है एक परीक्षण में पदों की संख्या बढ़ा देने से उसकी विश्वसनीयता भी बढ़ जाती है।

4.3 वैधता का अर्थ

परिभाषाओं से वैधता का अर्थ स्पष्ट होता है कि वैधता परीक्षण का एक महत्वपूर्ण गुण है जिससे यह विदित होता है कि एक परीक्षण किस सीमा तक उस विशेषता का मापन करता है जिसके लिए उसका निर्माण किया गया है। वैधता से तात्पर्य होता है कि परीक्षण अपने उद्देश्यों की पूर्ति किस सीमा तक करता है। वैधता परीक्षण की सार्थकता को प्रदर्शित करती है।

वैधता का सूचांक यह प्रदर्शित करता है कि परीक्षण में स्थायी-त्रुटि (Constant Error) की मात्रा कितनी है यदि वैधता का सूचांक अधिक है तो इससे यह माना जाता है कि उस परीक्षण में स्थायी त्रुटि कम है और यदि वैधता सूचांक कम है तो उस परीक्षण में स्थायी त्रुटि अधिक है। इसका तात्पर्य यह भी है कि परीक्षण जिसका मापन करने के लिए बनाया गया है इसके अतिरिक्त अन्य किसी गुण का मापन अधिक करता है। शिक्षा और मनोविज्ञान में कोई परीक्षण पूर्णरूप से वैध नहीं होता क्योंकि शिक्षा और मनोविज्ञान में ऐसा परीक्षण नहीं बनाया जा सकता है, जो पूर्णरूप से वैध हो क्योंकि शिक्षा और मनोविज्ञान में ऐसा परीक्षण नहीं बनाया जा सकता जो पूर्ण रूप से

उसी का मापन करे जिसके लिए उसका निर्माण किया गया है। अत: शिक्षा मनोविज्ञान का परीक्षण पूर्णरूप से वैध होना सम्भव नहीं होता है। वैधता का अर्थ सांख्यिकीय से भी समझा जा सकता है। वैधता का गुणक परीक्षण के प्राप्तांकों का सह-सम्बन्ध मानदण्ड परीक्षण प्राप्तांकों से किया जा सकता है। अर्थात् वैधता तात्पर्य उस सह-सम्बन्ध से है जो एक परीक्षण का अन्य मानदण्ड से होता है। इसको अग्रांकित चित्र से प्रदर्शित कर सकते हैं।

नोट

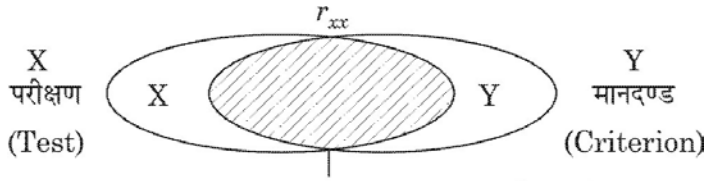

सह-सम्बन्ध (Correlation) X तथा Y परीक्षण में

अग्रंकित चित्र द्वारा वैधता को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। वैधता गुणक का तात्पर्य बाह्य सह-सम्बन्ध से होता है। एक परीक्षण एक समूह को दिया जाता है और उनके प्राप्तांकों का सहसम्बन्ध निकाला जाता है। साधारणत: सहसम्बन्ध गुणक .50 के लगभग होने पर परीक्षण को वैध माना जाता है। वैधता ज्ञात करने की यह एक प्रमुख विधि है।

जिस प्रकार विश्वसनीयता के अर्थ को परीक्षण चरिता (Test Variance) के रूप में बताया जाता है, जैसे–विश्वसनीयता गुणक से तात्पर्य यह है कि परीक्षण सम्पूर्ण चरिता (Total Variance) का कौन-सा अनुपात वास्तविक चरिता का (True Variance) है। इसी तथ्य का आगे विश्लेषण करके वैधता गुणक को समझ सकते हैं। ("Reliability is the proportion of true variance.") वास्तविक चरिता का अनुपात होता है। अवधारणा (Assumptions) पर आधारित है कि परीक्षण की कठिनाई छात्रों की जानकारी पर आधारित होता है और उसी प्रश्न समान कठिनाई स्तर के होते हैं।

T	E
σ_t^2	σ_e^2

$x\sigma_x^2$

वास्तविक अंक + त्रुटि अंक = सम्पूर्ण अंक अथवा प्राप्तांक

$$\sigma_{tt} = \frac{\sigma_t^2}{\sigma_x^2} = \frac{\text{वास्तवकि चरिता}}{\text{परीक्षण चरिता}} = \text{विश्वसनीयता गुणक}$$

वैधता सम्मलित चरिता का अनुपात होता है

C.F.	S.E.	
σ_{ct}^2	σ_{st}^2	$x\sigma_e^2$
T-सम्मलित	S-विशिष्ट	E-त्रुटि

$$\text{वैधता गुणक } (r_{te}) = \frac{\sigma_{et}^2}{\sigma_x^2} = \frac{\text{सम्मिलित कारक चारिता}}{\text{परीक्षण चरिता}}$$

यह सूत्र एक अवधारणा पर आधारित है कि परीक्षण की कठिनाई छात्रों की जानकारी पर आधारित होती है और सभी प्रश्न समान कठिनाई के होते हैं।

$$X = C + S$$

वास्तविक प्राप्तांक = सम्मलित प्राप्तांक + विशिष्ट प्राप्तांक

परीक्षण प्राप्तांक = सम्मलित प्राप्तांक + विशिष्ट प्राप्तांक + त्रुटि प्राप्तांक

$$X = C + S + E$$

वास्तविक प्राप्तांक = सम्मलिति प्राप्तांक + विशिष्ट प्राप्तांक

नोट

$$\text{वैधता गुणक} = \frac{\text{सम्मिलित कारक चारिता}}{\text{परीक्षण चरिता}} = \frac{\sigma_e^2}{\sigma_x^2}$$

उपरोक्त चित्रों एवं समीकरणों से यह विदित होता है कि वास्तविक चरिता को दो भागों में विभाजित किया जाता है। प्रथम-सम्मिलित कारक चरिता; द्वितीय-विशिष्ट चारिता। सम्मलित चरिता परीक्षण का कौन सा अनुपात है, वह वैधता गुणक होता है।

"Validity is the proportion of common factor variance."

इस विवेचन से यह भी स्पष्ट होता है कि वैधता गुणक सदैव विश्वसनीयता गुणक से कम होता है। क्योंकि भाजक में दोनों स्थानों पर परीक्षण रहता है और वैधता में सम्मिलित कारक रहता है जो वास्तविक चरिता से सदैव कम रहता है। वैधता के प्रत्यय में किया गया है।

परीक्षण वैधता की परिभाषा

वैधता की परिभाषा शिक्षा और मनोविज्ञान के विद्वानों ने अनेक प्रकार से की है। उनमें से कुछ प्रमुख विद्वानों की परिभाषाओं को यहाँ दिया गया है–

ली जे. क्रानबैक के अनुसार–किसी परीक्षण की वैधता उसकी वह सीमा है, जिस सीमा तक वह, वही मापता है, जिसके लिए उसका निर्माण किया गया है।

आर. एल. थार्नडाइक के अनुसार–कोई भी मापन-विधि उस सीमा तक वैध है, जिस सीमा तक वह उस कार्य के किसी सफल मापन से सह-सम्बन्ध है, जिसके विषय में पूर्व कथन हेतु उसकी रचना की गयी है।

फ्रैंक, एस. फ्रीमैन के अनुसार–वैधता का सूचांक उस मात्रा को व्यक्त करता है जिस मात्रा तक एक परीक्षण उस चर को मापता है, जिसके मापन हेतु वह बनाया गया हो, जबकि उसकी तुलना किसी स्वीकृति मानदण्ड से की जाती है।

एच. गुलिक सेन के अनुसार–किसी कसौटी के साथ परीक्षण का सह-सम्बन्ध ही वैधता है।

"It is the correlation of test with some criterion."

इ. इ. घिसेली के अनुसार–वैधता की सम्भव परिभाषा यह है कि एक परीक्षण किस सीमा तक प्रस्तावित उद्देश्यों का मापन करता है।

4.4 वैधता के प्रकार

परीक्षण में वैधता की समस्या उत्पन्न इसलिए होती है क्योंकि शिक्षा और मनोविज्ञान में मापन अप्रत्यक्ष रूप में किया जाता है। सभी विशेषताओं (गुणों) का मापन व्यवहार की सहायता से किया जाता है। यहीं कारण है कि शिक्षा और मनोविज्ञान में एक गुण के मापन के लिए अनेक परीक्षणों की रचना की गयी है जबकि भौतिक विज्ञान में एक गुण के मापन के लिए एक ही परीक्षण का प्रयोग होता है और शिक्षा मनोविज्ञान में एक ही गुण के लिए अनेक परीक्षण प्रयोग किए जाते हैं। इसलिए उन परीक्षणों की वैधता का जानना आवश्यक होता है। वैधता का वर्गीकरण विद्वानों ने अनेक प्रकार से

नोट

किया है और पुस्तकों में भी वैधता के स्वरूप अलग-अलग पढ़ने को मिलते हैं वैधता के प्रकार को समझने की इन सभी आयामों को तीन मौलिक प्रकारों में प्रदर्शित किया जा सकता है। वैधता के इस वर्गीकरण में परीक्षण की सम्पूर्ण परिस्थिति और सभी पक्षों को ध्यान में रखकर किया गया है।

(1) परीक्षण देने का व्यवहार (Test Taking Behaviour)।

(2) मानसिक योग्यताएँ (Mental Traits or Abilities), तथा

(3) मानदण्ड व्यवहार अथवा परिस्थिति (Criterion Behaviour or Situation)।

इस प्रकार यह तीन प्रकार के तथ्य प्रमुख रूप से वैधता की मुख्य तीन प्रकार से प्रदर्शित करते हैं। मापन की पुस्तकों में अनेक प्रकार का वर्णन मिलता है, उन सभी प्रकारों को इन तीन प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है। उपरोक्त इन तीनों परिस्थितियों का अर्थ निम्नलिखित वाक्यों में समझाया गया है।

(1) परीक्षण देने का व्यवहार (Test Taking Behaviour)–इसके अन्तर्गत परीक्षण में जिन प्रश्नों को सम्मिलित किया है उनसे किन्ही विशिष्ट व्यवहारों का मापन किया जाता है। उन्हें परीक्षण देने का व्यवहार कहते हैं। निष्पत्ति परीक्षण में यह व्यवहार पाठ्य-वस्तु के स्वरूप से सम्बन्धित होते हैं। इसका अवलोकन पाठ्यक्रम में निहित पाठ्यवस्तु से तार्किक ढंग से किया जाता है। अत: इसे विषय-वस्तु या पाठ्यक्रम-वैधता कहते हैं। इसे तार्किक वैधता भी कहते हैं।

(2) मानसिक योग्यता (Mental Traits)–इस परीक्षण परिस्थिति में जिन व्यवहारों को सम्मिलित किया गया है वह व्यवहार किन मानसिक योग्यताओं का मापन करते हैं अथवा वे व्यवहार किन-किन मानसिक क्षमताओं पर आधारित हैं। इस प्रकार का विश्लेषण या मूल्यांकन करते हैं, तो यह अन्य प्रकार की वैधता को प्रगट करती है। जिसे मनोवैज्ञानिक वैधता (Psychological Validity) या कारक विश्लेषण वैधता (Factorial Validity) कहते हैं।

(3) मानदण्ड व्यवहार अथवा परिस्थिति (Criterion Behaviour or Situation)–इसके अन्तर्गत परीक्षण देने के व्यवहारों का सम्बन्ध मानदण्ड व्यवहारों से किया जाता है, तब ये तीसरे प्रकार की वैधता होती है। इसमें परीक्षण व्यवहरों की तुलना उनके वास्तविक व्यवहारों से करें, अथवा किसी अन्य प्रमाणिक परीक्षण को उन्हीं छात्रों को दे कर उनका सहसम्बन्ध ज्ञात करें तो उसे अनुभवजन्य वैधता (Empirical Validity) कहा जाता है।

इन तीनों प्रकार की वैधता के अन्तर्गत सभी प्रकारों को सम्मिलित कर सकते हैं–

परीक्षण परिस्थिति तथा वैधता के प्रकार

परीक्षण परिस्थितियाँ (Testing Situations)	**वैधता के प्रकार (Types of Validity)**
(अ) परीक्षा देने का व्यवहार (Test-Taking Behaviour)	**(1) पाठ्यवस्तु वैधता** (Content-Validity) (1) आमुख वैधता (Face Validity) (2) तार्किक वैधता (Logical Validity)

नोट

(3) विषय-वस्तु वैधता
(Curricular Validity)
(4) न्यादर्श वैधता
(Factorial Validity)
(5) कारक वैधता
(Factorial Validity)
(6) उद्देश्य वैधता
(Objectives Validity)

(ब) मानसिक योग्यता
(Mental Traits or Ablities)

(2) मनोवैज्ञानिक वैधता
(Psychological Validity)
(1) सरंचनात्मक वैधता
(Construct Validity)
(2) सैद्धान्तिक वैधता
(Theoretical Validity)
(3) कारक वैधता
(Factorial Validity)

(स) मानदण्ड व्यवहार या परिस्थिति
(Criterion Behaviour or Situation)

(3) अनुभव-जन्य वैधता
(Empirical Validity)
(1) पूर्वकथित वैधता
(Predictive Validity)
(2) तात्कालिक वैधता
(Concurrent Validity)
(3) मानदण्ड वैधता
(Criteirion Validity)

परोक्त वैधता के प्रकार का उल्लेख अनस्टेसी ने अपने मापन की पुस्तक में किया है। यह वैधता की प्रकार अधिक सार्थक एवं व्यावहारिक है।

इसके अतिरिक्त अन्य मनोवैज्ञानिक ने भी वैधता के प्रकार का उल्लेख किया है। उनमें से प्रमुख विद्वानों को उल्लेख अधोलिखित हैं–

क्रानबैक के अनुसार वैधता के प्रकार (Types of Validity According to Lee J. Conback) –इन्होंने वैधता की चार प्रकार दी हैं–

(1) पाठ्य-वस्तु वैधता (Content Validity)

(2) तात्कालिक वैधता (Concurrent Validity)

(3) पूर्वकथित वैधता (Predictive Validity)

(4) संरचनात्मक वैधता (Construct Validity)।

ग्रीन, जोरेगेन्सन तथा **जरवेरिच** के अनुसार (Green, Jorgansen and Jurverich)–इन्होंने वैधता के तीन प्रकारों का उल्लेख किया है–

(1) पाठ्य-वस्तु वैधता (Curricular Validity)

(2) सांख्यिकी वैधता (Statistical Validity)

(3) तार्किक वैधता (Logical Validity)।

नोट

फ्रीमैन के अनुसार वैधता के प्रकार (According to Freeman)–इन्होंने वैधता के चार प्रकार बताए हैं–

(1) व्यावहारिक वैधता (Operational Validity)

(2) कार्यात्मक वैधता (Functional Validity)

(3) कारक वैधता (Factorial Validity)

(4) आमुख वैधता (Face Validity)।

जोर्डन के अनुसार वैधता के प्रकार (According to Jordon)–इन्होंने वैधता के दो ही प्रकार बतलायें हैं–

(1) आन्तरिक-वैधता (Internal Validity)

(2) बाह्य-वैधता (External Validity)।

रॉस के अनुसार वैधता के प्रकार (According to Roos)–रॉस ने वैधता के चार प्रकार बताए हैं–

(1) पूर्वकथित वैधता (Predictive-Validity)

(2) तात्कालिक-वैधता (Concurrent-Validity)

(3) पाठ्यवस्तु वैधता (Content Validity)

(4) संरचनात्मक वैधता (Construct or Congruent Validity)।

उपरोक्त वैधता की प्रकार का अवलोकन करने पर स्पष्ट होता है कि अनस्टेसी का वर्गीकरण अधिक व्यापक एवं सार्थक है। क्योंकि सभी प्रकार की वैधता का वर्गीकरण परीक्षण की परिस्थितियों के आधार पर तीन में किया जा सकता है और उन तीनों के अन्तर्गत अन्य प्रकारों को भी विभाजित कर सकते हैं। इन वैधताओं का वर्णन यहाँ किया गया है–

(1) पाठ्यवस्तु वैधता (Content Validity)–इस प्रकार की वैधता से तात्पर्य यह है कि परीक्षण में जिस पाठ्यवस्तु को सम्मिलित किया गया है वह उस विषय के पाठ्यक्रम का प्रतिनिधित्व करता है। इसका अर्थ यह होता है कि सम्पूर्ण पाठ्यक्रम पर प्रश्न उस परीक्षण में सम्मिलित किये गये हैं। इस प्रकार के प्रमाण विषय-वस्तु के विशेषज्ञ के द्वारा तार्किक ढंग से एकत्रित किये जाते हैं। इसलिए इसे तार्किक वैधता भी कहते हैं। इसके अन्तर्गत प्रश्नों की पाठ्यवस्तु सम्पूर्ण पाठ्यक्रम का न्यादर्श होता है। इसलिए इसे न्यादर्श वैधता भी कहते हैं। इस प्रकार की वैधता के लिए परीक्षण में प्रश्नों द्वारा जो परिस्थितियाँ दी जाती है। उनका परीक्षण व्यवहार के रूप में देखते हैं कि वह पाठ्यक्रम से सम्बन्धित सभी व्यवहारों को सम्मिलित करते हैं अथवा उनका प्रतिनिधित्व करते हैं। इसलिए इसे पाठ्यक्रम वैधता (Curricular Validity) कहते हैं। पाठ्यवस्तु वैधता की परिभाषा अनस्टेसी ने इस प्रकार दी है–

नोट

"Test scores can be interpreted in terms of school ability the performance of to-day is well defined type of situation or subject matter thus called content validity." **–Anastasi**

इसका अर्थ यह है कि किसी परीक्षण के प्राप्तांकों का अर्थापन विद्यालय की क्षमताओं अथवा कार्य सम्पादन के रूप में किया जाये जबकि परीक्षण परिस्थिति या पाठ्यवस्तु को भली प्रकार परिभाषित आज के सन्दर्भ में किया हो तब उसे पाठ्यवस्तु वैधता कहते हैं।

इस प्रकार की वैधता निष्पत्ति परीक्षण की होती है। इस प्रकार के परीक्षण का यह उद्देश्य होता है कि जिस पाठ्यवस्तु को पढ़ाया गया है उसी पाठ्यवस्तु का परीक्षण मापन करता है, यदि निष्पत्ति परीक्षाओं की रचना शैक्षिक उद्देश्यों के मापन के लिए की गयी है तो उस परीक्षण के उन्हीं उद्देश्यों का मापन करना चाहिए। मूल्यांकन आयाम में शैक्षिक परीक्षण में उद्देश्यों का मापन किया जाता है। तब उसे परीक्षण की वस्तुनिष्ठ वैधता होनी चाहिए। इस प्रकार के शैक्षिक परीक्षण को मानदण्ड परीक्षा कहा जाता है।

(2) संरचना वैधता (Construct Validity)–इस प्रकार की वैधता का अर्थ यह है कि जब यह देखा जाता है कि परीक्षण में सम्मिलित व्यवहारों के लिए किन मानसिक योग्यताओं की आवश्यकता होती है अथवा यह व्यवहार किन मानसिक क्षमताओं पर आधारित है। इस प्रकार की वैधता मनोवैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित होती है, इसलिए इसे मनोवैज्ञानिक वैधता कहते हैं। अनस्टेसी ने इस प्रकार के वैधता की परिभाषा इस प्रकार की है।

"The test scores can be interpreted in terms of psychological theory or in terms of cognitive ability, that is the test score have psychological speaking (mental traits) is called the construct validity."

इसका अर्थ यह है कि किसी परीक्षण के प्राप्तांकों का अर्थापन ज्ञानात्मक योग्यताओं अथवा मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के रूप में किया जाये कि परीक्षण अंक में अमुक मानसिक क्षमाएँ निहित हैं तो उसे संरचनात्मक वैधता कहते हैं।

इस प्रकार की वैधता मनोवैज्ञानिक परीक्षणों में होना आवश्यक है। उदहारण के लिए बुद्धि परीक्षण, सर्जनात्मक परीक्षण तथा प्रवणता आदि में इस प्रकार की वैधता ज्ञात की जाती है साधारणत: सभी परीक्षण व्यवहार मानसिक

क्षमताओं पर ही आधारित होते हैं परन्तु उपरोक्त परीक्षण विशेष रूप से ज्ञानात्मक क्षमताओं तथा योग्यताओं का मापन करते हैं जिनकी प्रकृति मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त द्वारा समझी जाती है। इसलिए क्षमताओं का स्वरूप परिकल्पनात्मक संकल्पना पर आधारित होता है। इस प्रकार की वैधता का प्रतिपादन क्रानबैक ने किया है। इस वैधता का स्वरूप जटिल होता है। इसलिए इसे सैद्धान्तिक वैधता कहते हैं।

(3) अनुभवजन्य वैधता (Empirical Validity)–इस प्रकार की वैधता का तात्पर्य यह है कि परीक्षण उन गुणों का मापन किस सीमा तक करता है जिसके लिए उसकी रचना की गयी है। इस बात की पुष्टि के लिए परीक्षण के व्यवहारों का सह-सम्बन्ध मानदण्ड व्यवहारों से ज्ञात किया जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि छात्र परीक्षण परिस्थितियों में जो व्यवहार करता है उसकी पुष्टि उसके वास्तविक व्यवहारों या कसौटी के व्यवहारों से की जाती है। तो उसे अनुभवजन्य वैधता कहते हैं। अनस्टेसी ने इस वैधता की परिभाषा निम्न प्रकार से की है–

"Test score can be used to predict the futrue behaviour of the students are the present behavirour the students in actual situation thus the validity is calld Empirical Validity." **–Anastasi**

नोट

इसका अर्थ यह है कि किसी परीक्षण के प्राप्तांकों को छात्र के भविष्य के व्यवहार को बताने के लिए अथवा उसके वर्तमान की वास्तविक परिस्थितियों में व्यवहार को जानने के लिए प्रयोग किया जाये तो उसे अनुभवजन्य व्यवहार कहा जाता है।

इस प्रकार की वैधता के लिए परीक्षण में प्राप्तांकों का सह-सम्बन्ध किसी उपलब्ध मानदण्ड परीक्षण के प्राप्तांकों से किया जाये या परीक्षण व्यवहारों के आधार पर छात्र के भविष्य के व्यवहारों के रूप में (पूर्वानुमान) अर्थात् किया जाये या किसी मानदण्ड के व्यवहार से सम्बन्ध स्थापित किया जाये तो उसे अनुभवजन्य वैधता कहा जाता है। इस प्रकार की वैधता को तीन खण्डों में विभाजित किया जा सकता है।

(अ) पूर्वकथित वैधता (Predictve Validity)

(ब) तात्कालिक वैधता (Concurrent Validity)

(स) मानदण्ड से सम्बन्धित वैधता (Criterion Related Validity)।

(अ) पूर्वकथित वैधता (Predictive Validity)–पूर्वकथित वैधता से तात्पर्य यह है कि परीक्षण व्यवहारों के आधार पर किसी सीमा तक व्यक्ति के भविष्य के व्यवहारों के सम्बन्ध में पूर्व कथन कर सकते हैं। उदाहरण के लिए–बी. एड. की परीक्षा का उद्देश्य यह होता है कि ऐसे छात्रों का चयन किया जाये तो शिक्षण का कार्य कुशलता से कर सकें, इस प्रकार बी. एड. परीक्षा की पूर्वकथित वैधता होनी चाहिए। इसकी वैधता ज्ञात करने के लिए यह सैद्धान्तिक पाठ्यक्रमों के प्राप्तांकों और प्रयोगात्मक शिक्षण के प्राप्तांकों को मानदण्ड मानकर प्रवेश परीक्षा के प्राप्तांकों से सह-सम्बन्ध की गणना कर सकते हैं, यह मानदण्ड एक वर्ष के बाद उपलब्ध होंगे। इस प्रकार पूर्वकथित वैधता के लिए एक वर्ष प्रतीक्षा करनी होगी। इसके अतिरिक्त बी. एड. की परीक्षा पास करने के बाद जब वे किसी विद्यालय में शिक्षण कार्य आरम्भ करते हैं तो उनकी पढ़ाई में छात्रों का परीक्षाफल भी मानदण्ड हो सकता है और उससे भी सह-सम्बन्ध ज्ञात किया जा सकता है।

ई. के स्ट्रांग (E.K. Strong) ने अपनी अभिरुचि मापनी की पूर्वकथित वैधता ज्ञात करने के लिए सोलह वर्ष बाद मानदण्ड व्यवहारों को एकत्रित करके सह-सम्बन्ध निकाला था। ई. के. स्ट्रांग ने जिन छात्रों की अभिरुचि ज्ञात करने के लिए परीक्षण अथवा उद्योगों को करना पसन्द करता है जिन्हें सोलह वर्ष पूर्व अभिरूचि परीक्षण ने दर्शाया था। इसी प्रकार एम. बी. बी. एस. की प्रवेश परीक्षा की भी पूर्वकथित वैधता होनी चाहिए। इस प्रवेश परीक्षा की वैधता के लिए कम से कम 5 वर्ष की प्रतीक्षा करनी होगी, जो एम. बी. बी. एस. के अन्तिम वर्ष के बाद जो परीक्षाफल होगा। उसे मानदण्ड मानकर सह-सम्बन्ध की गणना की जायेगी।

परीक्षण के प्राप्तांक और मानदण्ड परीक्षा (Criterion test) के प्राप्तांकों में जो सह-सम्बन्ध होता है वह पूर्वकथित वैधता गुणक कहलाता है। इन दोनों के प्राप्तांकों के आधार पर इनके माध्यम और प्रमाणिक विचलन की गणना करके ऐसा समीकरण विकसित

नोट

किया जा सकता है जिसकी सहायता से मानदण्डों व्यवहारों तथा मानक परिस्थितियों के बारे में भविष्यवाणी की जा सकती है। यह समीकरण निम्नलिखित हैं–

$$Y = r_{xy} \frac{\sigma_y}{\sigma_x} (X - M_x) + M_y \quad ...(1)$$

जबकि,

r_{xy} = परीक्षण और मानदण्ड प्राप्तांकों में सह-सम्बन्ध गुणक

M = परीक्षण पर प्राप्तांक

M_x = परीक्षण प्राप्तांक का मध्यमान

M_y = मानदण्ड परीक्षण का मध्यमान

σ_x = परीक्षण प्राप्तांकों का प्रमाणिक विचलन

σ_y = मानदण्ड परीक्षण के प्राप्तांकों का प्रमाणिक विचलन

Y = मानदण्ड प्राप्तांक का पूर्वनुमान

इस प्रकार की वैधता का उपयोग प्रवणता परीक्षा में विशेष रूप से किया जाता है। इसके अतिरिक्त अभिरुचि अनुसूची तथा प्रवेश परीक्षा में भी पूर्वकथित वैधता का प्रयोग किया जाता है।

(ब) **तात्कालिक वैधता** (Concurrent Validity)–तात्कालिक वैधता से तात्पर्य यह है कि परीक्षण व्यवहारों के आधार पर किस सीमा तक छात्र के तात्कालिक व्यवहारों के बारे में मापन किस सीमा तक किया जा सकता है उसे तात्कालिक वैधता कहते हैं। इस वैधता की गणना के लिए जो मानदण्ड लिया जाता है वह तात्कालिक व्यवहारों से सम्बन्धित होता है। इसका अर्थ यह है कि परीक्षण देने के छः सप्ताह से पूर्व ही मानदण्ड व्यवहारों को एकत्रित कर लिया जाये। तब उसे तात्कालिक व्यवहार माना जाता है। इस प्रकार की वैधता अभिवृत्ति-मापनी में विशेष रूप से प्रयुक्त की जाती है। क्योंकि समय व्यतीत होने के साथ-साथ हमारी अभिवृत्ति तथा भावनाएँ बदल जाती हैं। इसलिए अभिवृत्ति मापनी के लिए तात्कालिक वैधता की ही गणना की जाती है, और मानदण्ड व्यवहारों का अन्तराल छः सप्ताह से अधिक नहीं होना चाहिए।

उदाहरण के लिए–बी. एड. के प्रवेश के समय छात्रों की शिक्षण अभिवृत्ति (Teaching Attitude) का मापन किया गया, और उसकी तात्कालिक वैधता ज्ञात करने के लिए यह ज्ञात करना होगा कि छात्र बी. एड. के पाठ्यक्रमों में किस सीमा तक रूचि ले रहे हैं और प्रयोगात्मक शिक्षण अभ्यास कितनी लगन से करते हैं यह सब कसौटी व्यवहार माने जाते हैं। इसी प्रकार के व्यवहारों को शिक्षण अभिवृत्ति मापनी में सम्मिलित किया गया है। छात्र मापनी पर जो व्यवहार करते हैं उसी प्रकार के व्यवहार वास्तविक परिस्थितियों में करते हैं तो मापनी को वैध माना जायेगा। तात्कालिक वैधता की परिभाषा अधोलिखित हैं–

"Concurrent Validity means invesitgating the degree of correspondence which the tests reveals with regard to criterion of actual job performance those who have taken the tests."

तात्कालिक वैधता का तात्पर्य यह है कि एक परीक्षण या मापनी किस सीमा तक यह प्रगट करता है कि जिस व्यक्ति ने परीक्षा दी है वह उस वास्तविक परिस्थिति

नोट

में वैसा व्यवहार करता है या नहीं जैसे व्यवहारों को परीक्षण में सम्मिलित किया गया है।

किसी अध्यापक की नियुक्ति के समय यह प्रश्न किया जाये कि तुम शिक्षण व्यवसाय में क्यों जाना चाहते हों, अभ्यर्थी यह उत्तर यह देता है कि मुझे शिक्षण व्यवहसाय अच्छा लगता है मेरी इसमें रूचि हैं इसलिए आना चाहता हूँ। यदि उसकी नियुक्ति हो जाती है और वह शिक्षण कार्य रूचि और लगन के साथ करता है, तो इस परीक्षण में तात्कालिक वैधता है।

(स) मानदण्ड से सम्बन्धित वैधता (Criterion related Validity)–यह तीसरे प्रकार की अनुभवजन्य वैधता है। परन्तु वैधता का यह प्रकार प्रचलित है और साधारणतया इसका सभी प्रयोग करते हैं। आजकल जो भी प्रशिक्षण की रचना करते हैं जो अपनी परीक्षण की वैधता के लिए इसी प्रकार की वैधता का उपयोग करते हैं। इस वैधता का तात्पर्य यह है कि परीक्षण को मानदण्ड परीक्षण के रूप में दिया जाता है। यह परीक्षण भी उसी गुण का मापन करता है, जिसके लिए निर्माण किया हुआ परीक्षण करेगा। इन दोनां प्राप्तांकों (परीक्षण और मानदण्ड) में सह-सम्बन्ध की गणना की जाती है। सह-सम्बन्ध गुणक वैधता सूचकांक होता है। जिसे मानदण्ड सम्बन्धित वैधता कहते हैं।

इस प्रकार की वैधता का प्रयोग सामान्यत: उन सभी प्रकार के परीक्षणों और मापनियों की वैधता के लिए किया जा सकता है जिनमें प्रामाणिक परीक्षण तथा मापनी उपलब्ध है। जैसे–निष्पत्ति परीक्षण, बुद्धि परीक्षण, अभिवृत्ति मापनी, अभिरुचि मापनी तथा प्रवणता परीक्षण आदि। सर्जनात्मक परीक्षण के लिए भी इस प्रकार की वैधता का प्रयोग होता है।

उपरोक्त तीनों प्रकार की वैधता अनुभवजन्य वैधता का ही रूप है। पूर्वकथित और तात्कालिक वैधता में मुख्य अन्तर उसके उद्देश्य का है तथा प्रवणता परीक्षण में पूर्वकथित और अभिरूचि मापनी में तात्कालिक वैधता को महत्व दिया जाता है। दूसरा अन्तर समय का है। पूर्वकथित वैधता का अन्तराल छ: माह से अधिक जबकि तात्कालिक में छ: सप्ताह से कम होता है। मानदण्ड सम्बन्धित वैधता एक प्रकार की विधि है जिससे परीक्षण की वैधता की गणना की जाती है। यदि प्रवणता परीक्षण की रचना करनी है और प्रमाणिक प्रवणता परीक्षा उपलब्ध है तो वैधता अभिवृत्ति मापनी की रचना और उसकी वैधता के लिए मानदण्ड सम्बन्धित वैधता विधि का प्रयोग किया जा सकता है।

(4) कारक वैधता (Factorial Validity)–कारक वैधता भी मानक सम्बन्धित वैधता की तरह एक विधि है जो बुद्धि परीक्षणों, व्यक्तित्व परीक्षणों तथा निष्पत्ति परीक्षणों में निहित कारकों का मापन एक साथ होता है। ऐसी स्थिति में परीक्षण वैधता के लिए तत्व विश्लेषण विधि (थ्ंबजवत ।दंसलेपे) का प्रयोग किया जाता है। इसलिए इसे कारक वैधता कहते हैं। अनस्टेसी के अनुसार कारक वैधता का अर्थ इस प्रकार है–

"The Factorial Validity of a test is the correlation between the test and factors common to a group of the test or other measures of behaviour." **–Anastasi**

इस वैधता की विधि द्वारा विभिन्न परीक्षणों के माध्यम आपसी सहसम्बन्ध ज्ञात किया जाता है, या उस परीक्षण के अन्दर सम्मिलित उप-परीक्षणों के मध्य भी सह-सम्बन्ध ज्ञात

नोट

किया जाता है, और कारक विश्लेषण विधि का प्रयोग करके उनमें निहित कारकों को ज्ञात किया जाता है। जो कारक विश्लेषण के बाद निकलकर आते हैं उन्हें कारक वैधता कहते हैं। जी. पी. गिलोर्ड ने कारक वैधता को सबसे महत्वपूर्ण प्रकार की वैधता माना है। क्योंकि इस प्रकार की वैधता से प्रगट होता है कि परीक्षण कौन-से कारकों या तत्वों का मापन करता है इसकी प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें सदैव सांख्यिकी प्रक्रियाओं द्वारा विश्लेषण किया जाता है।

इस प्रकार की वैधता का प्रमुख उदाहरण थर्स्टन की प्राथमिक मानसिक योग्यताएँ हैं। थर्स्टन ने बुद्धि के लिए तिरेपन (53) तरह के व्यवहारों को प्रयुक्त किया था, और प्रत्येक प्रकार के व्यवहारों के लिए तिरपन (53) तरह के परीक्षणों की रचना की और उन्हें समूह पर दे करके जो प्राप्तांक इन परीक्षणों पर प्राप्त हुए उनके मध्य आपसी सहसम्बन्ध की गणना की। इस प्रकार चौदह सौ इकत्तीस (1431) सहसम्बन्ध गुणक प्राप्त हुए और इसके बाद उन्होंने अपनी तत्व विश्लेषण केन्द्रीय विधि का प्रयोग किया। इसके फलस्वरूप उन्हें छः तत्व प्राप्त हुए। जिन्हें थर्स्टन ने प्राथमिक योग्यताओं (P.M.A) की संज्ञा दी। वे छः तत्व इस प्रकार हैं–

1. शाब्दिक योग्यता (Verbal Ability),
2. संख्यात्मक योग्यता (Numerical Ability),
3. तार्किक योग्यता (Reasoning Ability),
4. स्मृति योग्यता (Memory Ability),
5. शब्द-प्रवाह योग्यता (Words Fluency Ability) तथा
6. स्थान सम्बन्ध योग्यता (Spatial Ability)।

उपरोक्त छः तत्व उस बुद्धि परीक्षण की कारक वैधता ज्ञात की गयी थी इस प्रकार की वैधता की सहायता से बुद्धि सम्बन्ध सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। वैधता ज्ञात करने की इस विधि में सांख्यिकी की सह-सम्बन्धी उच्च विधियों का प्रयोग किया जाता है। जिसकी सहायता से तत्वों का अर्थापन या नामकरण किया जाता है। उस समय वस्तुनिष्ठता नहीं रह पाती। यइ इसका प्रमुख दोष है। इस कारक विश्लेषण विधि का विस्तार में वर्णन अलग अध्याय में किया गया है।

वैधता के अन्य प्रकार

मनोवैज्ञानिकों ने कुछ अन्य प्रकार की वैधता का उल्लेख किया है। जैसे–

(1) **आन्तरिक वैधता** (Internal Validity)–इसी को अन्य विद्वानों ने व्यावहारिक (Operational) वैधता की संज्ञा दी है।

(2) **बाह्य वैधता** (External Validity)–इस प्रकार की वैधता को अन्य विद्वानों ने क्रियात्मक (Functional) वैधता की संज्ञा दी है। इसे सांख्यिकी वैधता (Statistical Validity) कहा है।

(1) **आन्तरिक वैधता** (Internal Validity) **अथवा क्रियात्मक वैधता** (Operational Validity) –इसका अर्थ यह है कि परीक्षण के द्वारा जिन व्यवहारों का मापन करना है उन्हें पर्याप्त रूप से किया जाता है। जिन्हें मनोवैज्ञानिक वैधता परीक्षण देने के व्यवहार के समान है। उदाहरणार्थ-यदि किसी निष्पत्ति परीक्षण पदों के जिन प्रकरणों पर रचना की गयी है वह उस विषय के सम्पूर्ण पाठ्यक्रम से लिए गए हैं। इसलिए इस प्रकार की वैधता को

आन्तरिक वैधता की संज्ञा दी है। परीक्षण में सम्मिलित पदों को देखकर तार्किक रूप में वैधता ज्ञात की जाती है, इसलिए इसे सक्रियात्मक वैधता भी कहते हैं। इसके लिए किसी बाह्य मानदण्ड को प्रयुक्त नहीं किया जाता। यह वैधता, पाठ्यक्रम वैधता, तार्किक वैधता और कारक वैधता की संज्ञा दी है। जिनका उल्लेख पहले किया जा चुका है।

(2) बाह्य वैधता (External Validity) **अथवा क्रियात्मक वैधता** (Functional Validity) –इस प्रकार की वैधता से तात्पर्य यह है कि परीक्षण प्रश्नों के आधार पर उनके भविष्य के व्यवहार के सम्बन्ध में किस सीमा तक भविष्यवाणी की जा सकती है। इस प्रकार की वैधता के लिए बाह्य मानदण्ड की आवश्यकता होती है। बाह्य मानदण्ड कोई अन्य प्रमाणिक परीक्षा भी हो सकती है, अथवा भविष्य के कसौटी व्यवहार के व्यवसाय में जो करके कितनी कुशलता से अपना कार्य करते हैं। यदि परीक्षण में सर्वोत्तम अंक प्राप्त हुए हैं और व्यवसाय में भी जा करके एक कुशल या प्रभावी कार्यकर्त्ता है तो उसे बाह्य वैधता कहा जाता है यदि देखा जाये तो इस प्रकार की वैधता में भी आन्तरिक वैधता निहित है। क्योंकि परीक्षण व्यवहारों के आधार पर उनके भविष्य के कसौटी के व्यवहार के सम्बन्ध में भविष्यवाणी करते हैं।

अन्य मनोवैज्ञानिक ने कार्यात्मक वैधता (Functional Validity) भी कहा है क्योंकि इस प्रकार की वैधता का मानदण्ड वास्तविक व्यवसाय की कार्यकुशलता के व्यवहार होते हैं। इसी प्रकार की वैधता को पूर्वकथित वैधता, तात्कालिक वैधता, अनुभवजन्य वैधता तथा मानदण्ड सम्बन्ध वैधता कहा है।

आमुख वैधता (Face Validity)–इस प्रकार की वैधता के समय में मनोवैज्ञानिक एक राय नहीं हैं। कुछ लोगों इसे एक वैधता के प्रकार मानते हैं, और कुछ लोग नहीं मानते। क्योंकि इसके लिए कोई न्याय संगत औचित्य नहीं है। इस प्रकार की वैधता का महत्व व्यावसायिक दृष्टि से तो है परन्तु मनोवैज्ञानिक दृष्टि से नहीं है।

इस प्रकार की वैधता से तात्पर्य यह है कि परीक्षण का बाह्य रूप ऐसा हो जिससे यह प्रतीत हो कि यह विशेष व्यवहारों या गुण के मापन के लिए बनाया गया है। परीक्षण देखने में भी ऐसा प्रतीत हो कि उससे अमुक उद्देश्य की प्राप्त की जा सकती है, अथवा अमुक चरों का मापन करता है। इस प्रकार की वैधता प्रकाशक के लिए आवश्यक होती है। जैसे-व्यक्तित्व मापन परीक्षण के मुख पृष्ठ पर स्याही का धब्बा बना हो। शिक्षण प्रवणता परीक्षण पर एक अध्यापक को श्यामपट्ट पर लिखता हुआ मुखपृष्ठ पर दिखाया जाये। मुखपृष्ठ पर देखते ही उस परीक्षण के उपयोग के बारे में खरीदने वाले को अभ्यास हो जाये। इस प्रकार की वैधता से सम्बन्धित होती है।

4.5 वैधता ज्ञात करने की विधियाँ

वैधता ज्ञात करने की प्रमुख तीन विधियाँ हैं। इनका प्रयोग वैधता गुणक ज्ञात करने के लिए कहा जाता है–

(1) अनुमानित तालिका (Expectancy Table)।

(2) सह-सम्बन्ध (Coefficient of Correlation)–तत्व विश्लेषण (Factor Analysis) में भी सह-सम्बन्ध गुणक का प्रयोग होता है। तत्व विश्लेषण सहसम्बन्ध का ही विस्तार है। बहु-सहसम्बन्ध (Multiple Correlation) भी सहसम्बन्ध गुणक का विस्तार है।

(3) पुष्टि वैधकरण (Cross-Validation)–यह विधि वैधता के लिए दो प्रकार से प्रयोग की जाती है। इसलिए इसके अन्दर दो विधियाँ साधारणतया प्रयुक्त की जाती है।

(अ) अनुभवजन्य वैधकरण (Empirical Validation), तथा

(ब) तार्किक वैधकरण (Rational Validation)A

नोट

(1) अनुमानित तालिका विधि

अनुमानित तालिका द्वारा मानकों (Norms) के प्रस्तुतीकरण का एक उत्तम ढंग है। इस अनुमानित तालिका द्वारा प्रशिक्षण को प्रयोग करने वाला उसके प्राप्तांकों का प्रत्यक्ष रूप से भविष्य में उनके व्यवहार क्या होंगे? अर्थापन कर सकता है।

इस तालिका का मुख्य उद्देश्य यह होता है कि अनुभवों के अधार पर सम्भावनाओं को इंगित कर सकें कि व्यक्ति ने परीक्षण पर जो अंक प्राप्त किए हैं उनके आधार पर उनके भविष्य के व्यवहार के बारे में बतला सकें। उदाहरणार्थ एक व्यक्ति यह चाहता है कि वह एक अच्छा अध्यापक होगा। इसके लिए आवश्यक है कि दोनों प्रकार के प्राप्तांक का शिक्षण निरीक्षण की अनुस्थितियों (Ratings) से सह सम्बन्ध देखा जाये। इसका उदाहरण निम्नांकित तालिका है–

अनुमानित तालिका एक शिक्षक सफलता हेतु

परीक्षण पर प्राप्तांक	सफलता की अनुपस्थितियाँ			योग	
	निम्न	सामान्य	उत्तम	आवृत्ति	प्रतिशत
उच्च वर्ग (66–100)	1 2%	3 6%	5 10%	9	18
मध्य वर्ग (36–65)	10 20%	18 36%	8 16%	36	73
निम्न वर्ग (0–35)	2 4%	2 4%	1 2%	5	10
योग	13	23	14	50	100

सह–सम्बन्ध लगभग = .50

इस तालिका को नौ वर्गो में प्रस्तुत किया गया है और तीन वर्गो में प्रामाणिक समूह के प्राप्तांकों की आवृत्ति लगायी गयी है। पूरे समूह के प्राप्तांकों को तीन वर्गो में विभाजित किया गया है। उच्च वर्ग, मध्य वर्ग, और निम्न वर्ग और उस वर्ग की सफलताओं की अनुस्थितियों (Ratings) को भी इसी प्रकार तीन वर्गो में बांटा गया है। प्रत्येक व्यक्ति की आवृत्ति को लगाया। जैसे–एक प्रकार अनुस्थितियों को ध्यान में रखते हुए अमुक वर्ग में आवृत्ति को लगाया। जैसे–एक व्यक्ति के प्राप्तांक सत्तर (70) और अनुस्थिति उच्च है तो उसके लिए आवृत्ति प्रथम पंक्ति के अन्तिम स्तम्भ में लगानी होगी। आवृत्तियों को लगा करके उन्हें गिन लिया जायेगा और उस संख्या को उसी वर्ग की आवृत्ति में लिखकर अनुमानित तालिका तैयार कर लेते हैं। तत्पश्चात इन आवृत्तियों को प्रतिशत में बदल लेते हैं। और तालिका के कर्ण के वर्गों की आवृत्तियों को प्रतिशत में बदल लेते हैं। उनका योग प्राप्तांक और अनुस्थितियों के सह–सम्बन्ध को प्रतिशत में प्रकट करता है।

उपरोक्त तालिका के अवलोकन से यह तथ्य प्रगट होता है कि प्रमाणिक समूह के चार प्रतिशत ऐसे हैं जिनके प्राप्तांक भी निम्न हैं और अनुस्थितियाँ भी निम्न स्तर की हैं। आगे देखने से विदित

होता है कि छत्तीस प्रतिशत (36%) के प्राप्तांक (10%) ऐसे व्यक्ति हैं जिनके प्राप्तांक उच्च वर्ग के हैं और अनुस्थितियाँ भी उच्च वर्ग की हैं। इन तीनों वर्गो का योग पचास प्रतिशत (50%) है। इसका अर्थ यह होता है कि परीक्षण व्यवहार के आधार पर उनके मानदण्ड व्यवहार के लिए पचास प्रतिशत भविष्यवाणी सही है। इस प्रकार वैधता गुणांक .50 है।

नोट

अनुमानित तालिका की विशेषताएँ–इसकी विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं–

1. वैधता ज्ञात करने की यह सबसे सरल विधि है।
2. अनुमानित तालिका की सहायता से परीक्षण प्राप्तांकों का अर्थापन प्रत्यक्ष रूप में किया जा सकता है।
3. प्राप्तांकों को तालिका की सहायता से सार्थक बना लिया जाता है। जिसकी मापन में विशेष आवश्यकता होती है।
4. किसी अमुक व्यक्ति के बारे में भी इस तालिका की सहायता से उसके प्राप्तांकों का अर्थापन किया जा सकता है।
5. इस तालिका से परीक्षण की प्रकृति की सम्भावना को भी प्रगट कर लेते हैं।

अनुमानित तालिका की सीमाएँ–इसकी सीमाएँ इस प्रकार हैं–

1. इस तालिका की सहायता से वैधता के सम्बन्ध में तार्किक ढंग से अर्थापन कम करने के लिए किया जाता है। परन्तु इसके लिए जो पर्याप्त सूचनाएँ चाहिए, वह इस तालिका से उपलब्ध नहीं हो पाती।
2. इस तालिका का सबसे बड़ा दोष यह है कि इसका प्रयोग अर्थापन त्रुटि को कम करने के लिए किया जाता है। परन्तु इसके लिए जो पर्याप्त सूचनाएँ चाहिए वह इस तालिका से उपलब्ध नहीं हो पाती।
3. इस तालिका का प्रयोग सामान्यीकरण के लिए भी नहीं किया जा सकता, कि इसका उपयोग नवीन परिस्थितियों में कर सकें।

(2) सह-सम्बन्ध गुणक विधि

इस विधि को सांख्यिकीय वैधता भी कहते हैं। क्योंकि इस विधि के प्रयोग में सांख्यिकीय की सह-सम्बन्ध की प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है। इसके अन्तर्गत प्रामाणिक समूह को परीक्षण दिया जाता है और वैधता ज्ञात करने के लिए एक अन्य प्रामाणिक परीक्षण जो उसी गुण का मापन करता है, उसको दिया जाता है। इस प्रकार इस समूह के परीक्षण प्राप्तांक और मानदण्ड परीक्षण प्राप्तांक (Criterion tests) के सम्बन्धों के लिए सह-सम्बन्ध गुणक की गणना की जाती है। सांख्यिकीय में सह-सम्बन्ध ज्ञात करने की अनेक विधियाँ हैं। परन्तु इस प्रकार की वैधता ज्ञात करने के लिए कार्ल पीयर्स की सह-सम्बन्ध विधि का प्रयोग प्रमुख रूप से किया जाता है। इसके प्रयोग करने के कई कारण हैं। मुख्य कारण यह है अन्य वैधता ज्ञात करने की विधियों में यह विधि सहायक होती है। जैसे-तत्व विश्लेषण (Factor Analysis) विधि तथा बहु-सहसम्बन्ध विधि (Multiple Correlation) पीयर्सन के सह-सम्बन्ध आदि।

यहाँ यह जानना आवश्यक है कि मानदण्ड परीक्षण कितने प्रकार के होते हैं और उनकी क्या प्रमुख विशेषताएँ हैं। क्योंकि वैधता गुणक इस बात पर निर्भर होता है कि परीक्षण के वैधकरण में किस प्रकार के मानदण्ड परीक्षण का प्रयोग किया गया है।

मानदण्ड परीक्षण की विशेषताएँ

मानदण्ड परीक्षण की वे सभी विशेषताएँ होनी चाहिए जो एक अच्छे परीक्षण की होती है। जैसे-विश्वसनीयता, वैधता, प्रामाणिकता, उपयोगिता एवम् उपलब्धता।

नोट

मानदण्ड परीक्षण की प्रमुख विशेषता यह होती है कि वह परीक्षण के समानान्तर हो, अर्थात जो उद्देश्य परीक्षण का है वही मानदण्ड का होना चाहिए और परीक्षण जिन व्यवहारों का मापन करता है उन्हीं के समतुल्य व्यवहारों का मापन मानदण्ड परीक्षण को करना चाहिए।

थार्नडाइक ने भी मानदण्ड परीक्षण की विशेषताओं का उल्लेख अपनी पुस्तक में किया है। वे इस प्रकार हैं–

(1) **सार्थकता** (Relevance)–इसका तात्पर्य यह है कि मानदण्ड परीक्षण से सम्बन्धित हो। इसके लिए दोनों परीक्षण में सम्मिलित व्यवहार में समानता होनी चाहिए इसके लिए कोई ठोस प्रमाण होना चाहिए। जैसे-निष्पत्ति परीक्षणों के लिए उस विषय के शिक्षकों की राय लेनी चाहिए।

(2) **व्यक्तिगत पक्षों का प्रभाव न होना** (Freedom from Bias)–इसका अर्थ यह है कि परीक्षार्थी को अच्छे अंक प्राप्त करने के लिए सभी समान अवसर मिलने चाहिए। इसका तात्पर्य यह है कि विभिन्न स्कूलों की एक कक्षा को एक ही विषय पढ़ाने वाले अध्यापकों की योग्यता और शिक्षण कुशलता में अधिक अन्तर पाया जाता है। यदि उन सभी को एक ही परीक्षा दी जाती है तो निश्चय ही योग्य अध्यापकों के पढ़ाये हुए छात्रों के प्राप्तांक अधिक होंगे। अत: मानदण्ड में इस तरह का कोई पक्षपात न हो।

(3) **उपलब्धता** (Availability)–यह विशेषता व्यवहारिक दृष्टि से अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि मानदण्ड परीक्षण यदि उपलब्ध नहीं है तो उसका प्रयोग करना सम्भव नहीं होगा। अत: मानदण्ड परीक्षण का चुनाव करते समय उसकी उपलब्धता को ध्यान में रखना आवश्यक है।

(4) **उपयोगिता** (Usability)–मानदण्ड परीक्षण के चुनाव करते समय उसकी उपयोगिता को भी ध्यान में रखना आवश्यक होता है। ऐसे मानदण्ड परीक्षण का चयन करना चाहिए जिसका प्रयोग अन्य लोगों ने अपने शोधकार्य तथा निर्देशन हेतु प्रयुक्त किया हो और उससे अच्छे परिणाम प्राप्त हुए। हों। ऐसा परीक्षण भले ही कम विश्वसनीय तथा वैध हो। यदि ऐसे परीक्षण का चयन करते हैं जिसकी विश्वसनीयता वैधता अधिक है और इससे पहले किसी ने प्रयोग नहीं किया है तो उसका चयन करना जोखिम पूर्ण होगा। अत: मानदण्ड परीक्षण का चयन करते समय यह सावधानी रखनी चाहिए।

मानदण्ड परीक्षण के प्रकार

परीक्षण के वैधकरण के लिए विभिन्न प्रकार के मापदण्डों का जैसे-निष्पत्ति परीक्षण, बुद्धि परीक्षण, व्यक्तित्व अनुसूची तथा प्रवणता परीक्षण में प्रयोग करते हैं। इनका संक्षिप्त विवरण आगे की पंक्तियों में किया गया है।

(1) **शैक्षिक निष्पत्ति** (Academic Achievement)–इस मापदण्ड का प्रयोग निष्पत्ति परीक्षणों तथा बुद्धि परीक्षणों के वैधकरण में मुख्य रूप से किया जाता है। इसके अन्तर्गत कक्षाओं में दिये गये निष्पत्ति परीक्षणों के प्राप्तांकों, विद्यालयों के प्रगति आलेख (Progress Report)

नोट

अध्यापकों द्वारा दी गयी अनुपस्थितियां (Rating) आदि को मापदण्ड के रूप में प्रयोग करते हैं, और इनकी सहायता से बुद्धि परीक्षणों का वैधकरण किया जाता है। किसी विषय की कक्षा में जो बालक सामान्य से उच्च स्तर का व्यवहार करता है तो इस विषय का शिक्षक उसे बुद्धिमान छात्र की संज्ञा देते हैं।

(2) **वास्तविक व्यवसाय में निष्पादन** (Performance in the Job)–इस प्रकार के मापदण्ड का प्रयोग प्रवणता परीक्षण में किया जाता है। विभिन्न व्यवसायों के लिए व्यक्तियों के चयन के लिए प्रवणता परीक्षण को प्रयुक्त किया जाता है, और उसके वैधकरण के लिए प्रतीक्षा करनी होती है जिनका चयन किया गया था, वे वास्तविक व्यवसाय में जाकर कैसा निष्पादन कर रहे हैं। इसका आलेख पूर्वकथित वैधता में किया जा चुका है। अर्थात् इस प्रकार के मानदण्ड का उपयोग पूर्वकथित वैधता के लिए किया जाता है।

(3) **अनुस्थितियाँ (त्ंजपदह)**–इनका प्रयोग निष्पत्ति परीक्षण, प्रवणता परीक्षण और बुद्धि परीक्षण के वैधकरण में किया जाता है। छात्रों की निष्पत्ति को अध्यापक अनुस्थितियाँ प्रदान करता है। किसी भी प्रकार के प्रशिक्षण के प्रशिक्षक भी अपने अभ्यार्थियों के निष्पादन के लिए अनुस्थितियाँ प्रदान करते हैं। इन अनुस्थितियों को उस प्रशिक्षण के वैधकरण के लिए प्रयोग किया जाता है। जब कोई अन्य मानदण्ड उपलब्ध नहीं हो पाता तो अनुस्थितियों का प्रयोग परीक्षण के वैधकरण के लिए करना सम्भव होता है। यह मानदण्ड वस्तुनिष्ठ (Objective) नहीं होता, क्योंकि अनुस्थितियां प्रदान करने वाले के पक्षों का प्रभाव रहता है।

(4) **परीक्षणों के सहसम्बन्ध** (Correlation with Other Tests)–शिक्षा और मनोविज्ञान में ही एक गुण के मापन के लिए अनेक परीक्षणों की रचना की गयी। जैसे-बुद्धि परीक्षण के लिए अनेक शाब्दिक बुद्धि परीक्षण उपलब्ध हैं। अतः किसी परीक्षण के वैधकरण के लिए यदि उससे पहले कोई समतुल्य परीक्षण उपलब्ध है तो उसे मानदण्ड के रूप में प्रयुक्त कर लेते हैं। परीक्षण तथा मानदण्ड दोनों के प्राप्तांकों में सह-सम्बन्ध ज्ञात कर लेते हैं जिसे वैधता गुणक कहते हैं।

(5) **आन्तरिक स्थिरता** (Internal Consistency)–प्राप्तांकों को उस परीक्षण के पद-विश्लेषण में मानदण्ड के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। पद विश्लेषण में परीक्षणों के प्राप्तांक के आधार पर छात्रों को उच्च और निम्न वर्गों में विभाजित करते हैं। सबसे ऊपर के 27% को उच्च वर्ग और सबसे नीचे के 27% को निम्नवर्ग में रखते हैं। और किसी पद के कठिनाई स्तर और विभेदीकरण की गणना इन दोनों समूह के प्राप्तांकों की सहायता से की जाती है। तत्पश्चात अन्तिम परीक्षा के लिए पदों का चयन किया जाता है, और अनुपयुक्त को निरस्त किया जाता है। और कुछ का संशोधन भी कर लिया जाता है। इस प्रकार पद विश्लेषण में परीक्षण प्राप्तांक को मानदण्ड के रूप में प्रयुक्त करते हैं।

पुष्टि वैधकरण विधि

किसी परीक्षण के चयन का सबसे महत्वपूर्ण आधार यह होता है कि परीक्षण की रचना के बाद अन्य लोगों ने शोधकार्य में, निर्देशन में तथा अन्य किसी उद्देश्य के लिए प्रयोग किया है और उससे सार्थक परिणाम प्राप्त हुए हैं। ऐसे परीक्षण का चयन करना अधिक उत्तम माना जाता है। वास्तव में उपयोगिता तथा गुण पुष्टि वैधकरण (Cross Validation) की प्रक्रिया है।

पुष्टि वैधकरण का अर्थ

पुष्टि वैधकरण का अर्थ निम्न प्रकार से है–

नोट

(1) सरल भाषा में पुष्टिकरण का अर्थ यह होता है कि परीक्षण की विशेषताओं का अवलोकन स्वतन्त्र रूप से दुबारा किया जाये और पहले अवलोकन की पुष्टि की जाय। पुष्टि तभी होगी जब दोनों बार के परिणामों में समरूपता हो। उदाहरणार्थ–एक शिक्षण प्रवणता परीक्षा का वैधकरण अन्तिम परीक्षा के प्राप्तांकों से किया गया और वैधता गुणक .52 प्राप्त हुआ। इसी परीक्षण को अन्य समूह पर दिया गया और अन्तिम परीक्षा के प्राप्तांकों से उनका वैधकरण किया गया तब वैधता गुणक .48 प्राप्त हुआ। यह पहले वैधकरण की पुष्टि करता है।

(2) दूसरी प्रकार के वैधकरण में पहली बार शिक्षण प्रवणता परीक्षण के प्राप्तांकों का सहसम्बन्ध अन्तिम परीक्षा के प्राप्तांकों से किया और वैधता गुणक .52 प्राप्त हुआ। दुबारा अवलोकन के लिए प्रशिक्षक द्वारा उसी समूह के निष्पादन के लिए अनुस्थितियाँ प्रदान की गयीं। और इन अनुस्थितियों को प्राप्तांक में बदल करके परीक्षण प्राप्तांकों से सहसम्बन्ध ज्ञात किया, और वैधता गुणक .54 प्राप्त हुआ। यह परिणाम वैधकरण की पुष्टि करते हैं।

पुष्टि वैधकरण का सिद्धान्त यह उद्देश्य होता है कि हमारा परीक्षण वास्तव में कितना अच्छा कार्य करता है। परीक्षण की वैधता ज्ञात करने की यह तीसरी विधि है। यह पुष्टि वैधकरण भी तीन प्रकार का होता है–

(अ) मापन के चिन्ह (Psychometric Sign),

(ब) वैधता का सामान्यीकरण (Validity Generalization), तथा

(स) वैधता का विस्तार (Validity Extension)।

इन तीनों प्रकार की पुष्टि वैधकरण का विवरण यहाँ पंक्तियों में किया है–

(अ) मापन के चिन्ह (Psychometric Signs)–पुष्टिकरण का विशेष महत्व परीक्षणों के पदों के चयन के लिए होता है। इसलिए इसे मापनी चिह्न की संज्ञा दी गयी है। पदों का चयन उनकी कठिनाई स्तर और विभेदीकरण की शक्ति के आधार पर किया जाता है। यदि एक परीक्षण को दो समूहों में अलग-अलग देकर और उनके पदों का अलग-अलग ही विश्लेषण किया जाये, इस प्रकार प्रत्येक पद के लिए दो कठिनाई स्तर और दो विभेदीकरण शक्ति प्राप्त होंगे। उन्हीं पदों का चयन किया जाये जिनके कठिनाई स्तर और विभेदीकरण में समानता हो और जिनमें अधिक विषमता हो उन्हें निरस्त कर दिया जाये। इस प्रकार की पुष्टि वैधकरण में दो अथवा दो से अधिक समूहों को प्रयुक्त किया जाता है।

(ब) वैधता का सामान्यीकरण (Validity Generalization)–किसी परीक्षण की उपयोगिता को नवीन परिस्थिति में जानने के लिए यह आवश्यक होता है कि उसका पुष्टिकरण किया जाये। पुष्टिकरण के लिए अन्य जनसंख्या में से न्यादर्श लेकर और उसी मापदण्ड का प्रयोग किया जाये जिसका प्रयोग पहले समूह पर कर चुके हैं। प्रक्रिया को वैधता का सामान्यीकरण कहते हैं।

(स) वैधता का विस्तार (Validity Extension)–इस प्रकार की वैधता में अतिरिक्त सूचना प्राप्त की जाती है। इसका तात्पर्य यह है कि परीक्षण के वैधकरण में एक से अधिक मानदण्ड प्रयुक्त किए हों तो उस प्रक्रिया को वैधता का विस्तार कहते हैं।

पुष्टि वैधकरण को संक्षिप्त में यह कह सकते हैं कि किसी परीक्षण की उपयोगिता के बारे में अधिक शुद्ध जानकारी देता है।

पुष्टि वैधकरण का महत्व एवं उपयोग

नोट

पुष्टि वैधकरण का उपयोग व महत्व इस प्रकार है।

(1) मुआइजर ने अभी हाल ही में पुष्टि वैधकरण की अनेक प्रकार की वैधताओं का उल्लेख किया है। यह प्रयोगात्मक प्रारूप पर निर्भर करती है। यदि इन प्रारूपों में कुछ सुधार कर लिया जाये तो उसे पुनर्रावृत्ति पुष्टि वैधकरण कहते हैं। इस प्रकार का महत्व बहु-सहसम्बन्ध समीकरणों में होता है।

(2) पदों के चयन में पद विश्लेषण के समय किया जाता है।

(3) इसका महत्व एवम् उपयोगिता प्रवणता परीक्षण के लिये होती है। इनके प्राप्तांकों के आधार पर भविष्य के व्यवहारों के सम्बन्ध में एक सही अनुमान लगाया जा सकता है और अभ्यर्थियों का चयन सही रूप में किया जा सकता है।

(4) पुष्टि वैधकरण की प्रक्रिया द्वारा विभाजक-अंक (Cut-off score) का निर्धारण शुद्ध रूप में किया जाता है जो अधिक सार्थक एवं व्यावहारिक होता है। विभाजक अंक को अर्द्ध अंक भी कहते हैं।

(5) पुष्टि वैधकरण की प्रक्रिया में वैधता-गुणक दो अलग-अलग परिस्थितियों में प्राप्त किया जाता है। या दो मानदण्डों का प्रयोग करके दो वैधता-गुणक होते हैं। ऐसी परिस्थिति में यह कठिनाई होती है कि किस वैधता-गुणक को महत्व दिया जाये और किस परीक्षण का चयन किया जाए।

(6) पुष्टि वैधकरण की आवश्यकता परीक्षण बैटरी में अधिक पड़ती है। विशेष रूप से पद-विश्लेषण की प्रक्रिया में पुष्टि वैधकरण की संस्तुति की जाती है।

(7) इस प्रक्रिया द्वारा परीक्षण के उपयोग में जोखिम कम हो जाती है। और किसी को धोखा भी नहीं दिया जा सकता तथा परीक्षण के चयन का मुख्य आधार माना जाता है।

(8) पुष्टि वैधकरण में सांख्यिकी का प्रयोग किया जाता है, विशेष रूप से सहसम्बन्ध विधि का प्रयोग करते हैं। इस प्रक्रिया के अन्तर्गत विश्वसनीयता गुणक और वैधता-गुणक की भी गणना दुबारा की जाती है। क्योंकि आज हम अनुभवजन्य आयामों को विशेष महत्व देते हैं।

(9) प्रश्न बनाने वाले का यह उत्तरदायित्व होता है कि इसे पद-विश्लेषण की प्रक्रिया में, विभाजक अंक निर्धारण में पुष्टि वैधकरण की प्रक्रिया का प्रयोग करना चाहिए। जिससे अन्य लोग इसका चयन एवं प्रयोग नि:संकोच कर सकें।

वास्तविक वैधकरण की प्रक्रिया से तात्पर्य यह है कि परीक्षण के विशेषताओं का अवलोकन एक नये समूह को दे करके किया जाए।

पुष्टि वैधकरण एक प्रकार से परीक्षण की उपयोगिता के बारे में मूल्यांकन करता है कि उसके पूर्वकथन के समीकरण से परीक्षण और विभाजक अंक (Cut off Scores) की क्षमताओं के बारे में जानकारी प्रदान करता है।

4.6 मापन की प्रक्रिया में वैधता का उपयोग

नोट

परीक्षण के वैधता-गुणक का प्रयोग मापन के अन्तर्गत तीन उद्देश्यों के लिए किया जाता है–

(1) स्थायी त्रुटि (Constant Error) की जानकारी के लिए।

(2) विभाजक अंक के निर्धारण में (Determining Cut of Score)

(3) पूर्वकथन के लिए समीकरणों का विकास (Developing Equation for Prediction Purpose)।

(1) स्थायी त्रुटि (Constant Error) **की जानकारी के लिए**–किसी भी परीक्षण की प्रमुख विशेषता यह होती है कि जिस उद्देश्य के लिए उसकी रचना की गयी है उसका मापन वह किस सीमा तक करता है। इसका अर्थ यह है कि जिसके मापन के लिए उसकी रचना की गयी है इसके अतिरिक्त भी कुछ मापन करता है। उसे स्थायी त्रुटि की संज्ञा देते हैं। वैधता गुणक के लिए परीक्षण प्राप्तांकों का सहसम्बन्ध मानदण्डों के प्राप्तांकों से किया जाता है। जो सह-सम्बन्ध गुणक आता है वह दो तथ्यों को प्रकट करता है। प्रथम-जिस उद्देश्य के लिए बनाया गया है। उसका किस सीमा तक मापन करता है और अन्य व्यवहारों को किस सीमा तक मापन करता है। यह स्थायी त्रुटि होती है। एक अच्छे परीक्षण का वैधता गुणक .50 के लगभग मान्य होता है। इसका अर्थ है कि यदि कोई परीक्षण 50% की सीमा तक अपने उद्देश्यों की पूर्ति करता है तो उसे वैध माना जाता है वह 50 प्रतिशत अन्य गुणों को मापता है।

(2) विभाजक-अंक के निर्धारण में (Determining Cut of Score)–परीक्षणों की उपयोगिता साधारणत: अभ्यर्थियों के चयन के लिए होती है। इसके लिए आवश्यकता है कि उसका विभाजक बिन्दु (Cut-of Score) निर्धारित किया जाये। लगभग सभी परीक्षाओं का विभाजक बिन्दु निर्धारित किया जाता है। बोर्ड की परीक्षाओं तथा विश्वविद्यालय की परीक्षाओं का विभाजक अंक 33% प्राप्तांक को प्रयुक्त करते हैं। जो छात्र इस अंक से कम अंक प्राप्त करते हैं उन्हें फेल और अधिक अंक वालों को पास घोषित किया जाता है। यह विभाजक अंक परम्परागत है। इसका कोई विशेष आधार नहीं है। केवल इतना कह सकते हैं कि छात्र को अध्यापन पाठ्य-वस्तु का 33% समझ लेना चाहिए।

जिन परीक्षणों की हम रचना करते हैं उनके विभाजक अंक का निर्धारण वैज्ञानिक प्रक्रिया द्वारा किया जाता है। इस प्रक्रिया में वैधता गुणक तथा सहसम्बन्ध के लिए बनायी गयी तालिका को प्रयुक्त किया जाता है। इस प्रक्रिया का विवरण आगामी पंक्तियों में किया गया है।

विभाजक अंक निर्धारण की विधि (Method of Determining Cut-off Score)–एक परीक्षण का वैधता गुणक परीक्षण प्राप्तांक और मानदण्ड के प्राप्तांकों के सहसम्बन्ध से ज्ञात किया जाता है। इस सहसम्बन्ध के लिये पीयर्सन की विधि का प्रयोग करते हैं। इसमें न्यादर्श का चयन किया जाता है जिसका आकार बड़ा होता है। पीयर्सन विधि में इसके लिए द्विभुजी आकृति विवरण तालिका तैयार किया जाता है। तालिका की एक भुजा पर परीक्षण प्राप्तांक और दूसरी भुजा पर मानदण्ड प्राप्तांक को व्यवस्थित किया जाता है। वैधता गुणक .50 के लगभग होता है। तो आवृत्तियों का विवरण नीचे दी हुई तालिका जैसा होता है।

नोट

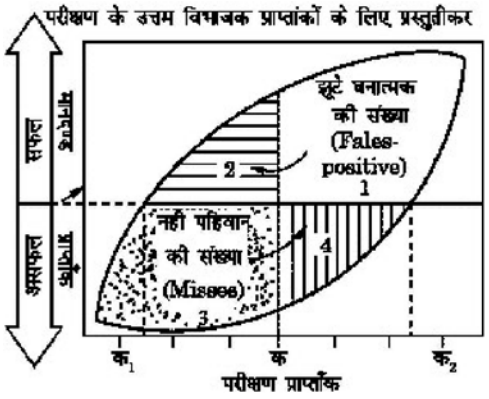

विभाजक प्राप्तांक परीक्षण प्राप्तांकों के वितरण के मध्य में होगा। ताकि झूठे धनात्मक की संख्या (False Positives) तथा नहीं पहिचाने गये की संख्या (Misses) की समान होनी चाहिए। उपरोक्त अंडाकार आवृत्ति में क ऐसा ही बिन्दु है। क बिन्दु से जो खड़ी रेखा खींची जाती है और मानदण्ड के ख बिन्दु से एक समान्तर रेखा खींचते हैं जो अंडाकार आ आकृति को चार भागों में विभाजित करती है। मानदण्ड परीक्षण का ख विभाजक बिन्दु ख से अधिक अंक पाने वाले उत्तीर्ण माने जायेंगे और ख से कम पाने वाले अनुत्तीर्ण माने जायेंगे परीक्षण प्राप्तांक में क को विभाजक अंक निर्धारित किया है यह भी समूह को दो भागों में बाँटता है इससे ऊपर वाले उत्तीर्ण और नीचे वाले अनुत्तीर्ण में आते हैं। परन्तु ख से ऊपर अंक पाने वाले परीक्षण में अनुत्तीर्ण घोषित किए, जिन्हें असत्य धनात्मक कहते हैं। इसका तात्पर्य यह हुआ कि यदि इन्हें चयन कर लिया जाता है तो मानदण्ड व्यवहार में सफल रहते हैं। इसके विपरीत ख से नीचे अंक प्राप्त करने वाले जिन्हें परीक्षण में उत्तीर्ण घोषित किया उन्हें न पहचानने की संज्ञा दी गयी। इसका तात्पर्य यह है कि यह परीक्षण में तो सफल हो गये परन्तु मानदण्ड व्यवहारों में असल रहेंगे।

विभाजक बिन्दु के निर्धारण में यह सावधानी रखी जाती है कि ऐसा अंक लिया जाये जिससे असत्य धनात्मक और न पहचानने की संख्या समान हो। उपरोक्त अंडाकार आकृति को चार खण्डों में बाँटा गया है। प्रथम खण्ड में ऐसे छात्र है जो मानदण्ड और परीक्षण दोनों में उत्तीर्ण हैं। और तृतीय खण्ड में ऐसे छात्र हैं जो दोनों में अनुत्तीर्ण हैं। खण्ड दो में असत्य धनात्मक और चौथे खण्ड में नहीं पहचाने गये की संख्या है। द्वितीय और चतुर्थ खण्ड में छात्रों की संख्या लगभग समान है अत: क सबसे उपर्युक्त परीक्षण का विभाजक अंक है। यदि क को विभाजक अंक लिया जायेगा तो न पहिचानने (Misses) की संख्या अधिक होगी। और झूठे धनात्मक की संख्या अधिकतम होगी और न पहिचानने वालों की संख्या शून्य होगी। अत: क विभाजक अंक ही सबसे उत्तम कहा जायेगा।

(3) पूर्वकथन के लिए समीकरणों का विकास (Developing Equation for Prediction Purpose)–परीक्षणों के प्राप्तांकों का साधारणतया उपयोग अभ्यर्थियों के भविष्य के व्यवहार के बारे में अनुमान लगाने के लिए किया जाता है। शैक्षिक और व्यावसायिक निर्देशन में इस प्रकार के पूर्व अनुमानों की आवश्यकता होती है। इस प्रकार के पूर्व-अनुमानों की गणना करने के लिए समीकरणों को विकसित किया जाता है। एक परीक्षण की वैधता गुणक के लिए परीक्षण प्राप्तांक और क भुजा पर परीक्षण प्राप्तांक व्यवस्थित किये जाते हैं। इस तालिका के सभी पंक्तियों के मध्यमानों से होती हुई एक सरल रेखा खींचते हैं

इसी प्रकार स्तम्भ के मध्यमानों से होती हुई दूसरी सरल रेखा खींचते हैं। इन रेखाओं को गणित के समीकरणों से भी प्रदर्शित करते हैं। इनका प्रयोग पूर्व अनुमानों की गणना के लिए किया जाता है।

नोट

परीक्षण प्राप्तांकों तथा मानदण्डों प्राप्तांकों का विवरण

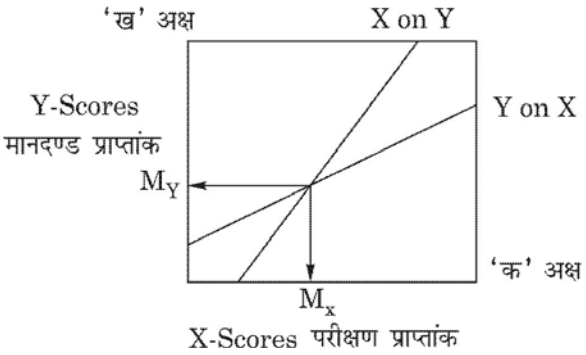

$$Y = \gamma \frac{\sigma_Y}{\sigma_X}(X - M_x) + M_y \quad Y \text{ on } x \qquad ...(1)$$

जबकि Y = मानदण्ड व्यवहार का पूर्व अनुमान अंक

γ = सहसम्बन्ध गुणक/वैधता गुणक

σ_Y = मानदण्ड प्राप्तांकों को प्रमाणिक विचलन

σ_X = परीक्षण प्राप्तांकों को प्रमाणिक विचलन

M_Y = मानदण्ड प्राप्तांकों का मध्यमान

M_X = परीक्षण प्राप्तांकों का मध्यमान

X = परीक्षण प्राप्तांक

उपरोक्त समीकरण की सहायता से मानदण्ड प्राप्तांक के सम्बन्ध में पूर्व अनुमान लगाया जा सकता है यदि परीक्षण के प्राप्तांक उपलब्ध हैं। उपरोक्त समीकरण और आकृति से यह भी स्पष्ट होता है कि वैधता गुणक यदि अधिक होगा तो पूर्व अनुमान भी उतना ही सही होगा। अत: परीक्षण की वैधता का उपयोग पूर्वकथनों तथा पूर्व अनुमानों के लिए किया जाता है।

4.7 परीक्षण वैधता को प्रभावित करने वाले कारक

एक परीक्षण की वैधता को अनेक कारक प्रभावित करते हैं। वहाँ पर कुछ प्रमुख कारकों का उल्लेख किया गया है।

(1) **परीक्षण का आकार** (Length of the Test)–यदि किसी परीक्षण में पदों की संख्या बढ़ा दी जाये तो केवल विश्वसनीयता गुणक की ही वृद्धि नहीं होती अपितु वैधता भी बढ़ जाती है। परीक्षण का आकार जितना बड़ा होता है उतनी ही अधिक विश्वसनीयता और वैधता होती है। इसके विपरीत परीक्षण का आकार जितना छोटा होता है यह प्रश्नों की संख्या जितनी कम होती है वैधता एवं विश्वसनीयता उतनी ही कम होती है। इस प्रकार परीक्षण का आकार बढ़ाने से उसकी वैधता भी बढ़ जाती है। परीक्षण में सजातीय पदों की वृद्धि करने से वैधता की वृद्धि की गणना अधोलिखित सूत्र से की जाती है।

$$r_x(XY)\frac{nr_{xy}}{\sqrt{n+n(n-1)r_x}}$$

नोट

जबकि r_{xy} = वैधता गुणक

r_{xx} = विश्वसनीयता गुणक

n = परीक्षण के आकार की वृद्धि

$r_{n(xy)}$ = वृद्धि हुई वैधता गुणक

उदाहरणार्थ-एक परीक्षण की वैधता गुणक .50 तथा विश्वसनीयता गुणक .90 है। यदि परीक्षण का आकार बढ़ाकर दुगुना कर दिया जाये तो उसकी वैधता ज्ञात कीजिए।

$$r_n(xy)\frac{2\times.50}{\sqrt{2+2(2-1).90}}=\frac{1.00}{\sqrt{3.80}}=0.52$$

एक परीक्षण का आकर दुगुना करने पर वैधता गुणक में वृद्धि .02 की हुई।

(2) परीक्षण की गत्यात्मकता (Speededness of the Test)–परीक्षण की वैधता और उसकी गत्यात्मक का गहन सम्बन्ध होता है। यदि परीक्षण की प्रशासन की अवधि को बढ़ा दिया जाये तो परीक्षण की गत्यात्मकता (Speededness) कम हो जाती है और वैधता गुणक बढ़ता है और यदि उसकी प्रशासनिक अवधि कम कर दी जाये तो गत्यात्मकता बढ़ती है और वैधता गुणक कम होता है। इस प्रकार परीक्षण की गत्यात्मकता उसकी वैधता को प्रभावित करती है।

(3) समूह की सजातीयता (Homegeneity of the Sample)–परीक्षण जिस समूह को दिया जाता है उसकी सजातीयता और विजातीयता वैधता को प्रभावित करती है। यदि समूह के छात्र सजातीय है तो वैधता गुणक अधिक होगा और यदि समूह के छात्र विजातीय हैं तो वैधता गुणक कम होगा। इस प्रकार समूह की विजातीयता बढ़ने से वैधता गुणक कम होता जाता है। इस कारक को सूत्र से स्पष्ट कर सकते हैं–

$$r_{xy}=\frac{\sigma_{ef}^2}{\sigma_x^2}=\frac{\text{कारक चरिता}}{\text{सम्पूर्ण चरिता}}$$

जबकि r_{xy} = परीक्षण वैधता गुणक

σ_{ef}^2 = सम्मलित कारक चरिता परीक्षण

σ_x^2 = समूह की चरिता (विजातीयता)

इस सूत्र में जो भाजक है वह समूह की विजातीयता की सांख्यिकीय चरिता है। इसके बढ़ने से वैधता गुणक कम होगा।

(4) अस्पष्ट निर्देशन (Ambiguous Instructions)–परीक्षण के प्रशासन में जो निर्देश दिये जाते हैं उनमें समरूपता तथा स्पष्टता होनी चाहिए। यदि यह निर्देशन स्पष्ट नहीं है तो परीक्षण की वैधता प्रभावित होगी। अर्थात् वास्तविक वैधता से प्राप्त की हुई वैधता कम होगी। अत: परीक्षण देते समय जिन निर्देशों का प्रयोग किया जाये वह भी प्रमाणिक होने चाहिए।

नोट

(5) सामाजिक एवम् सांस्कृतिक अन्तर का प्रभाव (Socio-cultural difference)–समाज के विभिन्न समूहों को परीक्षण दिया जाता है तो उनके प्राप्तांकों पर उनके आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक पक्षों का प्रभाव पड़ता है जो उस परीक्षण की वैधता को प्रभावित करता है। अत: किसी परीक्षण को बनाते समय यह सावधानी रखनी चाहिए कि परीक्षण के पदों का स्वरूप ऐसा हो जिन पर सांस्कृतिक, सामाजिक वह आर्थिक पक्षों का कम से कम प्रभाव हो। जब कोई परीक्षण सांस्कृतिक तथा सामाजिक सीमाओं को पार कर लेता है तब भी परीक्षण की वैधता प्रभावित नहीं होती है। परन्तु ऐसा करना सम्भव नहीं होता है।

(6) परीक्षण के पदों का कठिनाई स्तर (Difficulty Values of the Item)–किस परीक्षण में ऐसे प्रश्नों को सम्मिलित किया जाता है जिनके कठिनाई स्तर का विस्तार बहुत अधिक होता है तब उस परीक्षण की विश्वसनीयता और वैधता कम हो जाती है परीक्षण की वैधता वास्तव में उसके पदों के कठिनाई स्तर तथा उनकी विभेदीकरण शक्ति पर निर्भर होती है।

(7) अनुक्रिया प्रवृत्ति (Response Set)–वस्तुनिष्ठ परीक्षणों में अनुमान प्रश्नों को सही करता है तब वैधता गुणक कम होगा और विश्वसनीयता गुणक भी कम होगा। इसलिए परीक्षार्थी के प्राप्तांकों के लिए अनुमान से सही करने के सूत्र का प्रयोग करना चाहिए।

(8) वैधता गुणक की विधि का प्रभाव (Methods of Estimating Coefficient)–वैधता गुणक के लिए अनेक विधियों को प्रयोग किया जाता है, जिनमें से कुछ का उल्लेख इस अध्याय में किया जा चुका है। एक परीक्षण की वैधता गुणक पृथक-पृथक प्राप्त होते हैं। इसका अर्थ यह है कि वैधता गुणक की विधि भी प्रभावित करती है। अधिकांश विधियों की यह अवधारणा है कि परीक्षण के पदों का कठिनाई स्तर समान होता है और पद की कठिनाई परीक्षार्थियों की जानकारी पर निर्भर होती है। यदि हम किसी पद को जानते हैं तो सरल है नहीं जानते हैं तो कठिन है। इस प्रकार वैधता और विश्वसनीयता की गणना में पदों की चरिता को महत्व नहीं दिया जाता। इसलिए वैधता गुणक वास्तविकता से कम होता है। सैद्धान्तिक रूप से पद चरिता होती है और उसको वैधता गुणक की गणना में महत्व देना चाहिए। इस तथ्य को एक सूत्र से स्पष्ट किया जा सकता है।

$$r_{xy} = \frac{\sigma_{ef}^2}{\sigma_x^2} = \frac{\text{सम्मिलित कारक चरिता}}{\text{समूह की चरिता}}$$

$$r_{xy}\,\frac{\sigma_{ef}^2}{\sigma_x^2 - \sigma_i^2} = \frac{\text{सम्मिलित कारक चरिता}}{\text{समूह की चरिता} - \text{पदों की चरिता}}$$

जबकि r_{xy} = वैधता गुणक

σ_{ef}^2 = सम्मलित कारक चरिता

σ_x^2 = समूह की चरिता

σ_i^2 = पदों की चरिता

उपरोक्त सूत्र से विदित होता है कि समूह की चरिता में से पदों की चरिता हटाने से भाजक कम होगा और वैधता गुणक अधिक होगा जो परीक्षण का वास्तविक वैधता गुणक प्राप्त होगा।

4.8 वैधता तथा विश्वसनीयता में संबंध

नोट

(1) वैधता यह विश्वास है कि ये परिस्थितियाँ समान हों तो एक परीक्षण की वैधता का विश्वसनीयता से सीधा सम्बन्ध होता है। यदि एक परीक्षण की वैधता अधिक हो तो वह अधिक विश्वसनीय भी होता है। यदि किसी परीक्षण में त्रुटि चरिता अधिक है तो तत्व चरिता (Common Factor Variance) का कम होगी। कारक चरिता वैधता का स्रोत होता है। यदि हम किसी परीक्षण को अधिक विश्वसनीय बनाना चाहते हैं तो उसके लिए कारक चरिता बढ़ानी होगी, जिससे उसकी वैधता बढ़ जायेगी। इस तथ्य का स्पष्टीकरण निम्नांकित आकृतियों से किया गया है।

विश्वसनीयता–

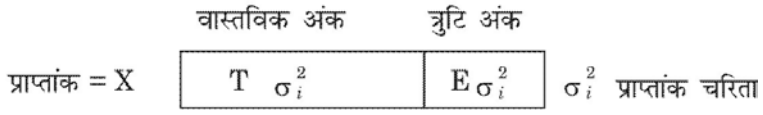

$$r_i \frac{\sigma_i^2}{\sigma_x^2} = \frac{\text{वास्तविक अंक चरिता}}{\text{प्राप्तांक चरिता}}$$

वैधता–

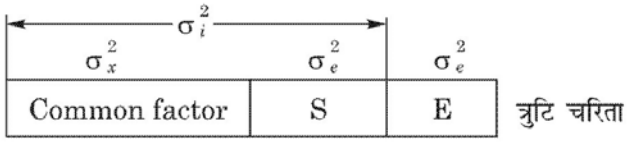

कारक चरिता विशिष्ट चरिता

$$r_{xy} \frac{\sigma_{ef}^2}{\sigma_x^2 - \sigma_i^2} = \frac{\text{सम्मिलित कारक चरिता}}{\text{प्राप्तांक चरिता – पदों की चरिता}}$$

कारक चरिता (σ_{ef}^2) के बढ़ने से वैधता बढ़ेगी तथा विश्वसनीयता भी बढ़ेगी क्योंकि वास्तविक अंक चरिता बढ़ जायेगी।

(2) विश्वसनीयता और वैधता का सम्बन्ध होता है, परन्तु इसके कुछ अपवाद हैं। यदि परीक्षण के अन्तर्गत विजातीय पदों को सम्मिलित किया गया है तो उसके विश्वसनीयता कम होगी और उसकी वैधता अधिक होगी। यदि परीक्षण में सजातीय पदों को सम्मिलित किया जाए तो विश्वसनीयता बढ़ जायेगी परन्तु वैधता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। विश्वसनीयता बढ़ाने से कारक वैधता बढ़नी चाहिये, परन्तु ऐसा नहीं होता है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि विश्वसनीयता वैधता में सहसम्बन्ध नहीं हैं।

(3) परीक्षण के इन दोनों गुणों में कई प्रकार से इनकी तुलना करना उचित नहीं है, क्योंकि दोनों का उद्देश्य अलग-अलग हैं विश्वसनीयता त्रुटि चरिता और वास्तविक अंक चरिता से सम्बन्धित होती है जबकि वैधता स्थायी त्रुटि और कारक चरिता से सम्बन्धित होती है। वास्तविक अंक चरिता के दो पक्ष होते हैं एक-कारण चरिता; द्वितीय-विशिष्ट कारक चरिता है।

(4) उच्चतम विश्वसनीयता गुणक प्राप्त करने के लिये यह आवश्यक होता है कि परीक्षण के पदों में आपसी आन्तरिक सह-सम्बन्ध अधिक हो। जबकि उच्चतम वैधता-गुणक के लिये परीक्षण के पदों में आपसी आन्तरिक सह-सम्बन्ध कम हो। अधिकतम वैधता गुणक के

नोट

लिए यह भी आवश्यक होता है कि परीक्षण के पदों का कठिनाई स्तर समान हो। जबकि अधिगम वैधता गुणक के लिए परीक्षण पदों के कठिनाई स्तर में अन्तर होना चाहिए।

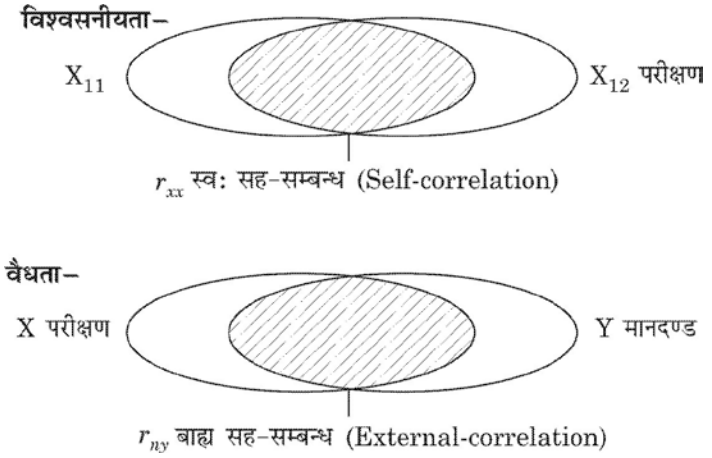

(5) विश्वसनीयता और वैधता एक परीक्षण की दो प्रमुख विशेषताएँ हैं। विश्वसनीयता गुणक ज्ञात करने के लिए एक ही परीक्षण को एक ही समूह को दो बार दे करके उनमें सह-सम्बन्ध निकाला जाता है। जबकि परीक्षण की वैधता के लिए परीक्षण प्राप्तांकों तथा किसी बाह्य मानदण्ड के प्राप्तांकों में सहसम्बन्ध ज्ञात किया जाता है।

इस विश्वसनीयता तथा वैधता के सहसम्बन्ध के विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि किन्हीं परिस्थितियों में इन दोनों में सह-सम्बन्ध होता है, ओर किन्हीं अन्य परिस्थितियों में सहसम्बन्ध नहीं होता है। इनके सहसम्बन्ध के लिए परीक्षण पदों की सजातीयता और विजातीयता कठिनाई स्तर के सन्दर्भ में अधिक महत्वपूर्ण हैं लेकिन किसी भी परिस्थिति में वैधता-गुणक विश्वसनीयता गुणक से अधिक नहीं होती है।

एक परीक्षण की रचना करते समय यह प्रयास नहीं करना चाहिए कि हमारी विश्वसनीयता भी अधिक हो और वैधता भी अधिक हो क्योंकि इन दोनों के उद्देश्य तथा कार्य अलग-अलग हैं। एक गत्यात्मक परीक्षण की विश्वसनीयता अधिक होती है और वैधता कम होती है, क्योंकि इस प्रकार के परीक्षण के पदों का कठिनाई-स्तर समान होता है। एक शक्ति परीक्षण का (च्वूमत जमेज) वैधता-गुणक अधिक होता है और विश्वसनीयता कम होती है, क्योंकि इस प्रकार के परीक्षण के कठिनाई स्तर में अधिक अन्तर होता है।

विश्वसनीयता ज्ञात करने की विधियों की अवधारणाएँ उस परीक्षण के विश्वसनीयता गुणक को प्रभावित करती है, जबकि परीक्षण की वैधता-गुणक ज्ञात करने में ही मानदण्ड परीक्षण का प्रभाव अधिक होता है।

4.9 विश्वसनीयता का अर्थ तथा परिभाषा

परीक्षण की विश्वसनीयता शिक्षा और मनोविज्ञान के विद्वानों ने कई प्रकार से की है, उनमें से प्रमुख परिभाषायें अधोलिखित है–

एनेस्टी के अनुसार–परीक्षण विश्वसनीयता विभिन्न अवसरों या समान पदों के विभिन्न विन्यासों में एक ही संगति प्राप्तांकों की ओर इंगित करती है।

गिलफोर्ड के अनुसार–विश्वसनीयता प्राप्त परीक्षण प्राप्तांकों में वास्तविक चरता का अनुपात है।

घिसेली के अनुसार–मापन की विश्वसनीयता को व्यक्ति के कुछ गुणों पर प्राप्तांकों के अव्यवस्थित विचलन की सीमा के रूप में परिभाषित किया गया है जबकि उस गुण को अनेक बार मापा गया है।

स्टोडोला एवं स्टोरडल के अनुसार–एक ही समूह के व्यक्तियों पर समरूप परीक्षण प्रशासित कर एवं दो से अधिक फलकों के विन्यासों के मध्य सह-सम्बन्ध ज्ञात करने के रूप में परीक्षण विश्वसनीयता को परिभाषित किया जा सकता है।

एच॰ ई॰ गैरिट के अनुसार–एक परीक्षण या मानसिक मापन परीक्षण की विश्वसनीयता उस संगति पर निर्भर करती है जो उन व्यक्तियों की योग्यता का अनुमान लगाती है जिनके लिए उसका प्रयोग होता है।

उपरोक्त परिभाषाओं से विश्वसनीयता के अर्थ का बोध होता है कि एक परीक्षण को एक ही समूह पर एक से अधिक बार देने पर प्राप्तांकों की समरूपता अथवा स्थायित्व कितना है।

परीक्षण की विश्वसनीयता सामान्यीकृत गुण नहीं होती अपितु वह एक विशेष जनसंख्या के लिए विशेष परिस्थितियों के लिए प्रयुक्त की जाती है।

विश्वसनीयता की मूलभूत परिभाषा

सैद्धान्तिक रूप से परीक्षण की विश्वसनीयता का सम्बन्ध वास्तविक प्राप्तांकों से होता है, जो छात्र अंक प्राप्त करता है वह उसके वास्तविक अंक नहीं होते उनमें त्रुटि होती है, जिसे चर त्रुटि की संज्ञा दी जाती है। यह धनात्मक और ऋणात्मक दोनों हीं हो सकती है। इसका तात्पर्य यह है कि प्राप्तांक वास्तविक अंकों से कम भी हो सकते हैं। इस तथ्य को अधोलिखित रूप में जे. पी. गिलफोर्ड ने परिभाषित किया है–

"Reliability of any set of measurement is logically defined as the proportion of the variance that is true variance." **—J.P. Guilford**

परीक्षण की वैधता को तार्किक ढंग से परिभाषित किया जा सकता है कि यह वास्तविक चरिता अंश होता है।

$$\text{विश्वसनीयता} = \frac{\text{वास्तविक अंकों की चरिता}}{\text{प्राप्तांकों की चरिता}} = \frac{\sigma_1^2}{\sigma_x^2}$$

गिलफोर्ड ने भी विश्वसनीयता की यही मूलभूत परिभाषा दी है। इस परिभाषा का स्पष्टीकरण इस प्रकार है। प्राप्तांक = (वास्तविक अंक + त्रुटि अंक)

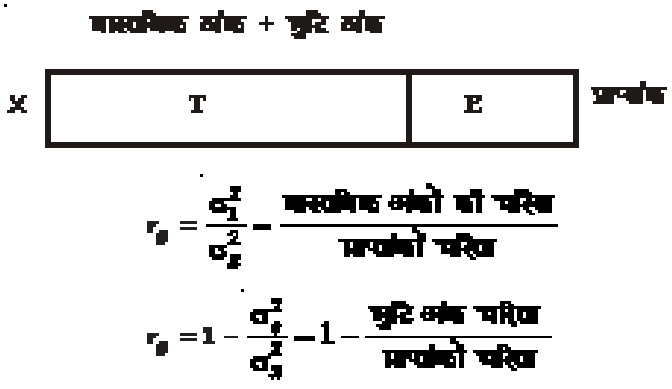

नोट

$$X = T + E$$

$$\sigma_x^2 = \sigma_t^2 + \sigma_e^2$$

$$\frac{\sigma_t^2}{\sigma_x^2} = \frac{\sigma_x^2}{\sigma_x^2} + \frac{\sigma_e^2}{\sigma_x^2}$$

$$1 = r_{xx} + \frac{\sigma_e^2}{\sigma_x^2} \quad \therefore \quad \left(r_{xx} - \frac{\sigma_e^2}{\sigma_x^2}\right)$$

$$\frac{\sigma_e^2}{\sigma_x^2} = 1 - r_{xx} \Rightarrow \sigma_e^2 = \sigma_x^2 (1 - r_{xx})$$

$$\sigma_e^2 = \sigma_x^2 (1 - r_{xx})$$

$$\sigma_e = \sigma_x \sqrt{(1 - r_{xx})}$$

$$SE_M = \sigma_x \sqrt{(1 - r_{xx})}$$

उपरोक्त मूलभूत विश्वसनीयता की परिभाषा के आधार पर चर त्रुटि अथवा मापन के प्रामाणिक त्रुटि की गणना का सूत्र विकसित किया गया है। त्रुटि चर को ही मापन की त्रुटि (Error of measurement) कहा जाता है। इस त्रुटि की पहचान दो घटकों से की जाती है। प्रथम–पूरक त्रुटि (Compensating error) तथा द्वितीय–व्यक्तिनिष्ठ त्रुटि (Baised error)।

4.10 विश्वसनीयता के प्रकार अथवा विश्वसनीयता की विधियाँ

विश्वसनीयता के प्रकार तथा विश्वसनीयता की गणना करने की विधि एक ही होती है। जबकि वैधिता के प्रकार और उसकी विधियाँ अलग होती है।

विश्वसनीयता की गणना करने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने कई विधियों का विकास किया है। किसी परीक्षण की विश्वसनीयता की गणना करने की प्रमुख समस्या यह है कि वास्तविक अंकों की चरिता का अनुमान शुद्ध रूप में कैसे किया जाय अथवा त्रुटि अंक चरिता का अनुमान शुद्ध रूप में कर लिया जाये तो वास्तविक अंक चरिता निकाल सकते हैं। विश्वसनीयता गुणक वास्तविक अंक चरिता का अंश होता हैं प्राप्तांक चरिता उपलब्ध होती है। मनोवैज्ञानिकों ने इन विभिन्न विधियों द्वारा यही अनुमान लगाने का प्रयास किया है कि प्राप्तांक चरिता में वास्तविक अंक चरिता कितनी हो सकती है। जैसे–

$$\text{प्राप्तांक} = \text{वास्तविक अंक चरिता} + \text{त्रुटि चरिता}$$

$$\text{विश्वसनीयता गुणक} = \frac{\text{वास्तविक अंक चरिता}}{\text{प्राप्तांक चरिता}}$$

$$\text{विश्वसनीयता गुणक} = \frac{\text{प्राप्तांक चरिता} - \text{त्रुटि अंक}}{\text{प्राप्तांक चरिता}}$$

$$r_{tt} = \frac{\sigma_t^2 - \sigma_e^2}{\sigma_t^2} - \frac{\sigma_e^2}{\sigma_t^2}, \qquad \sigma_\infty^2 = r_{tt}\sigma_t^2$$

$$\sigma_t^2 = \sigma_\infty^2 + \sigma_e^2 \qquad \sigma_e^2 = \sigma_t^2 - \sigma_\infty^2$$

विश्वसनीयता की गणना में वास्तविक अंक चरिता अथवा त्रुटि चरिता का अनुमान लगाने का प्रयास किया जाता है।

इसके लिए जिन प्रमुख विधियों को साधारणतया प्रयुक्त करते हैं वे अधोलिखित हैं–

ली जे॰ क्रानबैक ने अपनी पुस्तक में चार विधियों का उल्लेख किया है। इन्होंने विश्वसनीयता गुणक को स्वत: सह-सम्बन्ध बताया है।

(1) **स्थायित्व गुणक** (Coefficient of Stability)—अन्य मनोवैज्ञानिकों ने परीक्षण को पुन: परीक्षण विधि (Test retest method) की संज्ञा दी है।

(2) **तुल्यता गुणक** (Coefficient of Equivalence)—जिसे अन्य विद्वानों ने समान प्रारूप विधि अथवा विकल्प प्रारूप कहा है।

(3) **स्थायित्व एवं तुल्यता गुणक** (Coefficient of Stability and Equivalence)—अन्य विद्वान अर्द्ध-विच्छेद विधि (Split half method) भी कहते हैं।

(4) **आन्तरिक स्थायित्व गुणक** (Coefficient of Internal consistency)—अन्य विद्वान इसे तर्कयुक्त तुल्यता विधि (Rational Equivalence method) भी कहते हैं। इसे कूडर रिचार्डसन ने दिया है। इन विधियों के अतिरिक्त पाँचवी हाइट ने दी है जो विश्वसनीयता गुणक का अनुमान अधिक शुद्ध रूप में करती है।

(5) **चरिता विश्लेषण विधि** (Analysis of variance method)—इस विधि का विकास हाइड ने किया है इसलिए इस विधि को हाइड विश्वसनीयता (Hoyt Reliability) भी कहते हैं।

(1) स्थायित्व गुण

क्रानबैक की इस विधि को गिलफोर्ड ने परीक्षण पुनर्परीक्षण विधि (Test Retest Reliability) कहा है। विश्वसनीयता की यह विधि सबसे सरल तथा सुगम विधि है। इस विधि में एक न्यादर्श का चयन करके यह परीक्षण दिया जाता है। तथा कुछ समयोपरान्त उसी न्यादर्श को वही परीक्षण दिया जाता है। इस प्रकार न्यादर्श के दो प्राप्तांक मिल जाते हैं। इन दोनों में सांख्यिकीय की प्रविधि द्वारा सह-सम्बन्ध की गणना की जाती है। इसी सह-सम्बन्ध गुणक को विश्वसनीयता गुणक (Coefficient of Stability) कहते हैं।

पुनर्परीक्षण विधि की अवधारणा (Assumptions of Coefficient of Stability)—इस विधि की निम्नलिखित अवधारणाएँ हैं–

1. परीक्षण में पदों की संख्या अधिक होती है इसलिए परीक्षार्थी पदों का स्मरण नहीं रख पाते, और अभ्यास का भी पुर्नपरीक्षण के प्राप्तांक पर प्रभाव नहीं पड़ता है।
2. परीक्षार्थी की आन्तरिक योग्यता स्थायी होने के कारण परिपक्वता का भी प्रभाव पुनर्परीक्षण के प्राप्तांकों पर नहीं होता।

पुनर्परीक्षण विधि की विशेषताएँ (Characteristics of Coefficient of Stability)—इस विधि की निम्नांकित विशेषताएँ हैं–

नोट

1. यह विश्वसनीयता ज्ञात करने की सबसे सरल विधि है।
2. यह विधि गति परीक्षणों के लिए अधिक उपयुक्त है।
3. इस विधि में सांख्यिकी की सह-सम्बन्ध प्रविधि का प्रयोग सरलता से किया जाता है जो विश्वसनीयता गुणक होता है।
4. पुनर्परीक्षण की अवधि छः माह से कम ही होनी चाहिए।

पुनर्परीक्षण विधि की सीमाएँ (Limitations of Coefficient of Stability)—इस विधि की अधोलिखित सीमाएँ है–

1. पुनर्परीक्षण के प्राप्तांकों पर स्मृति, अभ्यास, परिपक्वता एवम् कौशल का प्रभाव पड़ता है।
2. परीक्षणों का कठिनाई-स्तर समान नहीं होता है, इसलिए पदों की विजातीयता विश्वसनीयता गुणक को प्रभावित करती है।
3. इस विधि में समय और शक्ति अधिक अपव्यय होता है और विश्वसनीयता गुणक शुद्ध नहीं होता है। परीक्षण की वास्तविक विश्वसनीयता सदैव कम होती है।
4. पुनर्परीक्षण के समय न्यादर्श के सभी परीक्षार्थी का उपलब्ध होना भी सम्भव नहीं हो पाता है यह भी देखा गया है कि पुनर्परीक्षण में अभ्यर्थी इतने गम्भीर नहीं रहते, जिससे उनके प्राप्तांकों में अधिक अन्तर हो जाता है।

स्थायित्व गुणक का अर्थापन (Interpretation of Coefficient of Stability)—इस विधि द्वारा जो विश्वसनीयता गुणक प्राप्त होता है उसका अर्थापन अधोलिखित रूप में कर सकते हैं–

उसकी

परीक्षार्थी	प्रथम बार	द्वितीय बार
1	X_{11}	X_{12}
2	X_{21}	X_{22}
3	X_{31}	X_{32}
4	X_{41}	X_{42}
⋮	⋮	⋮
N	X_{N1}	X_{N2}
$X_1 = T + E_1$	$e_1 = t = e_1$	विचलन
$X_2 = T + E_2$	$e_2 = t = e_2$	विचलन

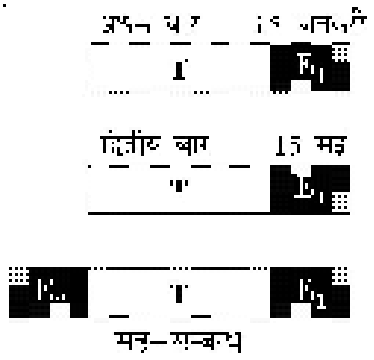

सहसम्बन्ध ज्ञात करने हेतु पीयरसन सह-सम्बन्ध विधि का प्रयोग करते हैं जिसका मूल सूत्र है–

$$r_{x_1x_2} = \frac{\Sigma x_1 x_2}{N\sigma_{x_1}\sigma_{x_2}} \quad \therefore \quad x_1 = t + e_1$$

$$x_2 = t + e_2$$

$$= \frac{\Sigma(t+e_1)(t+e_2)}{N\sigma_{x_1}\sigma_{x_2}}$$

जबकि $\Sigma e_1 = 0$, $\Sigma e_2 = 0$ [illegible]

$$= \frac{\Sigma t_2}{N\sigma_{x_1}\sigma_{x_2}} = \frac{\Sigma t_2}{N\sigma^2}$$

जबकि
$$\sigma_t = \sqrt{\frac{\Sigma(T - M)^2}{N}}$$

$$r_{xx} = \frac{\sigma_t^2}{\sigma_x^2} = \frac{\text{वास्तविक अंक प्रसरण}}{\text{प्राप्तांक अंक प्रसरण}}$$

इस विधि द्वारा विश्वसनीयता गुणक वास्तविक अंक चरिता का अंश होता है। यह विश्वसनीयता गुणक का सैद्धान्तिक आधार है। स्थायित्व गुणक का अर्थापन क्रानबैक ने एक आकृति की सहायता से किया है जिसमें दो प्रकार के गुणों को सम्मिलित किया है–सामान्य और विशिष्ट। यह स्थायी और दो प्रकार के गुण होते हैं जिन्हें निम्नांकित आकृति में प्रदर्शित किया है। स्थायित्व गुणक परीक्षण की स्थायी विशेषताओं के कारण होती हैं, जो परीक्षार्थी के सामान्य और विशिष्ट दोनों गुणों को सम्मिलित करती है। पुनर्परीक्षण में परीक्षा प्रथम बार पन्द्रह जनवरी को और दूसरी बार पन्द्रह मई को दी गयी है। इन दोनों प्राप्तांकों में सह-सम्बन्ध परीक्षण के स्थायी विशेषता पर निर्भर होता है जिसमें वास्तविक अंक के सामान्य और विशिष्ट दोनों कारक सम्मिलित होते हैं।

(2) तुल्यता गुणक अथवा समान्तर प्रारूप विधि या विकल्प प्रारूप विधि

यह विधि प्रथम विधि का सुधारात्मक रूप है। पहली विधि की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए इस विधि का विकास किया गया है, जिससे स्मृति, अभ्यास, परिपक्वता एवम् कौशलता आदि विश्वसनीयता गुणक को प्रभावित न कर सकें। इस विधि के अन्तर्गत दो समान्तर परीक्षणों की रचना की जाती है। एक ही प्रकारण पर दो परीक्षण समान पदों की संख्या तथा समान परीक्षण देने का समय रखा जाता है और पदों की विशेषताओं में समरूपता रखने का प्रयास किया जाता है। इन दोनों परीक्षण ों को एक ही न्यादर्श पर एक ही दिन किया जाता है। दोनों परीक्षणों के प्राप्तांकों में सह-सम्बन्ध गुणक ज्ञात किया जाता है इसे तुल्यता गुणक कहते हैं।

तुल्यता गुणक विधि की अवधारणा

इस विधि की अधोलिखित अवधारणाएँ हैं–

1. परीक्षण के दो समान्तर प्रारूप पाठ्यवस्तु पदों की संख्या पदों के प्रकार, पदों के कठिनाई स्तर व विभेदीकरण शक्ति और परीक्षण देने की दृष्टि से समान होते हैं।
2. इस विधि में परीक्षण के दोनों प्रारूपों को एक ही दिन दिया जाता है, इसलिए छात्रों की परिपक्वता विश्वसनीयता गुणक को प्रभावित नहीं करती हैं।
3. इन दोनों परीक्षणों के प्राप्तांकों के मध्य जो सह-सम्बन्ध होता है वह विश्वसनीय गुणक को प्रगट करता है। जिसे तुल्यता गुणक कहते हैं।

तुल्यता गुणक विधि की विशेषताएँ

इस विधि की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं–

1. यह विधि पुनर्परीक्षण विधि के सुधार के रूप में विकसित की गयी है।
2. इस विधि में छात्रों की स्मृति, अभ्यास तथा परिपक्वता का प्रभाव नहीं होता है।
3. इस विधि में दोनों प्रारूपों को एक ही न्यादर्श पर दिया जाता है इसलिए समय की बचत होती है, जबकि पुनर्परीक्षण में समय की प्रतीक्षा की जाती है।

नोट

तुल्यता गुणक विधि की सीमाएँ (Limitations of Coefficient of Equivalence)—इस विधि की अधोलिखित सीमाएँ हैं–

1. परीक्षण के दो समान्तर प्रारूपों का बनाना एक कठिन कार्य है।
2. इस विधि में समय, धन और शक्ति तीनों का अधिक अपव्यय होता है, क्योंकि एक परीक्षण की रचना के बजाय दो परीक्षणों की रचना करनी होती है, जिसमें दो गुनी समय शक्ति और धन की आवश्यकता होती है।
3. गिलफोर्ड तथा अन्य विद्वानों ने सांख्यिकीय की दृष्टि से विश्वसनीयता गुणक को स्वत: सह-सम्बन्ध (Self Correlation) की संज्ञा दी है।
4. परीक्षण के दो समान्तर प्रारूप में पदों के कठिनाई स्तर तथा विभेदीकरण की शक्ति में समानता लाना सम्भव नहीं है।
5. इस विधि में एक ही दिन एक ही समूह को दोनों परीक्षण दिये जाते हैं इसलिए दुबारा के परीक्षण में थकान और रूचि प्रभावित करती है।

तुल्यता गुणक का अर्थापन (Interpretation of Coefficient of Equivalence)—इस विधि द्वारा जो विश्वसनीयता गुणक प्राप्त होता है उसका अर्थापन अग्रलिखित रूप में कर सकते हैं–

परीक्षार्थी	प्रथम परीक्षा (X_1)	द्वितीय परीक्षा (X_2)
1	X_{11}	X_{21}
2	X_{12}	X_{22}
3	X_{13}	X_{23}
4	X_{14}	X_{24}
⋮	⋮	⋮
N	N_{1N}	X_{2N}

$$\text{तुल्यता गुणक} = r_{x_1x_2} = \frac{\Sigma x_1 x_2}{N\sigma_{x_1}\sigma_{x_2}}$$

प्रथम परीक्षण प्राप्तांक X_1 15 कमरों

द्वितीय परीक्षण प्राप्तांक X_2 15 कमरों

T = (सामान्य + विशिष्ट$_1$) अंक

$= G + S_1 \quad \therefore \quad X_1 = G + S_1 + E_1$

T_2 = (सामान्य + विशिष्ट$_2$) अंक

$= G + S_2 \quad \therefore \quad X_2 = G + S_2 + E_2$

सह-सम्बन्ध $= r_{x_1x_2}$

इस विधि में दो समान्तर परीक्षणों के प्राप्तांकों में सह-सम्बन्ध उनके सामान्य कारकों की वजह से आता है। इस प्रकार विश्वसनीयता गुणक पुनर्परीक्षण विधि से कम होता है। क्योकि प्राप्तांक में विशिष्ट कारक और आ जाता है।

तुल्यता गुणक का अर्थापन क्रानबैक ने भी सामान्य तथा विशिष्ट कारकों और उनके स्थायी विशेषता के रूप में किया है–

विश्वनीयता का तुल्यता गुणक

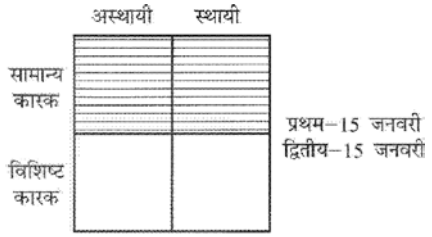

वास्तविक प्राप्तांक = सामान्य अंक + विशिष्ट अंक

तुल्यता गुणक परीक्षण के सामान्य कारक अंकों के स्थायी और अस्थायी गुणों पर आधारित होती है। इस विधि के अन्तर्गत परीक्षण के दो समान्तर प्रारूप एक ही दिन एक ही न्यादर्श को दिये जाते हैं इसलिए उन दोनों प्रारूपों के प्राप्तांकों में सह-सम्बन्ध सामान्य कारक के स्थायी और अस्थायी दोनों गुणों पर आश्रित होता है, जबकि पुनर्परीक्षण में सामान्य और विशिष्ट कारकों के स्थायी गुण पर आधारित होते हैं। इसलिए पुनर्परीक्षण गुणक, तुल्यता गुणक से सदैव अधिक होता है।

(3) स्थायित्व एवं तुल्यता गुणक अथवा अर्द्ध विच्छेद विधि

विश्वसनीयता ज्ञात करने की यह विधि उपरोक्त दोनों विधियों की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए इस विधि का विकास किया गया है। इस विधि में परीक्षण को न्यादर्श के परीक्षार्थियों को एक ही बार दिया जाता है और एक ही बार के प्राप्तांकों का विश्लेषण करके विश्वसनीयता गुणक ज्ञात कर लिया जाता है। इस विधि में परीक्षण के पदों को दो समान भागों में विभाजित कर लिया जाता है, जैसे–(Even) समक्रम संख्याओं के पदों को एक खण्ड में और दूसरे विषमक्रम में (Odd) विषमक्रम संख्याओं के पदों को दूसरे खण्ड में सम्मिलित करते हैं, और प्रत्येक छात्र के प्राप्तांक को भी इसी प्रकार दो खण्डों में अलग-अलग अंकन करके व्यवस्थित करते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि एक परीक्षार्थी के उत्तरों का अंकन समक्रम संख्याओं के पदों का अंकन पृथक रूप में करते हैं और दूसरी बार विषमक्रम संख्याओं के पदों का अंकन करते हैं। इन दोनों खण्डों के प्राप्तांकों में पीयर्सन की विधि द्वारा सह-सम्बन्ध की गणना करते हैं। यह सह-सम्बन्ध गुणक आधे परीक्षण की विश्वसनीयता को प्रदर्शित करता है। इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है–

परीक्षार्थी	प्रथम खण्ड (x_1) सम क्रमसंख्या पद	द्वितीय खण्ड (x_2) विषम क्रमसंख्या पद
1	X_{11}	X_{21}
2	X_{12}	X_{22}
3	X_{13}	X_{23}
4	X_{14}	X_{24}
⋮	⋮	⋮
N	N_{1N}	X_{2N}

विश्वसनीयता गुणक (आधे परीक्षण की) $r_{x_1x_2} = \dfrac{\Sigma x_1 x_2}{N \sigma_{x_1} \sigma_{x_2}}$

नोट

उपरोक्त विधि द्वारा आधे परीक्षण की विश्वसनीयता गुणक की गणना की जाती है। सम्पूर्ण परीक्षण की विश्वसनीयता गुणक के लिए स्पीयरमेन ब्राउन प्रोफेसी सूत्र (Spearman Brown Prophesy Formula) का प्रयोग करते हैं जो निम्नांकित है–

$r_{xx} = \frac{nr_{x1,2x1,2}}{1 + (n-1)\, r_{x1,2x1,2}}$ आधे परीक्षण का सहसम्बन्ध गुणक ज्ञात होता है।

अथवा $r_u = \frac{nr_{t,2t/2}}{1 + (n-1)r_{t,2t/2}} = \frac{2r_{t/2t/2}}{1 + r_{t,2t/2}}$ सम्पूर्ण परीक्षण हेतु दुगना करना होता है।

जबकि r_u = सम्पूर्ण परीक्षण की विश्वसनीयता

n = परीक्षण के आधार में वृद्धि अर्थात दुगना

$r_{t/2t/2}$ = आधे परीक्षण की विश्वसनीयता

उदाहरण–आधे परीक्षण की विश्वसनीयता .80 है तो सम्पूर्ण परीक्षण की विश्वसनीयता ज्ञात कीजिए। परीक्षण का आकार दुगना ($n = 2$) होगा।

$$r_u = \frac{2 \times .80}{1 + .80} = \frac{1.60}{1.80} = \frac{8}{9} = 0.89$$

अर्द्ध-विच्छेद विधि की अवधारणा (Assumptions of Split-half Method)ख़इस विधि की अवधारणाएँ अधोलिखित हैं–

1. परीक्षण के सभी पदों का कठिनाई स्तर समान होता है इसलिए दो खण्डों में बाँटने से दोनों समान होते हैं। इसलिए इसे तुल्यता गुणक कहते हैं।
2. दोनों खण्डों के विभाजन में यह भी ध्यान रखा जाता है कि पाठ्यवस्तु भी दोनों में समान हो, इसलिए स्थायित्व (Satability) गुणक भी कहते हैं।
3. दोनों खण्डों में पदों की संख्या समान होती है तथा दोनों खण्डों के पदों को सरल करने में समय भी समान लगता है।
4. इस विधि में सम्पूर्ण परीक्षण का विश्वसनीयता गुणक ज्ञात करने में स्पीयरमैन ब्राउन प्रोफेसी सूत्र का प्रयोग आवश्यक होता है। अतः इस सूत्र की अवधारणाएँ भी इस विधि में मान्य होती हैं–

अर्द्ध-विच्छेद विधि के विशेषताएँ (Characteristics of Split-half Method)ख़इस विधि की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं–

1. उपरोक्त दोनों विधियों की सीमाओं का इस विधि में पूर्ण रूप से सुधार किया गया है।
2. विश्वसनीयता गुणक को स्मृति, अभ्यास, कौशल परिपक्वता आदि कारक प्रभावित नहीं करते हैं।
3. यह विधि समय, शक्ति और धन की दृष्टि से मितव्ययी है। क्योंकि इसमें परीक्षण एक ही बार किया जाता है।
4. यह विधि गति परीक्षण अथवा सजातीय परीक्षण की विश्वसनीयता के लिए अधिक उपयुक्त है, क्योंकि इसकी अवधारणा यह है कि पदों का कठिनाई-स्तर समान होता है।

अर्द्ध विच्छेद विधि के उपयोग (Use of Split-halfs Method) ख़इस विधि का प्रयोग अधोलिखित परीक्षणों के लिए किया जाता है–

1. इस विधि में आकस्मिक त्रुटि में विश्वसनीयता गुणक के अधिक होने की सम्भावना रहती है।
2. परीक्षण को दो खण्डों में कई प्रकार से विभाजित कर सकते हैं, जैसे–आरम्भ के पचास प्रतिशत और अन्त के पचास प्रतिशत अथवा विषम क्रमसंख्या और सम क्रमसंख्या के पदों को अथवा लॉटरी प्रणाली के द्वारा आदि।

नोट

प्रत्येक विभाजन से विश्वसनीय गुणक अलग-अलग प्राप्त होगा, इसलिए कौन-सा विभाजन उत्तम है यह निर्णय लेना भी कठिन हो जाता है।

3. परीक्षण के पदों को दो समान खण्डों में विभाजित करना सम्भव नहीं है, क्योंकि किसी प्रकार के विभाजन से दो खण्डों का प्रारूप प्रत्येक दृष्टि से समान नहीं हो सकता है।
4. इस विधि को शक्ति परीक्षण (Power test) अथवा विजातीय पदों के परीक्षण में प्रयुक्त नहीं कर सकते हैं।

अर्द्ध-विच्छेद विश्वसनीयता का अर्थापन (Interpretation of Split-half Reliability) ख़इस विधि द्वारा जो विश्वसनीयता गुणक प्राप्त होता है उसका अर्थापन तुल्यता गुणक के समान ही कर सकते हैं। इस विधि में दोनों खण्डों के सामान्य कारक अंकों के स्थायी और अस्थायी गुणों पर निर्भर होते हैं। क्योंकि एक परीक्षण के दो खण्ड किए जाते हैं उन दोनों के विशिष्ट कारक और त्रुटि पृथक् हो जबकि सामान्य कारक अंक दोनों के एक हों। अत: विश्वसनीयता-गुणक सामान्य कारक अंक के स्थायी और अस्थायी गुणों पर आश्रित होता है। इस विधि से प्राप्त विश्वसनीयता गुणक वास्तविक से कम होता है।

4.11 विश्वसनीयता को प्रभावित करने वाले घटक

एक परीक्षण के विश्वसनीयता गुणांक को प्रभावित करने वाले अनेक कारक होते हैं उनमें से प्रमुख कारणों का उल्लेख अधोलिखित है–

(1) **परीक्षण का आकार अथवा परीक्षण में पदों की संख्या** (Length of the Test)–परीक्षण की विश्वसनीयता उसके आधार पर निर्भर होती है। अर्थात् जिस परीक्षण में पदों की संख्या अधिक होती है उसकी विश्वसनीयता भी अधिक है। निबन्धात्मक परीक्षणों में पदों या प्रश्नों की संख्या कम होती है इसलिए विश्वसनीय नहीं होता है अर्थात् प्राप्तांकों में स्थायित्व नहीं होता है जबकि वस्तुनिष्ट परीक्षाओं में पदों की संख्या अधिक होती है इसलिए वह विश्वसनीय अधिक होते हैं। पदों की संख्या अधिक होने से सम्पूर्ण प्रकरणों को सम्मिलित कर लिया जाता है जिससे वास्तविक अंकों में वृद्धि होती है और विश्वसनीयता गुणांक बढ़ जाता है।

स्पीयरमैन ब्राउन–प्रोफेसी सूत्र भी इस कारक से सम्बन्धित है कि आकार बढ़ाने से विश्वसनीयता गुणांक बढ़ जाता है। अर्द्ध विच्छेदी-विधि में इसे प्रयुक्त किया गया है। दो खण्डों में विभाजित करके विश्वसनीयता आधे परीक्षण की होती है। पूर्ण परीक्षण के लिए सूत्र का प्रयोग कर विश्वसनीयता गुणांक की गणना की जाती है। जबकि $n = 2$ और $r_{1/2\ 1/2}$ आधे परीक्षण की विश्वसनीयता गुणक है।

$$r_{tt} = \frac{nr_{t/2t/2}}{1 + (n-1)r_{1/2t/2}} = \frac{2r_{t/2t/2}}{1 + r_{1/2t/2}}$$

नोट

(2) विश्वसनीयता गुणांक की विधियाँ (Methods of Estimating Reliability)–एक परीक्षण की विश्वसनीयता ज्ञात करने के लिये कई विधियों को दिया गया है। प्रत्येक विधि द्वारा विश्वसनीयता गुणांक अलग-अलग प्राप्त होता है। इस प्रकार विश्वसनीयता की विधि भी प्रभावित करती है। विश्वसनीयता गुणांक के बारे में सामान्यीकरण नहीं किया जा सकता है। प्रथम दोनों विधियों द्वारा विश्वसनीयता गुणांक वास्तविक विश्वसनीयता से कम होता है जबकि कूडर और अर्द्ध विच्छेद विधि द्वारा वास्तविक विश्वसनीयता से अधिक होता है और चरिता विश्लेषण विधि द्वारा विश्वसनीयता के समीप होता है। इस प्रकार विश्वसनीयता की विधियाँ भी इसको प्रभावित करती है।

(3) समूह की विजातीयता (Group Heterogenwity)–विश्वसनीयता को प्रभावित करने वाला तीसरा घटक समूह की विजातीयता है। विश्वसनीयता ज्ञात करने के लिये परीक्षण को जिस समूह को दिया जाता है और वह यदि विजातीय समूह है तो प्राप्तांकों की चरिता अधिक होगी और विश्वसनीयता गुणांक वास्तविक से कम होगा। यदि यह समूह विजातीय है तो प्राप्तांकों की चरिता कम होगी और विश्वसनीयता गुणांक अपेक्षाकृत अधिक होगा। इस तथ्य को सूत्र से स्पष्ट कर सकते हैं–

$$\text{विश्वसनीयता } r_{tt} = \frac{\sigma_t^2}{\sigma_x^2} - \frac{\text{वास्तविक अंकों की चरिता}}{\text{प्राप्तांक अंक की चरिता}}$$

समूह की विजातीयता से प्राप्तांकों की अंक चरिता अधिक होगी और वास्तवकि अंक चरिता वही रहेगी तो विश्वसनीयता गुणांक कम हो जायेगा।

$$\text{SEE} = \sigma = \sqrt{(1 - r_{tt})}$$

मापन त्रुटि भी बढ़ जायेगी।

(4) परीक्षण की गत्यात्मकता (Speededness of the test)–विश्वसनीयता को प्रभावित करने वाला चौथा घटक परीक्षण की गत्यात्मकता होता है। परीक्षण की यह विशेषता गति परीक्षण और शक्ति परीक्षण के मध्य की स्थिति होती है। यदि परीक्षण गयात्मकता (.50) से बढ़ती है तो विश्वसनीयता गुणांक कम हो जाता है और गयात्मकता घट जाती है तो विश्वसनीयता बढ़ती है। प्रथम चारों विधियों को गति परीक्षण के लिये उपयोगी मानते हैं और व्हाइट विश्वसनीयता को गत्यात्मक परीक्षण के लिए अधिक उपयुक्त माना जाता है। यह गुण परोक्ष रूप से परीक्षण के पदों की सजातीयता और विजातीयता (कठिनाई स्तर की दृष्टि) पर निर्भर होता है। शक्ति परीक्षण में समय कारक अधिक महत्वपूर्ण नहीं होती है। गति परीक्षण मे समय कारक ही प्रमुख होता है क्योंकि परीक्षार्थियों की गति का मापन किया जाता है इसलिये समय महत्वूपर्ण कारक है।

(5) पदों को अनुमान से सही करने का अवसर (Guessing Errors)–परीक्षण में पदों को अनुमान से सही करने का जितना अधिक अवसर होता है वह भी विश्वसनीयता को प्रभावित करता है। जैसे सत्य/असत्य प्रकार के पदों में पचास प्रतिशत पदों का अनुमान से सही करने की सम्भावना रही है। बहुविकल्पी पदों को अनुमान से सही करने की सम्भावना

नोट

विकल्पों की संख्या पर आधारित होती है। यदि चार विकल्प हैं तो सम्भावना पच्चीस प्रतिशत (25%) और यदि पांच विकल्प हैं तो अनुमान से सही करने की सम्भावना बीस प्रतिशत (20%) होती है। इस प्रकार अनुमान से सही करने की त्रुटि जितनी कम होती है उतनी ही परीक्षण की विश्वसनीयता अधिक होती है। यही कारण है कि बहुविकल्पीय पदों को उत्तम माना जाता है।

(6) **परीक्षण देने की परिस्थितियाँ तथा अंकन की प्रक्रिया** (Testing Conditions and Scoring Procedure)–परीक्षण को देने की परिस्थितियों में जिन निर्देशों को प्रयुक्त किया जाये उनमें स्थायित्व न होने पर भी विश्वसनीयता प्रभावित होती है। इसके अतिरिक्त परीक्षार्थी को जिन परिस्थितियों में परीक्षण दिया जाये उनमें भी समानता रहनी चाहिये, यदि इन परिस्थितियों में विषमता होगी तो परीक्षण की विश्वसनीयता कम हो जायेगी।

परीक्षार्थियों की उत्तर पुस्तिकाओं के अंकन की प्रक्रिया स्पष्ट एवं वस्तुनिष्ठ होनी चाहिये। जैसे-सही के लिए एक अंक और गलत के लिये शून्य। परन्तु कुछ परीक्षण पदों के अंकन के सही के लिये दो तथा गलत के लिये शून्य तथा आंशिक रूप से सही करने वालों के लिये अंक निर्धारित किया जाये तो परीक्षण की विश्वसनीयता कम होगी।

(7) **परीक्षण की रचना** (Construction of Test)–परीक्षण के प्रश्नों का स्वरूप उनकी कठिनाई स्तर विभेदीकरण की शक्ति परीक्षण में पदों की व्यवस्था, परीक्षण के पदों में विकल्पों की संख्या, परीक्षण का समय, परीक्षण देने के निर्देश आदि सभी क्रियायें एवं विशेषतायें परीक्षण की विश्वसनीयता को प्रभावित करती हैं। यदि परीक्षण के पदों की व्यवस्था कठिनाई स्तर के चढ़ाव के क्रम में की जाती है तो विश्वसनीयता अधिक होगी यदि कठिनाई स्तर की दृष्टि से उनकी व्यवस्था नहीं की जाती तो विश्वसनीयता कम होगी।

(8) **परीक्षार्थियों का योग्यता स्तर** (Ability of Examinee)–यदि परीक्षण को केवल अधिक योग्य छात्रों को देकर विश्वसनीयता ज्ञात की जाये तो विश्वसनीयता गुणक वास्तविकता से अधिक आयेगा। यदि सभी प्रकार की योग्यता वाले छात्र सम्मिलित किये जायें तो विश्वसनीयता अधिक शुद्ध होती है।

विश्वसनीयता ज्ञात करने के लिये परीक्षण को छोटे समूह के छात्रों को दिया जाये तो विश्वसनीयता सही नहीं होगी, यदि बड़े समूह को दिया जाये तो विश्वसनीयता अधिक शुद्ध होती है। इस प्रकार परीक्षार्थियों की योग्यता और समूह का आकार, विश्वसनीयता को प्रभावित करती है।

परीक्षण की अविश्वसनीयता के स्त्रोत

परीक्षण की विश्वसनीयता के स्त्रोतों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है–

(1) आन्तरिक स्त्रोत तथा

(2) बाह्य स्त्रोत।

(1) **आन्तरिक स्त्रोत** (Internal Sources)–आन्तरिक स्त्रोत परीक्षण के स्वरूप से सम्बन्धित होते हैं। इनका मुख्य स्त्रोत पदों की संख्या, पदों के प्रकार, पदों की व्यवस्था, पदों का कठिनाई स्तर और उनके विभेदीकरण की शक्ति, पदों को अनुमान से सही करने का अवसर तथा सभी पाठ्य-वस्तु पदों की रचना परीक्षण की विश्वसनीयता के आन्तरिक

नोट

स्त्रोत कहलाते हैं परीक्षण को बनाते समय इन स्त्रोतों का ध्यान रखने से, इन स्त्रोतों को कम किया जा सकता है।

(2) बाह्य स्त्रोत (External Sources)–परीक्षण की बाह्य परिस्थितियों से सम्बन्धित होते हैं जैसे–परीक्षण में सम्मिलित होने वाले परीक्षार्थी, परीक्षण देने की परिस्थितियाँ और उनके उत्तर पुस्तिकाओं के अंकन प्रक्रिया आदि प्रमुख स्त्रोतों को कम कर सकते हैं।

ननले (Nunnally) ने अपनी 'मापन पुस्तक' में परीक्षण की विश्वसनीयता के छः स्त्रोतों का उल्लेख किया है। जो इस प्रकार है–

1. दिन-प्रतिदिन की विषमता।
2. पाठ्य-वस्तु का सही प्रतिनिधित्व न होना।
3. परीक्षण के पदों का समुचित ढंग से अंकन न होना।
4. अनुमान से सही करने की सम्भावना।
5. परीक्षण का प्रमापीकरण न होना।
6. समय अवधि की अस्थिरता।

4.12 विश्वसनीयता गुणक का अर्थापन

सामान्यतः विश्वसनीयता को सह-सम्बन्ध गुणांक से प्रदर्शित किया जाता है विश्वसनीयता ज्ञात करने की सभी विधियों द्वारा विश्वसनीयता गुणांक का उल्लेख किया गया है। विश्वसनीयता गुणांक के लिए निम्नांकित सामान्य अधिनियमों का अनुसरण किया जाता है।

(1) विश्वसनीयता गुणांक से यह विदित होता है कि परीक्षण की चरिता का कितना अंश त्रुटि चरिता रहित है। अर्थात् वास्तवकि चरिता कितनी है?

(2) विश्वसनीयता गुणक परीक्षण के पदों की संख्या पर निर्भर होता है।

(Reliablility Coefficient is the function of the length of the test.)

(3) विश्वसनीयता गुणक परीक्षार्थियों के प्राप्तांकों के प्रसार पर आधारित होता है।

(4) एक परीक्षण समूह किसी एक योग्यता स्तर पर विश्वसनीयता हो सकता है और अन्य योग्यता स्तर पर अविश्वसनीय हो सकता है।

(5) विश्वसनीयता गुणक वैधता गुणक के सम्बन्धित होता है। परन्तु वैधता-गुणक विश्वसनीयता गुणक के वर्गमूल से अधिक नहीं हो सकता।

$$\text{वैधता गुणांक} = \sqrt{\text{विश्वसनीयता गुणांक}}$$

$$r_{xy} = \sqrt{r_{xx}}$$

परीक्षणों के प्रकार (Types of Tests)–विश्वसनीयता के विवेचन में परीक्षणों के प्रकार का भी उल्लेख किया गया है। इसलिए यहाँ पर परीक्षणों के प्रकार और उनकी विशेषताओं का भी उल्लेख किया गया है। साधारणतः परीक्षणों को मूलरूप में तीन वर्गो में विभक्त कर सकते हैं।

(1) शक्ति परीक्षण या विजातीय परीक्षण पद (Power Test or Heterogeneous Test Items)

(2) गति परीक्षण या सजातीय परीक्षण (Speed Test or Homogenous Test Items)

(3) गत्यात्मक परीक्षण (Speeded Test)।

नोट

(1) शक्ति परीक्षण या विजातीय परीक्षण (Power Test or Heterogeneous Test Items) –शक्ति परीक्षण उसे कहते हैं, जिसमें परीक्षा देने के समय की कोई सीमा नहीं होती है। प्रत्येक परीक्षार्थी को इतना समय दिया जाता है जिससे वह अन्तिम प्रश्न तक पहुँच कर सरल कर सके। ऐसी परिस्थितियों में प्रत्येक परीक्षार्थी सभी प्रश्नों को हल करने का प्रयास करता है। परीक्षार्थी के प्राप्तांक पूर्ण रूप से छात्र की योग्यता पर निर्भर करता है कि वह कितने प्रश्नों को सही कर सकता है। शक्ति परीक्षण में कठिनाई स्तर अलग-अलग होता है। इस दृष्टि से परीक्षण को विजातीय कहा जाता है। परीक्षण में पदों को कठिनाई स्तर के क्रम में व्यवस्थित किया जाता है। सबसे सरल सबसे पहले और सबसे कठिन सबसे अन्त में रखा जाता है।

व्यावहारिक रूप में कोई भी परीक्षण ऐसा नहीं होता जिसमें छात्रों को या परीक्षार्थी को असीमित समय उसकों हल करने को दिया जाता है। सभी परीक्षणों को देने की समय सीमा होती है। समय सीमा का निर्धारण इस प्रकार किया जाता है कि परीक्षण का निर्माण जिस समूह के लिए किया गया है। इस समूह के 75 प्रतिशत परीक्षार्थी सभी प्रश्नों को हल कर सकते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि समूह के 75 परीक्षार्थी निर्धारित समय सीमा में अन्तिम पद तक पहुँच सकते हैं। इस प्रकार के परीक्षण में यह आवश्यक नहीं कि परीक्षार्थी द्वारा हल किए गए सभी प्रश्न सही हों।

(2) गति परीक्षण एवं सजातीय परीक्षण (Speed Test or Homogeneous Test Items) –गति परीक्षण के अन्तर्गत सभी प्रश्नों का कठिनाई स्तर समान होता है, इस दृष्टि से इसे सजातीय कहते हैं। गति परीक्षणों के द्वारा छात्रों की पदों के सरल करने की गति का मापन किया जाता है। जबकि शक्ति परीक्षण में परीक्षार्थी की **योग्यता एवं क्षमताओं का मापन** होता है। इसमें समय सीमा के अन्तर्गत एक भी छात्र अन्तिम पद तक नहीं पहुँच पाता है। परन्तु जितने प्रश्नों को हल करता है वे सभी सही होते हैं। छात्रों के प्राप्तांकों में अन्तर पूर्णतया प्रश्नों को हल करने की गति पर निर्भर करता है। इस प्रकार के परीक्षण ाों की प्रमुख बात यह है कि परीक्षार्थी ने कितने प्रश्न हल किए हैं। जितने प्रश्न हल किए हैं वे सभी सही होंगे उनमें कोई गलत नहीं होता है। गति परीक्षण में प्राप्तांकों की विषमता छात्रों के हल करने की गति पर निर्भर होती है। जबकि शक्ति परीक्षण में हल किए हुए प्रश्नों में कितने सही हैं यह प्राप्तांक परीक्षा की योग्यता पर निर्भर करता है।

(3) गत्यात्मक परीक्षण (Speeded Test)–व्यावहारिक कारणोवश वास्तव में कोई भी परीक्षण शक्ति परीक्षण नहीं होता है। किसी भी परीक्षण में असीमित समय नहीं दिया जाता है। शक्ति परीक्षण में कठिनाई स्तर और विभेदीकरण की दृष्टि से अधिक विषमता होती है और समय की सीमा भी होती है। समय की सीमा का निर्धारण इस प्रकार किया जाता है कि समूह के 75 प्रतिशत में 90 प्रतिशत अभ्यर्थी कितने समय में अन्तिम प्रश्न तक पहुँच पाते हैं, वही परीक्षण की समय सीमा होती है। इसलिए सभी शक्ति परीक्षण गत्यात्मक परीक्षण होते हैं।

किसी परीक्षण का गत्यात्मक अंश मापन करने के अनेक ढंग हैं। गत्यात्मक अंश (Degree of speededness) का प्रमुख सूत्र निम्नलिखित है–

$$\text{गत्यात्मक गुणांक} = \frac{S_r^2}{S_x^2} = 5.0$$

जबकि S_r = प्राप्तांकों की चरिता जो परीक्षार्थियों की पहुँच को गिनकर गणना की गई।

जबकि S_x = प्राप्तांकों की चरिता जो परीक्षार्थियों के सही किए गये प्रश्नों को गिनकर गणना की गई।

नोट

इस सूत्र के प्रयोग में निम्न प्रमुख परिस्थितियों की सम्भावना होती है–

(1) यदि परीक्षार्थी सभी प्रश्नों के अन्त तक पहुँच गये जैसे कि शक्ति परीक्षण में होता है, क्योंकि असीमित समय दिया जाता है। ऐसी स्थिति में (S_r =0) क्योंकि सभी छात्र अन्तिम प्रश्न तक पहुँच जाते हैं।

$$\text{शक्ति परीक्षण गुणांक} = \frac{S_r^2}{S_e^2} = \frac{0}{S_e^2} = 0$$

(2) परन्तु इन दोनों चरिताओं का अनुपात कितना है इस पर परीक्षण की विश्वसनीयता निर्भर करती है। परन्तु इस तथ्य से विश्वसनीयता को निर्धारित नहीं किया जा सकता है।

इस सन्दर्भ में इतना कह सकते हैं कि यदि गत्यात्मक गुणांक .50 और उससे अधिक हैं तो उसे उच्च गत्यात्मक परीक्षण (Highly Speeded Test) कहते हैं। यदि इससे (-50) कम है तब कुछ कहना सम्भव नहीं है।

विभिन्न परीक्षणों के लिए विश्वसनीयता का मान (Value of Reliabilities for Various Type of Tests)–शिक्षा तथा मनोविज्ञान में अनेक प्रकार के परीक्षणों को है। अपितु जी. सी. हेलम्सटेडर ने अपनी पुस्तक में एक तालिका की सहायता से परीक्षणों तथा इन मानों का उल्लेख किया है जिनका प्रयोग परीक्षणों की विश्वसनीयता के अर्थापन में कर सकते हैं।

परीक्षण के लिए विश्वसनीयता का मान (जी. सी. हेलम्सटेडर के अनुसार)

परीक्षण के प्रकार	निम्न	मध्य	उच्च
1. निष्पत्ति परीक्षण (Achievement)	0.66	0.92	0.98
2. शैक्षिक प्रवणता परीक्षण (Scholastic Ability)	0.56	0.90	0.97
3. प्रवणता मापन परीक्षण (Aptitude)	0.26	0.88	0.96
4. व्यक्तित्व मापन परीक्षण (Personality)	0.46	0.85	0.97
5. अभिरुचि अनुसूची (Interest)	0.42	0.84	0.95
6. अभिवृत्ति मापनी (Attitude)	0.47	0.79	0.98

इस तालिका से विदित होता है कि विभिन्न परीक्षणों की विश्वसनीयता गुणांकों में अधिक भिन्नता होती है। निम्न गुणांक का विस्तार 0.26 से 0.66 तक होता है और मध्य गुणांक का विस्तार 0.79 से 0.92 तक माना जाता है। परीक्षणों (Tests) का विश्वसनीयता गुणांक अधिक उच्च होता है जबकि अनुसूची और मापनी आदि का गुणांक मध्य होता है प्रवणता परीक्षण का विस्तार सबसे अधिक होता है निम्न गुणांक 0.26 सबसे कम होता है। इसलिए विभिन्न परीक्षणों के क्षेत्र में विश्वसनीयता गुणांक के ज्ञात करने और उसके अर्थापन में इन तथ्यों को ध्यान में रखना नितान्त आवश्यक है।

4.13 विश्वसनीयता की उपयोगिता

विश्वसनीयता की उपयोगिता विभिन्न प्रकार से है। कई प्रकार की त्रुटियों को केवल विश्वसनीयता की विभिन्न विधियों द्वारा पकड़ा जा सकता है। उनका वर्गीकरण तीन प्रकार से किया जा सकता है–

नोट

(1) मापन प्रविधि की त्रुटि (Error of Technique)–शिक्षा मापन में जिस प्रविधि का प्रयोग किया जाता है उसमें भी त्रुटि होती है। कुछ पदों के सही के लिए एक अंक और गलत के लिए शून्य अंक दिये जाते हैं तथा अन्य पदों के सही के लिए दो अंक और गलत के लिए शून्य दिया जाता है। ऐसी स्थिति में पदों का विश्लेषण, विश्वसनीयता और वैधता ज्ञात करना कठिन हो जाता है। इस प्रकार के दोष को अंकगणितीय त्रुटि कहते हैं।

परीक्षण के प्रयोग करने में अनुपयुक्त साधन से भी मापन में त्रुटि आती है, जैसे–छात्र अनुमान से प्रश्नों को सही कर लेता है। सत्य/असत्य प्रकार के पदों में पचास प्रतिशत पदों को अनुमान से ही किए जा सकते हैं, इसे हम अनुपयुक्त साधन प्रयोग की त्रुटि कहेंगे।

(2) मापन की त्रुटि (Errors of Measurement)–मापन की त्रुटि तीन प्रकार से होती है। यदि मापन का परीक्षण अपूर्ण है तो मापन की त्रुटि होती है। अपूर्ण परीक्षण का तात्पर्य यह है कि जिस प्रकारण के लिए परीक्षण की रचना की गयी है, उसमें सभी पक्षों पर पद नहीं बनाये गये। परिणामत: विश्वसनीयता कम होगी। सम्पूर्ण प्रकरण पर पदों को सम्मिलित करने से उसका आकार बढ़ जायेगा और परीक्षण की विश्वसनीयता भी बढ़ जायेगी।

जब किसी परीक्षण का प्रयोग अप्रशिक्षित व्यक्ति द्वारा किया जाता है तब भी प्राप्तांकों में भिन्नता अधिक हो जाती है जिसे मापन की त्रुटि कहते हैं। विश्वसनीयता ज्ञात करने के लिए एक परीक्षण को एक समूह पर विभिन्न अवसरों पर दिया जाता है तो प्राप्तांकों में उतार-चढ़ाव भी होता है। इस तरह से भी मापन में त्रुटि आती है।

मापन त्रुटि को दो कारकों द्वारा पहचाना जा सकता है, अर्थात् इसे दो प्रकार की त्रुटियों में विभाजित कर सकते हैं–

(अ) आपूर्ति की त्रुटि (Compensating errors) तथा

(ब) पक्षपात त्रुटि (Baised error)।

(अ) **आपूर्ति की त्रुटि** (Compensating error)–इस प्रकार की त्रुटि भी तीन प्रकार की होती है।

(1) परीक्षण में असीमित पदों को सम्मिलित न कर सकना।

(2) परीक्षण को असीमित बार छात्रों को न दे सकना।

(3) परीक्षण के उत्तरों को असीमित परीक्षकों द्वारा अंकन न कर सकना।

यदि किसी परीक्षण में उपरोक्त तीनों परिस्थितियों का अनुसरण कर सके तब मापन की त्रुटि शून्य हो जाती है क्योंकि कुछ छात्रों के प्राप्तांक वास्तविक अंकों से अधिक तथा अन्य कुछ छात्रों के प्राप्तांक वास्तविक अंकों से कम होते हैं जिससे त्रुटि की पूर्ति हो जाती है और त्रुटियों का समस्त योग शून्य हो जाता है। मापन का यह तथ्य सैद्धान्तिक आधार प्रस्तुत करता है, इस तथ्य को एक उदारहण से स्पष्ट किया गया है–

(ब) पक्षपात त्रुटि (Baised error)–पक्षपात त्रुटियाँ निम्नांकित कारणों से होती है।

(1) जिन कारकों का परीक्षण द्वारा मापन किया जाता है उनकी सजातीयता के आधार पर विभाजन न कर सकना।

(2) प्रश्न का पद किस विशेषता का मापन करता है इसका सही चयन न कर सकना।

(3) परीक्षण के लिए अच्छे पदों का चयन न कर सकना।

(4) छात्रों के उत्तरों को ईमानदारी के साथ अंकन न कर सकना।

(5) परीक्षण में विभिन्न प्रकार के पदों का समुचित रूप से सम्मिलित न कर सकना।

इन उपरोक्त पाँच परिस्थितियों के द्वारा जो मापन में त्रुटि होती है उसे पक्षपातपूर्ण त्रुटि कहा जाता है। इस प्रकार आपूर्ति त्रुटि और पक्षपातपूर्ण त्रुटि, मापन त्रुटि के प्रमुख घटक हैं।

नोट

मापन त्रुटि एक व्यक्ति के प्राप्तांकों को प्रभावित करती है। इसका तात्पर्य यह है कि परीक्षण पर जो प्राप्तांक आये हैं वह व्यक्ति के वास्तविक अंक नहीं हैं। उसमें मापन त्रुटि भी सम्मिलित है। वास्तविक अंक की गणना विश्वसनीयता गुणक और समूह के प्रमाणिक विचलन की सहायता से ज्ञात कर सकते हैं।

(3) न्यादर्श की त्रुटि (Errors of Sampling)–तीसरे प्रकार की त्रुटि न्यादर्श के चयन के कारण होती है। यदि न्यादर्श जनसंख्या का शुद्ध रूप में प्रतिनिधित्व करता हो तो इस प्रकार की त्रुटि शून्य हो जाती है परन्तु शिक्षा और मनोविज्ञान में न्यादर्श चयन करने की किसी भी ऐसी प्रविधि का विकास नहीं हो सका है जिससे शुद्ध प्रतिनिधित्व करने वाले न्यादर्श का चयन हो सके। इसलिए शिक्षा और मनोविज्ञान के अन्तर्गत न्यादर्श की त्रुटि रहती है। जिसके दो प्रमुख कारण हैं : प्रथम कारण यह है कि न्यादर्श के छात्रों के प्राप्तांकों में उतार-चढ़ाव का अवसर (Chance of Fluctuation) रहता है।

न्यादर्श का आकार साधारणतया अधिक रखा जाता है, चाहे उसका प्रयोग मापन के क्षेत्र में हो या अनुसन्धान के क्षेत्र में। न्यादर्श के आकार को बड़ा रखने से दो लाभ होते हैं।

प्रथम–मापन त्रुटि शून्य हो जाती है समूह में अधिक व्यक्तियों को सम्मिलित करने से चर त्रुटि का योग सदैव शून्य होता है।

द्वितीय–न्यादर्श का आकर जितना बढ़ाते जाते हैं उतना ही वह जनसंख्या का प्रतिनिधित्व शुद्ध रूप में करता है। यदि न्यादर्श का आकार अनन्त कर दिया जाय तो वह शुद्ध जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करेगा। इस तथ्य को सांख्यिकी के विश्वसनीयता सूत्रों की सहायता से अधिक स्पष्ट कर सकते हैं। जैसे–

4.14 सारांश

वैधता की परिभाषा शिक्षा और मनोविज्ञान के विद्वानों ने अनेक प्रकार से की है। उनमें से कुछ प्रमुख विद्वानों की परिभाषाओं को यहाँ दिया गया है।

ली जे. क्रानबैक के अनुसार–किसी परीक्षण की वैधता उसकी वह सीमा है, जिस सीमा तक वह, वही मापता है, जिसके लिए उसका निर्माण किया गया है। आर. एल. थार्नडाइक के अनुसार–कोई भी मापन-विधि उस सीमा तक वैध है, जिस सीमा तक वह उस कार्य के किसी सफल मापन से सह-सम्बन्ध है, जिसके विषय में पूर्व कथन हेतु उसकी रचना की गयी है।

आमुख वैधता के समय में मनोवैज्ञानिक एक राय नहीं हैं। कुछ लोगों इसे एक वैधता के प्रकार मानते हैं, और कुछ लोग नहीं मानते। क्योंकि इसके लिए कोई न्याय संगत औचित्य नहीं है। इस प्रकार की वैधता का महत्व व्यावसायिक दृष्टि से तो है परन्तु मनोवैज्ञानिक दृष्टि से नहीं है। इस प्रकार की वैधता से तात्पर्य यह है कि परीक्षण का बाह्य रूप ऐसा हो जिससे यह प्रतीत हो कि यह विशेष व्यवहारों या गुण के मापन के लिए बनाया गया है।

एक अच्छे परीक्षण की कई विशेषताएँ होती हैं। उनमें से परीक्षण की विश्वसनीयता एक विशेष गुण माना जाता है। परीक्षण की विश्वसनीयता इस तथ्य को प्रकट करती है कि उसमें चर-त्रुटि (टंतपइसम म्ततवत) कितनी हैं यदि परीक्षण में चर त्रुटि कम है तो वह अधिक विश्वसनीय परीक्षण होगा, इसके विपरीत यदि चर त्रुटि अधिक है तो परीक्षण की विश्वसनीयता कम होगी।

नोट

ख एक परीक्षण में जितने अधिक पदों को सम्मिलित किया जाता है उतना ही परीक्षण अधिक विश्वसनीय होता है।

जैसे–निबन्धात्मक परीक्षा में साधारणत: पांच प्रश्न सरल कराये जाते हैं इसलिए कम विश्वसनीय होता है और वस्तुनिष्ठ परीक्षा में लगभग सौ प्रश्न हल कराये जाते हैं, इसलिए अधिक विश्वसनीय होता है एक परीक्षण में पदों की संख्या बढ़ा देने से उसकी विश्वसनीयता भी बढ़ जाती है।

4.15 अभ्यास-प्रश्न

1. वैधता का अर्थ एवं परिभाषा दीजिए। वैधता स्थायी त्रुटि पर किस प्रकार निर्भर होती है?
2. वैधता कितने प्रकार की होती है? उन सभी का संक्षिप्त विवरण दीजिए। तथा वैधता गुणक प्रभावित करने वाले घटकों को बताइए।
3. वैधता ज्ञात करने की कितनी विधियाँ हैं? उनका वर्णन कीजिए।
4. वैधता और विश्वसनीयता के सम्बन्ध एवं अन्तर को स्पष्ट कीजिए।
5. वैधता से योग्यता विभाजक अंक (ब्नज वि बवतम) ज्ञात करने की विधि का वर्णन कीजिए।
6. वैधता का अर्थ समझाइए तथा परिभाषा दीजिए।
7. वैधता गुणक की मापन में आवश्यकता बताइए।
8. स्थिर त्रुटि का अर्थ समझाइए।
9. वैधता के मुख्य प्रकार बताइए।
10. विश्वसनीयता का अर्थ एवं परिभाषा दीजिए। विश्वसनीयता का सम्बन्ध चर त्रुटि से किस प्रकार होता है।
11. मापन त्रुटि का अर्थ बताइए। त्रुटि कितने प्रकार की होती है? उनका संक्षेप में वर्णन कीजिए।
12. विश्वसनीयता कितने प्रकार की होती है? विश्वसनीयता ज्ञात करने की विधियाँ समझाइए।
13. विश्वसनीयता को प्रभावित करने वाले घटकों का वर्णन कीजिए।
14. "विश्वसनीयता प्रश्न-पत्र के पदों की संख्या पर निर्भर करती है।" इस कथन को स्पष्ट कीजिए।

4.16 संदर्भ पुस्तकें

- शैक्षिक एवं मानसिक मापन– डॉ. आर. ए. शर्मा; आर. लाल. बुक डिपो।
- शिक्षण अधिगम का मनोविज्ञान– डॉ. आर. ए. शर्मा; आर. लाल. बुक डिपो।
- मानसिक मापन एवं मूल्यांकन– डॉ. आर. ए. शर्मा; आर. लाल. बुक डिपो।

नोट

अध्याय-5

अनुसंधान प्रतिवेदन

(Structure)

5.1 उद्देश्य
5.2 प्रस्तावना
5.3 शोध रिपोर्ट लेखन
5.4 रिपोर्ट तैयार करने का उद्देश्य
5.5 रिपोर्ट तैयार करने की समस्याएँ
5.6 रिपोर्ट की अंतर्वस्तु
5.7 एक अच्छी रिपोर्ट की विशेषताएँ
5.8 रिपोर्ट का महत्त्व
5.9 विवरण प्रस्तुति की रूपरेखा (थ्वतउंज वि जीम जीमेपे)
5.10 लेखन शैली
5.11 तालिकाओं एवं आकृतियों की रचना
5.12 उद्धरित सामग्री की प्रस्तुति
5.13 परिशिष्टों की प्रस्तुति
5.14 प्रतिवेदन का टंकन
5.15 प्रतिवेदन का मूल्यांकन
5.16 सारांश
5.17 अभ्यास-प्रश्न
5.18 संदर्भ पुस्तकें

5.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- शोध रिपोर्ट लेखन के महत्त्व की जानकारी;
- शोध रिपोर्ट लेख की तैयारी की जानकारी;
- विवरण प्रस्तुति की रूपरेखा एवं लेखन-शैली को समझने में;
- उद्धरित सामग्री एवं परिशिष्टों की प्रस्तुति को समझने में;
- प्रतिवेदन का टंकन तथा मूल्यांकन को समझने में।

5.2 प्रस्तावना

नोट

अनुसंधान या शोध-कार्य में सिर्फ तथ्यों का ढेर एकत्रित कर लेने से ही अध्ययन वाले विषय का वास्तविक अर्थ, कारण तथा परिणाम स्पष्ट नहीं हो सकता, जब तक कि उन एकत्रित तथ्यों को सुव्यवस्थित करके उनका विश्लेषण एवं व्याख्या न की जाए। तथ्यों का विश्लेषण एवं व्याख्या करके कुछ निष्कर्षों को निकालना एवं उन्हें लिखित रूप देना आवश्यक है जिससे वह विज्ञान की एक धरोहर बन सके। दूसरे अनुसंधानकर्ता उसी विषय के संबंध में फिर से अनुसंधान कर उसके निष्कर्षों की पुनर्परीक्षा कर सकें तथा निष्कर्षों एवं सुझावों के आधार पर सामाजिक योजना एवं सुधार की रूपरेखा तैयार की जा सके। इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति के लिए संपूर्ण सर्वेक्षण शोध का एक लिखित विवरण तैयार किया जाता है, जिसे रिपोर्ट कहा जाता है।

अनुसंधान कार्य पूर्ण हो जाने के बाद सम्पूर्ण विवरण शोध-प्रबंध के रूप में प्रस्तुत करना होता है। शोध-प्रबंध किस रूप में तैयार किया जाना चाहिए, इस संबंध में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर थोड़े हेर-फेर के साथ सर्वमान्य नियमों का पालन किया जाता है। शोधकर्ता को इन नियमों एवं विधियों का ज्ञान होना आवश्यक है। इन नियमों एवं विधियों के अनुसार ही उसे अपना शोध-प्रबंध तैयार करना चाहिए। इनका वर्णन इस अध्याय में किया गया है।

5.3 शोध रिपोर्ट लेखन

प्रत्येक सामाजिक सर्वेक्षण अथवा शोध का आधार वैज्ञानिक पद्धति प्रविधियों द्वारा संकलित तथ्य हैं। पर तथ्यों का ढेर स्वयं कुछ नहीं कर सकता जब तक कि उनका वर्गीकरण व सारणीयन न किया जाए। पर केवल वर्गीकरण व सारणीयन भी निरर्थक है जबकि इनके आधार पर तथ्यों का विश्लेषण व व्याख्या करके कुछ वैज्ञानिक निष्कर्षों को न निकाला जाए। इन निष्कर्षों को यदि सर्वेक्षणकर्ता या शोधकर्ता अपने दिमाग में ही भरकर रख दे तो उससे न तो विज्ञान का और न ही और किसी का कोई भला हो सकता है। इसके लिए यह आवश्यक है कि संपूर्ण सर्वेक्षण व शोध-कार्य के उद्देश्य, क्षेत्र, प्रयुक्त पद्धति व प्रविधियों, संकलित तथ्यों का विवरण, विश्लेषण व व्याख्या तथा निष्कर्षों व सुझावों को एक लिखित रूप दिया जाए जिससे कि वह विज्ञान की एक धरोहर बन सके, दूसरे वैज्ञानिक उसी विषय के संबंध में फिर से अनुसंधान कर उसके निष्कर्षों की पुनर्परीक्षा कर सकें तथा निष्कर्षों व सुझावों के आधार पर सामाजिक योजना व सुधार की रूपरेखा तैयार की जा सके।

5.4 रिपोर्ट तैयार करने का उद्देश्य

सर्वश्री गूड एवं **हॉट** ने लिखा है कि शोध-प्रक्रिया वैज्ञानिक के लिए बड़ी ही रोचक तथा आकर्षक होती है। फिर भी आगे-पीछे कभी-न-कभी एक ऐसी स्थिति आती है जबकि रिपोर्ट तैयार करना आवश्यक हो ही जाता है। किसी भी प्रकार के अध्ययन में एक स्थिति ऐसी आती ही है जबकि उसके पश्चात् अध्ययन-कार्य को चालू रखना अनुपयोगी एवं संकलित तथ्यों का और अधिक विश्लेषण व व्याख्या अनावश्यक प्रतीत होने लगती है। कभी-कभी

ऐसा भी होता है कि किन्हीं पूर्व शर्तों के अनुसार वैज्ञानिक या आरंभिक विद्यार्थी के लिए यह अनिवार्य हो जाता है कि वह एक निर्धारित समय के अंदर शोध-कार्य को समाप्त कर उसके निष्कर्षों को प्रस्तुत करे। साथ ही शोध या सर्वेक्षण के दौरान में प्राप्त सामग्री एवं नवीन तथ्य इतने रुचिकर होते हैं कि अनुसंधानकर्ता उसके परिणामों को अन्य लोगों तक पहुँचाने के लिए स्वयं उत्सुक रहता है। अंत में, जिन-जिन लोगों ने अध्ययन-कार्य में अर्थ, सुझाव, सहायता व समय के

रूप में योग दिया है, वे यह जानने के लिए उत्सुक रहते हैं कि उनके सहयोग या सहायता का क्या परिणाम निकला। इन सब आवश्यकताओं व माँगों की पूर्ति करने के उद्देश्य से ही सर्वेक्षण के अंतिम चरण में एक रिपोर्ट तैयार की जाती है।

नोट

इस प्रकार, रिपोर्ट तैयार करना शोध-कार्य का अंतिम चरण है जिसका कि उद्देश्य 'अमेरिकन मार्केटिंग सोसाइटी' के अनुसार, "अध्ययन के संपूर्ण परिणामों को रुचि रखने वाले व्यक्तियों के समक्ष पर्याप्त विस्तार में प्रस्तुत करना और उन परिणामों को इस प्रकार व्यवस्थित करना कि प्रत्येक पाठक तथ्यों को समझने और निष्कर्षों की वैधता स्वयं निर्धारित करने में समर्थ हो सके।"

उपरोक्त विवेचना के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि एक सर्वेक्षण या शोध की रिपोर्ट तैयार करने के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1. **ज्ञान का एक प्रलेख प्रस्तुत करना** (To present Document of Knowledge)–प्रत्येक सर्वेक्षण या शोध -कार्य का निष्कर्ष निश्चित ही किसी-न-किसी प्रकार के ज्ञान का एक स्रोत होता है। इसमें पर्याप्त समय, धन तथा परिश्रम भी लग जाता है। इसके बाद भी अगर अध्ययन से प्राप्त ज्ञान को शोधकर्ता केवल अपने ही दिमाग में रख लें तो उस ज्ञान की वास्तविक उपयोगिता स्वत: ही नष्ट हो जाएगी और दूसरों को उससे कोई लाभ नहीं होगा। अत: उसे एक क्रमबद्ध लिखित रूप प्रदान करना परमावश्यक है जिससे कि वह ज्ञान का एक लिखित प्रलेख बन जाए और विज्ञान की एक धरोहर के रूप में उसे सुरक्षित रखना सरल हो जाए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सर्वेक्षण या शोध की एक रिपोर्ट अवश्य ही तैयार की जाती है।
2. **ज्ञान के विस्तार के लिए** (For the Extension of Knowledge)–रिपोर्ट तैयार करने का यह भी कम महत्त्वपूर्ण उद्देश्य नहीं है। पिछले अध्याय में हम लिख चुके हैं कि तथ्यों के विश्लेषण व व्याख्या से न केवल अध्ययन-विषय का ही स्पष्टीकरण होता है और न केवल उस विषय से संबंधित ही कुछ निष्कर्ष निकलते हैं, अपितु इस बात की भी खोज हो जाती है कि उस विषय से संबंधित अन्य कौन-कौन-सी समस्याएँ हैं जिनके विषय में आगे और गहन अध्ययन किया जा सकता है। जब अपने शोध-कार्य तथा उसके निष्कर्षों को अनुसंधानकर्ता एक लिखित रूप देने बैठता है तो वह स्वत: ही अन्य ऐसी अनेक नई समस्याओं, नए प्रश्नों तथा विषयों की ओर भी संकेत करता है जोकि शोध या सर्वेक्षण का विषय बन सकते हैं। इस दृष्टिकोण से रिपोर्ट का एक उद्देश्य अनुसंधान के नए क्षेत्रों से हमें परिचित करवाकर ज्ञान के विस्तार की निरंतरता को बनाए रखना है।
3. **अनुसंधान के परिणामों को दूसरों के सूचनार्थ प्रस्तुत करना** (To Present the Result of the Investigation for other's Information)–शोधकर्ता के लिए अपने अनुसंधान के परिणामों को प्रदर्शित करना कई कारणों से आवश्यक हो जाता है। **प्रथमत:** शोध-कार्य से प्राप्त निष्कर्षों या परिणामों को संबंधित लोगों अथवा शोध में रुचि रखने वाले व्यक्तियों के सामने प्रगट करना अनुसंधानकर्ता का कर्तव्य हो जाता है। उदाहरणार्थ, यदि अनुसंधान का विषय सार्वजनिक महत्त्व का है तो परिणामों से लोगों को अवगत कराना आवश्यक हो जाता है। **द्वितीयत:** यदि सर्वेक्षण की रिपोर्ट के आधार पर ही कोई सरकारी अथवा गैर सरकारी कार्यवाही होनी है तो भी यह रिपोर्ट तैयार न होने तक रुकी रहती है। **तृतीयत:** कभी-कभी सरकार किसी विशेष विषय पर सर्वेक्षण इसलिए करवाती है कि उससे संबंधित कोई योजना उसे बनानी होती है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए भी रिपोर्ट तैयार करनी

नोट

जरूरी हो जाती है। **चतुर्थतः** जिन लोगों ने सर्वेक्षण-कार्य में अपना धन, परामर्श, सहायता व समय देकर सहयोग प्रदान किया है, उन सभी के मन में सर्वेक्षण के परिणामों को जानने की स्वाभाविक इच्छा होती है। उनकी संतुष्टि के लिए भी रिपोर्ट को तैयार किया जाता है। इसके अतिरिक्त, जब अनुसंधान-कार्य किसी डिग्री या डिप्लोमा प्राप्त करने के लिए किया जाता है तो एक उद्देश्य की पूर्ति तब तक नहीं हो सकती जब तक कि रिपोर्ट प्रस्तुत न की जाए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए भी रिपोर्ट तैयार की जाती है। अन्त में, प्रायः सर्वेक्षण द्वारा प्राप्त नवीन तथ्य इतने रोचक व रुचिकर प्रतीत होते हैं कि स्वयं अनुसंधानकर्ता उनके परिणामों को अन्य लोगों को भी दिखाने व आत्मगौरव प्राप्त करने के लिए उत्सुक रहता है। अनुसंधान की एक व्यवस्थित रिपोर्ट तैयार हो जाने से उपरोक्त सभी छह उद्देश्यों की पूर्ति हो जाती है।

4. **विषयों में अंतर्निहित वास्तविक स्थिति को समझाना** (To Explain the Actual Conditions Involved)—रिपोर्ट का उद्देश्य केवल अनुसंधान के निष्कर्षों या परिणामों को व्यक्त करना ही नहीं अपितु उन्हें इस व्यवस्थित व वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत करना है कि अध्ययन-विषय के विभिन्न पक्षों की वास्तविकताएँ स्वतः ही प्रगट हो जाएँ और उस रिपोर्ट को पढ़ने वाला प्रत्येक व्यक्ति उनमें अंतर्निहित वास्तविक स्थिति तथा अंतःसंबंधों को स्पष्ट रूप में समझ सके। सर्वेक्षण या शोध की सार्थकता विषय को केवल स्वयं समझ लेने में नहीं अपितु दूसरों को भी समझाने में है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए भी रिपोर्ट इस ढंग से तैयार की जाती है कि विषय में रुचि रखने वाले सभी व्यक्ति उसे पढ़कर लाभ उठा सकें तथा अनुसंधान से प्राप्त नवीन तथ्यों व उनके सामाजिक परिणामों को समझ सकें।
5. **वैधता की जाँच** (Test of Validity)—जब तक शोध या सर्वेक्षण-रिपोर्ट को तैयार नहीं किया जाएगा, तब तक इस बात की जाँच नहीं की जा सकती है कि वह अध्ययन प्रामाणिक व प्रयोगसिद्ध है अथवा नहीं। रिपोर्ट की जाँच करके ही यह बताया जाता है कि अनुसंधान में शुद्ध तथा यथार्थ सामग्री के आधार पर निष्कर्ष निकाले गए हैं अथवा केवल अनुमान और संदेहात्मक सूचना ही अध्ययन का आधार है। रिपोर्ट में वर्णित तथ्य व निष्कर्ष सार्वजनिक रूप में प्रकाशित एक विषय बन जाता है (यदि रिपोर्ट को सरकार के द्वारा गुप्त न रखा जाए)। अतः यदि किसी को भी अध्ययन की वैधता के संबंध में संदेह होता है तो वह स्वयं फिर से अनुसंधान कर उसके निष्कर्षों की परीक्षा व पुनर्परीक्षा कर सकता है। इस प्रकार की परीक्षा व पुनर्परीक्षा से या तो पहले वाले अध्ययन की वैध ता सिद्ध होती है अथवा उसके विज्ञान की प्रतिष्ठा बढ़ती है। इसलिए यह कहा जाता है कि परीक्षा व पुनर्परीक्षा के योग्य होना वैज्ञानिक अध्ययन का सबसे उल्लेखनीय गुण है। अतः इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए भी रिपोर्ट तैयार करना आवश्यक हो जाता है।

5.5 रिपोर्ट तैयार करने की समस्याएँ

सर्वश्री गूड तथा **हॉट** (Good and Hatt) ने उचित ही लिखा है कि "स्पष्टतः यह प्रतीत होता है कि एक रिपोर्ट को लिखना एक सरल कार्य ही होगा क्योंकि यह तो केवल मात्र पूछे गए प्रश्नों, प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रयुक्त प्रविधियों तथा अंतिम रूप से विकसित उत्तरों का एक विवरण मात्र है। वास्तव में, यह काम शायद ही सरल हो।" दूसरें शब्दों में, शोध या सर्वेक्षण-रिपोर्ट

तैयार करना उतना सरल कार्य नहीं है जितना कि ऊपरी तौर पर हम उसे समझते हैं। वास्तविक रूप में जब शोधकर्ता लिखने बैठता है तो उसे एकाधिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है जिनमें से कुछ प्रमुख निम्नलिखित हैं–

नोट

1. **भाषा की समस्या** (Problem of Language)–रिपोर्ट को तैयार करने में सबसे बड़ी समस्या भाषा की समस्या है। यह समस्या इसलिए उत्पन्न होती है कि यदि भाषा को अत्यंत सरल बना दिया जाए तो रिपोर्ट का स्तर गिर जाता है और उसमें एक ओछापन-सा दिखाई पड़ने लगता है। पर यदि उस रिपोर्ट में वैज्ञानिक शब्दों का अत्यधिक प्रयोग करके रिपोर्ट के स्तर ऊँचा उठाने का प्रयत्न किया जाता है तो रिपोर्ट अधिकांश लोगों के लिए अत्यधिक क्लिष्ट तथा पारिभाषिक हो जाती है। ऐसी परिस्थिति में समस्या यह जान पड़ती है कि किस भाषा में रिपोर्ट को प्रस्तुत किया जाए क्योंकि साधारण बोलचाल की भाषा रिपोर्ट के स्तर को गिरा देती है जबकि पारिभाषिक भाषा उसे लोकप्रिय होने से रोकती है। वास्तविक तथ्य यह है कि शोध या सर्वेक्षण की संपूर्ण प्रक्रिया है, जिसमें कि रिपोर्ट का प्रस्तुतीकरण भी सम्मिलित है, स्वयं ही एक टेक्निकल प्रक्रिया है इसलिए उसे एक निर्धारित सीमा के बाद सरल नहीं बनाया जा सकता। यह नहीं हो सकता है कि रिपोर्ट में पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग न किया जाए और पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग करते हुए रिपोर्ट को क्लिष्ट होने से पूर्णतया रोकना भी असंभव है। इतना ही नहीं, रिपोर्ट को लिखते समय भाषा संबंधी एक और समस्या इस रूप में प्रगट होती है कि रिपोर्ट में ऐसे किसी भी शब्द या वाक्य का प्रयोग न किया जाए जिससे कि अर्थ दो या संदेहजनक हों। ऐसा होने पर रिपोर्ट के किन्हीं पक्षों के संबंध में गलत धारणा पनपने की संभावना होती है। पर संपूर्ण अध्ययन में, भाषा के संबंध में इतना अधिक सचेत रहना संभव नहीं होता है और इसीलिए भाषा की समस्या किसी-न-किसी रूप में बनी ही रहती है।

2. **पारिभाषिक शब्दों की समस्या** (Problems of Technical Words)–प्राकृतिक विज्ञानों में पारिभाषिक शब्दों को विकसित करने की दिशा में उल्लेखनीय प्रगति हुई है और इन विज्ञानों में इसलिए ऐसे विशेष शब्दों तथा वाक्यों की प्रचुरता है जिनका कि अर्थ बिना किसी अपवाद के सभी के लिए और सभी स्थानों पर एकसमान ही होता है या समझा जाता है। परंतु सामाजिक विज्ञानों में यह कमी अत्यधिक अनुभव की जाती है क्योंकि सामाजिक विज्ञानों में प्रामाणिक पारिभाषिक शब्दावली का लगाव प्रत्येक लेखक को बहुत अधिक खटकता है। इतना ही नहीं, पारिभाषिक शब्दावली संबंधी सैद्धांतिक मतभेद भी सामाजिक विज्ञानों के क्षेत्र में कम उल्लेखनीय विषय नहीं है और अलग-अलग लेखक इस शब्दावली के प्रति किसी विशिष्ट आग्रह अथवा दुराग्रह से अपने को दूर रखने में शायद ही सफल हो सकें। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है–रिपोर्ट का प्रस्तुतीकरण भी एक टेक्निकल विषय है और प्रामाणिक पारिभाषिक शब्दावली के बिना इसका काम नहीं चल सकता, इसलिए समाज-विज्ञानों में इन्हीं शब्दावली की कमी एक बहुत बड़ी कमी बन जाती है जिसके कारण रिपोर्ट में कही हुई बातें संदेहास्पद तथा दो अर्थ वाली बन जाती हैं जबकि शोधकर्ता का वास्तविक उद्देश्य ऐसा करना नहीं होता है।

   सामाजिक विज्ञानों में जब तक पारिभाषिक शब्दावली का पर्याप्त विकास नहीं हो जाएगा तब तक इससे संबंधित समस्या रिपोर्ट को तैयार करने में बनी ही रहेगी।

नोट

3. **जनता के ज्ञान के स्तर की समस्या** (Problem of Intellectual level of General Mass)–रिपोर्ट को लिखते समय जनता के ज्ञान के स्तर से संबंधित एक और समस्या उत्पन्न हो जाती है, विशेषकर उस अवस्था में जबकि देश में शिक्षित लोगों का प्रतिशत बहुत कम है। अक्सर यह तर्क प्रस्तुत किया जाता है कि शोध या सर्वेक्षण-कार्य एक गंभीर विषय है इसलिए सर्वेक्षण-रिपोर्ट आम जनता के लिए नहीं होती है। इस तर्क को बहुत-से विद्वान अस्वीकार करते हैं। उनका कथन है कि कोई भी वैज्ञानिक खोज, चाहे वह प्राकृतिक दुनिया से संबंधित हो अथवा सामाजिक दुनिया से, तब तक सार्थक नहीं हो सकती है जब तक उस खोज के परिणाम जन-जीवन का एक अंग नहीं बन जाते क्योंकि कभी-कभी एक साधारण व्यक्ति द्वारा प्रस्तुत समालोचना या व्याख्या (Layman's interpretation) भी वैज्ञानिक के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध होती है। कभी-कभी तो रिपोर्ट जनसाधारण के हित से संबंधित होती है और उसमें संबंधित सभी लोग रुचि लेते हैं। अत: समस्या यह होती है कि रिपोर्ट लिखने वाले को संबंधित व्यक्तियों के ज्ञान के स्तर को सर्वप्रथम जानना होता है और यह सरल काम नहीं है। पर अगर इस संबंध में कोई त्रुटि रह गई तो रिपोर्ट की सार्थकता कम हो जाती है। उदाहरणार्थ, यदि कोई सर्वेक्षण श्रमिक वर्ग से संबंधित है और उसकी रिपोर्ट से श्रमिकों का हित होने की संभावना है, पर यदि उस रिपोर्ट को लिखते समय उन्हीं श्रमिकों के ज्ञान के स्तर को ध्यान में नहीं रखा गया है तो अनेक श्रमिक रिपोर्ट की वास्तविक सिफारिशों को ठीक से समझ न सकने के कारण उनसे वास्तविक लाभ नहीं उठा पायेंगे। पर ज्ञान के स्तर को ठीक-ठीक मापना स्वयं ही एक समस्या बन जाती है।

4. **गंभीरता की समस्या** (Problems of Seriousness)–प्रत्येक शोधकर्ता की यह आंतरिक अभिलाषा होती है कि अनुसंधान की रिपोर्ट का स्तर यथासंभव हो ताकि उच्च श्रेणी के पाठकों और विद्वानों में वह प्रख्यात हो सके। पर यदि इस अभिलाषा को वह एक संतुलित स्तर पर बनाए रखने में सफल नहीं होता तो उसकी रिपोर्ट अनावश्यक तौर पर गंभीर रूप धारण कर लेती है। अनावश्यक रूप में पारिभाषिक शब्दों से बोझिल रिपोर्ट न केवल अपनी स्वाभाविकता को खो बैठती है अपितु अत्यधिक क्लिष्ट होने के कारण अनेक तत्व अस्पष्ट बने रहते हैं। वास्तव में विचारों की गंभीरता तथा भाषा की सरलता–इन दोनों विरोधी तत्वों के बीच संतुलन स्थापित करते हुए रिपोर्ट को तैयार करना एक बहुत बड़ी समस्या बन जाती है।

5. **अवधारणाओं की समस्या** (Problem of Concepts)–तथ्ययुक्त रिपोर्ट प्रस्तुत करने की एक और समस्या अवधारणाओं से संबंधित है। यदि वास्तविक रूप में देखा जाए तो समाजशास्त्रीय साहित्य में अवधारणाओं की अत्यधिक कमी है। जो कुछ भी हमें आज प्राप्त है वह वास्तव में अवधारणा नहीं बल्कि विभिन्न परिस्थितियों का वर्णन है। अवधारणाओं की सहायता से संपूर्ण परिस्थिति को कुछ ही शब्दों द्वारा अभिव्यक्त करना संभव होता है और इसमें संदेह व अस्पष्टता का तत्व बहुत कम होता है; पर चूँकि इस प्रकार की अवधारणाओं का पर्याप्त विकास अब भी सामाजिक विज्ञानों में नहीं हो पाया है इस कारण साधारण-से-साधारण परिस्थिति को समझने के लिए अनावश्यक विस्तृत विवरण प्रस्तुत करना पड़ता है जिसमें पर्याप्त समय व परिश्रम ऐसे ही नष्ट हो जाता है।

नोट

6. **वस्तुनिष्ठता की समस्या** (Problem of Objectivity)–रिपोर्ट को तैयार करने में यह एक उल्लेखनीय समस्या है। चूँकि अनुसंधानकर्ता उसी बृहत्तर समाज की एक इकाई है जिसके कि किसी अंग के पक्ष का वह अध्ययन कर रहा है इसलिए वह अध्ययन-विषय के संबंध में जो कुछ कहता है उसमें उसका अपना विचार, आदर्श, मूल्य और मनोवृत्ति किसी-न-किसी प्रकार से अपना कुछ-न-कुछ स्थान कर ही लेते हैं। वे घटनाओं की व्याख्या व विवरण वास्तविक तथ्यों के आधार पर पूर्णतया न देकर उसमें अपने विचारों तथा भावनाओं का भी रंग चढ़ा लेते हैं। इससे घटनाओं की वास्तविकता विकृत हो जाती है। इसके अतिरिक्त शोधकर्ता का अपना पक्षपात तथा मिथ्या झुकाव कुछ-न-कुछ उसके द्वारा प्रस्तुत उसके व्याख्या तथा विवरण को प्रभावित करता ही है और इन दोनों से पूर्णतया छुटकारा पाना बहुत ही कम शोधकर्ताओं के लिए संभव होता है। इन सब तत्वों के रिपोर्ट में प्रवेश कर जाने से वस्तुनिष्ठता की समस्या स्वत: ही उत्पन्न हो जाती है।

7. **सत्य को प्रकट करने की समस्या** (Problem of Expressing the Truth)–कभी-कभी सर्वेक्षण ऐसे विषयों के संबंध में होता है जिनके संबंध में यदि सच-सच सब कुछ कहा जाए तो वह किसी एक पक्ष के हित के या सम्मान के विपरीत होता है। ऐसी दशा में रिपोर्ट में सत्य को प्रगट करने की समस्या अपने-आप उत्पन्न हो जाती है; उदाहरणार्थ, यदि सरकारी उच्च अधिकारियों में व्याप्त घूसखोरी व भ्रष्टाचार के विषय में खोज की जाए तो वास्तविक तथ्य या स्थिति मालूम हो जाने पर भी शोधकर्ता अपनी रिपोर्ट में सब कुछ सच-सच कहने से घबराता है क्योंकि उसे इन उच्च अधिकारियों द्वारा बदला लिए जाने का डर या सरकारी कार्यवाही का भय कुछ-न-कुछ रहता ही है। अत: वास्तविकता को कुछ तोड़-मरोड़कर ही वह अपनी रिपोर्ट में प्रस्तुत करता है। कभी-कभी तो स्वयं सरकार के द्वारा कराए गए शोध या सर्वेक्षण की रिपोर्ट को इसलिए गुम कर दिया जाता है कि यदि रिपोर्ट में वर्णित सत्य प्रगट हो गया तो सरकार की बदनामी होगी। इसी प्रकार अनेक स्थितियों में सत्य को वास्तविक रूप में प्रगट करने की समस्या किसी-न-किसी रूप में बनी रहती है।

5.6 रिपोर्ट की अंतर्वस्तु

रिपोर्ट की अंतर्वस्तु से तात्पर्य उन विषयों से है जिनका विवरण व व्याख्या हमें संतुलित रिपोर्ट में देखने को मिलती है। यद्यपि इस अंतर्वस्तु के संबंध में सभी विद्वान एकमत नहीं हैं, फिर भी कुछ ऐसे सामान्य विषयों का उल्लेख यहाँ किया जा सकता है जिन्हें कि साधारणतया सभी रिपोर्ट में अपना स्थान मिल ही जाता है। वे विषय इस प्रकार हैं–

1. **प्रस्तावना** (Introduction)–सभी रिपोर्टों में सर्वप्रथम प्रस्तावना लिखी जाती है। प्रस्तावना वास्तव में पाठकों को विषय से परिचय करवाती है और इसमें संबंधित शोध या सर्वेक्षण के विचार का उदय, योजना, महत्त्व तथा संगठन आदि विषयों पर संक्षिप्त प्रकाश डाला जाता है। इसी प्रकार सर्वेक्षण करने वाली संस्था या विभाग आदि का परिचय, सर्वेक्षण का संचालन करने वाले व्यक्ति या संगठन का परिचय, कार्यकर्ताओं के चुनाव व प्रशिक्षण का विवरण, सर्वेक्षण में निरीक्षण तथा प्राप्त तथ्यों व सूचनाओं का उल्लेख भी प्रस्तावना में किया जाता है। प्रस्तावना में ही सर्वेक्षण के समय तथा व्यय आदि का भी विवरण प्रस्तुत किया जाता है। सर्वेक्षण या शोध-कार्य के दौरान उत्पन्न प्रमुख कठिनाइयों का उल्लेख

नोट

तथा उसका निराकरण करने के लिए प्रयुक्त तरीकों का संक्षिप्त वर्णन भी प्रस्तावना में किया जाता है। रिपोर्ट में किस क्रम से किस विषय के संबंध में विवरण प्रस्तुत किया गया है उसका भी संकेत प्रस्तावना में किया जाता है। अंत में जिन व्यक्तियों, संस्थाओं व समितियों तथा सरकारी विभागों से सर्वेक्षण-कार्य में किसी भी प्रकार की सहायता या परामर्श प्राप्त हुआ है, उनको धन्यवाद ज्ञापन करने के कर्तव्य का भी इसी प्रस्तावना के माध्यम से पालन किया जाता है।

2. **समस्या का विवरण** (Description of the Problem)—सबसे पहले रिपोर्ट में सर्वेक्षण या शोध के विषय या समस्या का परिचय दिया जाता है। समस्या की पृष्ठभूमि तथा उसके विषय में अनुसंधान की आवश्यकता का वर्णन करना रिपोर्ट के आरंभिक अंश का सर्वप्रथम भाग है। समस्या का चुनाव किन आधारों पर किया गया है और तात्कालिक परिस्थितियों में समस्या के अध्ययन में कौन-कौन से सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक लाभ की आशा है इसके विषय में भी रिपोर्ट के इस अंश में कह दिया जाता है। अध्ययन-विषय से संबंधित अन्य कोई अध्ययन हुआ है अथवा नहीं और अगर हुआ है तो प्रयुक्त अध्ययन का उससे क्या संबंध है आदि बातों का भी स्पष्टीकरण कर दिया जाता है। इस सबका उद्देश्य अध्ययन-विषय या समस्या की वास्तविक प्रकृति और सीमाओं को स्पष्ट करना होता है।

3. **सर्वेक्षण या शोध का उद्देश्य** (Purpose of Study)—सर्वेक्षण या शोध का उद्देश्य या तो ज्ञान का विस्तार करना अथवा किसी व्यावहारिक लाभ को प्राप्त करना होता है। इसलिए प्रत्येक रिपोर्ट में इस बात का उल्लेख किया जाता है कि सर्वेक्षण का उद्देश्य नवीन ज्ञान को प्राप्त करना अथवा किसी विद्यमान सिद्धांत की परीक्षा करना या उस पर प्रकाश डालना अथवा कोई व्यावहारिक लाभ प्राप्त करना है। इस संबंध में यह स्मरणीय है कि यदि सर्वेक्षण या शोध-कार्य किसी व्यापारिक संस्था या सरकार के निर्देशानुसार आयोजित किया गया है तो अनुसंधानकर्ता को उस संस्था या सरकार द्वारा सर्वेक्षण का उद्देश्य पहले से ही बता दिया जाता है और उसी के अनुसार सर्वेक्षण की सीमाओं को भी निर्धारित किया जाता है। पर ऐसी स्थिति में सर्वेक्षण का उद्देश्य कोई-न-कोई व्यावहारिक लाभ प्राप्त करना होता है। कुछ भी हो, सर्वेक्षण के उद्देश्यों का स्पष्ट रूप में आरंभ में ही रिपोर्ट में उल्लेख कर दिया जाता है।

4. **अध्ययन क्षेत्र** (Scope or Area of Study)—समस्या तथा उद्देश्य का स्पष्टीकरण करने के पश्चात् अध्ययन-क्षेत्र के विषय में भी रिपोर्ट में उल्लेख किया जाता है। इसके अंतर्गत भौगोलिक प्रदेश, सामाजिक वर्ग अथवा निश्चित समुदाय का परिचय प्रस्तुत किया जाता है। यहीं पर इस बात का उल्लेख किया जाता है कि उस समुदाय, समूह या वर्ग के जीवन के किन पक्षों अथवा समस्या के किन पक्षों का अध्ययन किया गया है। रिपोर्ट के इसी अंश में उस समुदाय, समूह या वर्ग की प्राकृतिक, सामाजिक, जनसंख्यात्मक तथा आर्थिक विशेषताओं का परिचय देते हुए इस बात का स्पष्टीकरण किया जाता है कि अध्ययन के क्षेत्र का निर्धारण उसी रूप में क्यों किया गया है अर्थात् अध्ययन-क्षेत्र को एक निश्चित रूप में सीमित करने से किन सुविधाओं या लाभों की आशा की जाती है, इस बात का स्पष्टीकरण भी कर दिया जाता है।

5. **प्रयुक्त अध्ययन पद्धतियाँ** (Methods employed)—सर्वेक्षण अथवा शोध के सभी निष्कर्ष वास्तविक तथ्यों या सूचनाओं पर आधारित होते हैं। इन तथ्यों तथा सूचनाओं को

नोट

एकत्रित किया जाता है। रिपोर्ट में इस बात का भी उल्लेख रहता है कि अध्ययन-विषयों से संबंधित वास्तविक तथ्यों तथा सूचनाओं को किन पद्धतियों या प्रविधियों की सहायता से एकत्रित किया गया है। रिपोर्ट लिखने वाला इस बात का भी उल्लेख कर सकता है कि अध्ययन में विषय या समस्या को किस दृष्टिकोण से देखा गया है और उस दृष्टिकोण से अमुक-अमुक पद्धति व प्रविधियाँ क्यों सबसे उपयुक्त समझी गईं। साथ ही प्राथमिक तथा द्वितीयक तथ्यों के स्त्रोतो को संक्षिप्त परिचय देते हुए रिपोर्ट में इस बात का भी उल्लेख किया जाता है कि उन स्त्रोतों से सूचना प्राप्त करने के लिए किन प्रविधियों को काम में लाया गया है। यदि प्रश्नावली अथवा अनुसूची का उपयोग किया गया है तो उसकी मोटी-मोटी बातें रिपोर्ट में उल्लेखित कर दी जाती हैं। यदि साक्षात्कार-प्रविधि को अपनाया गया है तो किन सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए साक्षात्कार किया गया है और साक्षात्कार-निर्देशिका (Interview Guide) का उपयोग किया गया है अथवा नहीं, इन बातों का उल्लेख भी रिपोर्ट में कर दिया जाता है। उसी प्रकार यदि मापक पैमानों का उपयोग किया गया है तो उसका वर्णन भी कर दिया जाता है।

6. **निदर्शन-चुनाव का तरीका** (Method of Selecting Samples)—अनुसंधानकर्ता अपनी रिपोर्ट में उस प्रणाली या विधि का भी उल्लेख करता है जिसके द्वारा निदर्शनों का चुनाव प्रस्तुत अध्ययन में किया गया हो। साथ ही इस बात का भी स्पष्टीकरण किया जाता है कि विषय की प्रकृति को देखते हुए उसी प्रणाली को उपयुक्त क्यों समझा गया अर्थात् जिस निदर्शन-प्रणाली को अपनाया गया है उसे अपनाने के कारणों का भी संक्षेप में उल्लेख रिपोर्ट में किया जाता है। इसी संदर्भ में यह भी लिखा जाता है कि जितनी संख्या में निदर्शनों को चुना गया है वह संख्या संपूर्ण समुदाय का उचित प्रतिनिधित्व करने के लिए पर्याप्त है। पर यदि निदर्शनों का चुनाव न करके क्षेत्र की संपूर्ण जनसंख्या का जनगणना-पद्धति (census method) द्वारा अध्ययन किया गया है तो उसका भी उल्लेख स्पष्ट रूप से रिपोर्ट में कर दिया जाता है।

7. **सर्वेक्षण का संगठन** (Organisation of Survey)—सर्वेक्षण-कार्य को किस ढंग से व्यवस्थित और संगठित किया गया है इस बात का विवरण कुछ रिपोर्टों में प्रस्तावना में न देकर अलग तौर पर दिया जाता है। यदि अध्ययन-स्थल निरीक्षण पद्धति अपनाई गई है तो स्थल अथवा घटना का चुनाव कैसे किया गया, कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षित करने के पश्चात् उनमें श्रम-विभाजन किस ढंग से किया गया, उनके कार्यों का निरीक्षण करने की क्या व्यवस्था की गई, प्रश्नावलियों को किस प्रकार एकत्रित किया गया, रोज कितने घंटे काम किया गया, एकत्रित सूचनाओं की शुद्धता की जाँच किस प्रकार की गई, तथ्यों के संपादन व संकेतीकरण (codification) की क्या व्यवस्था थी आदि बातों का स्पष्टीकरण रिपोर्ट के इस अंश में किया जाता है। इसका उद्देश्य सर्वेक्षण के संगठन के बारे में लोगों को अनुमान लगाने के मामले में सहायता करना होता है।

8. **विश्लेषण तथा व्याख्या** (Analysis and Interpretation)—उपरोक्त सभी बातों का उल्लेख करने के पश्चात् रिपोर्ट सबसे महत्त्वपूर्ण स्तर पर आ पहुँचती है। इसी स्तर पर एकत्रित सूचनाओं तथा तथ्यों को एक व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत किया जाता है। वर्गीकरण व सारणीयन का वास्तविक लाभ रिपोर्ट के इस अंश को तैयार करने में प्राप्त होता है क्योंकि यहीं पर प्राप्त सूचनाओं, तथ्यों तथा आँकड़ों को व्यवस्थित करके एक आकर्षक

नोट

एवं सार्थक स्वरूप देकर सारणियों, चार्टों, चित्रों, रेखाचित्रों आदि के माध्यम से प्रकट किया जाता है। पर तथ्यों को व्यवस्थित ढंग से केवल प्रस्तुत ही नहीं किया जाता अपितु उनका आवश्यक विश्लेषण व वर्णनात्मक व्याख्या भी दी जाती है। तथ्यों के विश्लेषण में मुख्यत: कार्य-कारण संबंधों को स्पष्ट किया जाता है, जबकि वर्णनात्मक व्याख्या में उसके परिणामों व निष्कर्षों को प्रस्तुत किया जाता है। अध्ययन के परिणामों या निष्कर्षों को सदैव तथ्ययुक्त रूप में तार्किक ढंग से प्रस्तुत किया जाता है और यह भी बताया जाता है कि उन निष्कर्षों या परिणामों का क्या आधार है। रिपोर्ट को और अधिक सजीव, बोधगम्य तथा सांख्यिकीय विवेचना के उपयुक्त बनाने के लिए आवश्यकतानुसार फोटो, रेखाचित्र आदि भी संलग्न कर दिये जाते हैं। यदि द्वैतीयक सामग्री का उपयोग किया गया है तो पृष्ठतल-टिप्पणियों (footnotes) की सहायता से उनके स्रोतों का संक्षिप्त परिचय दे दिया जाता है।

9. **तथ्यों की उल्लेखनीय विशेषता** (Highlights of Data)–रिपोर्ट को अधिक रुचिकर तथा बोधगम्य बनाने के लिए विश्लेषण तथा व्याख्या के पश्चात् एक पृथक अध्याय में सर्वेक्षण या शोध में एकत्रित तथ्यों की उल्लेखनीय विशेषताओं तथा उनके आधार पर प्राप्त प्रमुख परिणामों व निष्कर्षों को एक क्रम से प्रस्तुत किया जाता है ताकि एक ही स्थान पर अध्ययन के परिणामों का निचोड़ पाठकों के लिए उपलब्ध हो। दूसरे शब्दों में, रिपोर्ट के इस अध्याय में मुख्य निष्कर्षों के सार का उल्लेख होता है जो अनुसंधान-परिणामों को संक्षेप में स्पष्ट कर देता है।

10. **सुझाव** (Suggestions)–यदि अनुसंधान केवल ज्ञान-प्राप्ति के उद्देश्य से नहीं किया गया है और किसी सामाजिक समस्या अथवा व्यावहारिक जीवन से संबंधित है तो रिपोर्ट के अंत में रचनात्मक सुझाव अवश्य ही दिए जाते हैं। इन सुझावों में एक समस्या को किस प्रकार व्यावहारिक ढंग से हल किया जाए, अथवा एक अवस्था-विशेष को किस रचनात्मक रूप में उन्नत किया या सुधारा जाए, इनके संबंध में सुझाव अवश्य दिए जाते हैं। किसी संख्या या सरकारी विभाग द्वारा किसी रचनात्मक या सुधारात्मक कार्य के लिये यदि सर्वेक्षण कराया गया है तब तो सुझावों को रिपोर्ट में होना नितांत आवश्यक हो जाता है। अनुसंधानकर्ता अपने सुझावों को प्रस्तुत करते हुए धरती पर स्वर्गलोक के निर्माण का सपना नहीं देखता अर्थात इस प्रकार के सुझावों को प्रस्तुत नहीं करता जो कि उपलब्ध साधनों व व्यावहारिकता से परे हों। उसका सुझाव रचनात्मक व व्यावहारिक इस अर्थ में होता है कि वह वर्तमान दशाओं में देश या एक संस्था-विशेष के लिए उपलब्ध साधनों के अंतर्गत ही किस प्रकार अधिकतम सुधार संभव है, इस बात की ओर स्पष्ट संकेत करता है।

उदाहरणार्थ, यदि वह यह सुझाव देता है कि राज्य-कर्मचारियों का महँगाई-भत्ता केंद्रीय सरकार के कर्मचारियों के समान कर देना चाहिए तो वह यह भी ध्यान रखता है कि वर्तमान परिस्थितियों में एक राज्य-सरकार इस अतिरिक्त व्यय-भार को उठाने में समर्थ है भी या नहीं। यदि नहीं तो किस सीमा तक महँगाई-भत्ता बढ़ाना वास्तव में व्यावहारिक होगा और कर्मचारियों के भी हितों की अधिकतम रक्षा संभव होगी। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि सुझाव उपयोगी तथा व्यावहारिक लाभ की दृष्टि से उपयुक्त हों और साथ ही तर्क पर आधारित व रचनात्मक हों। इस बात का अधिक-से-अधिक ध्यान अनुसंधानकर्ता रखता है और उसे रखना भी चाहिए। ये सुझाव दो प्रकार के हो सकते हैं–एक

नोट

तो वे सुझाव जो अध्ययन के दौरान में स्वयं सूचनादाताओं द्वारा दिए जाते हैं। ये सुझाव अत्यंत महत्त्वपूर्ण होते हैं, क्योंकि एक विशेष क्षेत्र या समुदाय में काफी समय से रहने वाले लोग (सूचनादाता) सैद्धांतिक ज्ञान न रखते हुए भी भुक्तभोगी होने के कारण समस्या को व्यावहारिक दृष्टि से समझते हैं और इसलिए अपने अनुभव के आधार पर इस योग्य होते हैं कि अवस्था को उन्नत करने या सुधारने के लिये उपयोगी सुझाव दे सकें। इसीलिए ऐसे सुझावों को रिपोर्ट में अवश्य स्थान दिया जाता है। दूसरे वे सुझाव होते हैं जो कि स्वयं अनुसंधानकर्ता अपने अध्ययन के आधार पर प्रस्तुत करता है। इस प्रकार के सुझावों की उपयोगिता सर्वेक्षणकर्ता के ज्ञान, अनुभव, सूझबूझ तथा दूरदृष्टि पर निर्भर करती है।

11. **संलग्न-पत्र** (Appendices)–सुझावों के साथ ही मूल रिपोर्ट की इति हो जाती है। किन्तु कुछ ऐसे पत्र, प्रलेख, तालिका, चार्ट, विवरण आदि होते हैं जो कि अध्ययन की प्रामाणिकता को सिद्ध करने में सहायक होते हैं और इसीलिए उन्हें पाठकों के समक्ष रखना उचित समझा जाता है। ऐसे पत्रकों को रिपोर्ट के अंत में लगा दिया जाता है। इनमें क्षेत्रीय मानचित्र, पुस्तक-सूची (bibliography), अनुसूची, प्रश्नावली आदि अध्ययन-उपकरणों की एक-एक प्रति (copy), कुछ महत्त्वपूर्ण सारणी आदि को सम्मिलित किया जाता है।

5.7 एक अच्छी रिपोर्ट की विशेषताएँ

एक अच्छी रिपोर्ट की विशेषताओं के संबंध में विद्वानों में मतभेद हो सकता है क्योंकि 'अच्छे'-'बुरे' की अवधारणा सबके लिए समान नहीं होती। फिर भी सर्वेक्षण की प्रक्रिया और रिपोर्ट को तैयार करना एक टेक्निकल काम होने के कारण एक अच्छी रिपोर्ट की कुछ आधारभूत विशेषताओं का उल्लेख किया जा सकता है। वे विशेषताएँ इस प्रकार हैं–

1. **आकर्षक**–एक अच्छी रिपोर्ट का ऊपरी डीलडौल स्वच्छ तथा आकर्षक होता है। सफेद रंग के अच्छे किस्म के कागज़ पर स्पष्ट तथा सुंदर ढंग से टाइप से रिपोर्ट को छपवाया जाता है। साथ ही, उसे अधिक आकर्षक बनाने के लिए आकर्षक शीर्षकों, चित्रों, फोटो आदि का प्रयोग भी आवश्यकतानुसार किया जाता है।
2. **संतुलित**-रिपोर्ट की भाषा अत्यधिक संतुलित होती है। पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग आवश्यकतानुसार अवश्य ही करना पड़ता है। पर इस संबंध में, जैसाकि वैज्ञानिक डॉ. श्यामचरण दुबे का सुझाव है, विषय का स्पष्टीकरण लेखक का उद्देश्य होता है और इसकी सिद्धि के लिए पारिभाषिक शब्दावली-संबंधी सैद्धांतिक मतभेदों के प्रति लेखक किसी भी प्रकार के विशिष्ट आग्रह अथवा दुराग्रह को अपनाता नहीं। साथ ही, इस बात का भी ध्यान रखा जाता है कि पारिभाषिक शब्दावली के अत्यधिक प्रयोग से रिपोर्ट कहीं इतनी बोझिल और क्लिष्ट न हो जाए कि उसे समझने के लिए विशेषज्ञों की सहायता लेनी पड़े; दूसरी ओर, रिपोर्ट की भाषा में आलंकारिक तथा साहित्यिक शैली भी इतना उग्र रूप धारण न कर ले कि तथ्यों की वास्तविकताओं पर कोई दूसरा ही रंग चढ़ जाए या तथ्यों को बढ़ा-चढ़ाकर कहने से सत्यता प्रगट न हो सके। अत: भाषा तथा शैली के सौंदर्य की ओर झुककर रिपोर्ट को अतिशयोक्तिपूर्ण तथा अस्वाभाविक बना देने की प्रवृत्ति से दूर रहकर ही संतुलित भाषा में रिपोर्ट को तैयार किया जाता है।
3. **बार-बार नहीं दोहराना**–एक अच्छी रिपोर्ट में एक ही प्रकार के तथ्यों को बार-बार दोहराया नहीं जाता क्योंकि ऐसा करने से रिपोर्ट को पढ़ते समय पाठक ऊब जाते हैं। तथ्यों

में तार्किक क्रम अवश्य रहता है अर्थात् स्वतंत्र रूप से समझे जाने वाले तथ्य पहले आ जाते हैं और वे तथ्य बाद में प्रदर्शित किए जाते हैं जिनको समझने के लिए दूसरे तथ्यों की आवश्यकता पड़ती है।

नोट

4. **वैज्ञानिकता**–एक अच्छी रिपोर्ट में तथ्यों का विश्लेषण व व्याख्या वैज्ञानिक तौर पर और सुस्पष्ट रूप में होती है ताकि रिपोर्ट को पढ़कर ही लोगों को यह विश्वास हो जाए कि रिपोर्ट में जो कुछ कहा गया है वह काल्पनिक नहीं है अपितु तथ्ययुक्त तथा प्रयोग-सिद्ध है। इसके सूचनाओं के स्त्रोतों का उल्लेख रिपोर्ट में पृष्ठतल-टिप्पणियों आदि के रूप में प्रत्येक अध्ययन में दे दिया जाता है।
5. विश्वसनीय–एक अच्छी रिपोर्ट में जो भी निष्कर्ष निकाले जाते हैं वे सभी प्रामाणिक, विश्वसनीय तथा वैज्ञानिक विकास के उपयुक्त होते हैं। इसका तात्पर्य यही है कि रिपोर्ट में प्रत्येक निष्कर्ष को तथ्ययुक्त रूप में प्रमाण-सहित प्रस्तुत किया जाता है अर्थात् उन कारणों का भी उल्लेख किया जाता है जिन पर कि वह निष्कर्ष आधारित हैं।
6. **व्यावहारिकता**–एक अच्छी रिपोर्ट में व्यावहारिकता का तत्व भी स्पष्ट होता है अर्थात् उच्चस्तरीय रिपोर्ट इस प्रकार की होती है कि उसे पढ़कर अधिक-से-अधिक लोग लाभ उठा सकें। इस प्रकार की रिपोर्ट से केवल ज्ञान की ही वृद्धि नहीं अपितु कुछ व्यावहारिक लाभ भी होता है। अच्छी रिपोर्ट सामाजिक प्रगति व समाज-सुधार से संबंधित भविष्य-योजनाओं के निर्माण में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान करती है।
7. **सूचना के स्त्रोतों का उल्लेख**–एक अच्छी रिपोर्ट में अध्ययन-पद्धति व प्रविधियों, अध्ययन क्षेत्र, निदर्शन आदि के संबंध में स्पष्ट तथा विस्तृत विवरण होता है और साथ ही सूचना के सभी स्त्रोतों का उल्लेख किया जाता है। ऐसा करने का उद्देश्य यह होता है कि यदि किसी भी व्यक्ति को अध्ययन के निष्कर्षों के संबंध में संदेह हो तो वह रिपोर्ट में उल्लेखित प्रविधियों आदि की सहायता से उन निष्कर्षों की वैधता की जाँच कर सकता है।
8. **सीमाओं का उल्लेख**–एक अच्छी रिपोर्ट में अध्ययन में आई कठिनाइयों तथा सर्वेक्षण की सीमाओं का भी स्पष्ट रूप से उल्लेख होता है। दूसरे शब्दों में, कमियों को छिपाकर अध्ययन के पूर्णतया यथार्थ होने की डींग नहीं हाँकी जाती है। ऐसा न करने का एक और उद्देश्य होता है और वह यह है कि अध्ययन की कठिनाइयों व कमियों को ईमानदारी से स्वीकार करने पर भविष्य के अध्ययनों में अन्य सर्वेक्षणकर्ताओं द्वारा पहले ही उनके संबंध में सचेत रहने तथा उन्हें दूर करने के लिए आवश्यक कदम उठाने का अवसर मिलता है।
9. **सिद्धांत को विकसित करना**–एक उच्चस्तरीय रिपोर्ट में महत्त्वपूर्ण अवधारणाओं तथा सिद्धांत को विकसित करने का प्रयत्न किया जाता है। और साथ ही अन्य अनेक ऐसी समस्याओं, विषयों तथा प्रश्नों की ओर संकेत किया जाता है जिनके विषय में और आगे शोध या सर्वेक्षण-कार्य करने की आवश्यकता है। रिपोर्ट प्रस्तुत करने वाले प्रत्येक अनुसंधानकर्ता द्वारा इस प्रकार का संकेत अत्यंत महत्त्वपूर्ण होता है।

5.8 रिपोर्ट का महत्त्व

रिपोर्ट संपूर्ण अध्ययन की सार-कथा होती है और इसलिए इसके महत्त्व को सभी विद्वान स्वीकार करते हैं। संक्षेप में हम भी उसका उल्लेख यहाँ कर सकते हैं–

नोट

1. ज्ञान का प्रसार करने में शोध या सर्वेक्षण-रिपोर्ट सहायक सिद्ध होती है। रिपोर्ट में अध्ययन-विषय से संबंधित प्राप्त ज्ञान का समावेश होता है और उस रिपोर्ट को पढ़कर दूसरे लोग भी ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। रिपोर्ट में केवल अध्ययन-विषय के संबंध में ही नहीं अपितु अन्य संबंधित विषयों का भी संकेत रहता है जो कि ज्ञान के प्रसार में और भी सहायक होता है।
2. रिपोर्ट नए अध्ययनों के लिए आवश्यक प्राक्कल्पना का आधार बन सकती है क्योंकि सर्वेक्षण की रिपोर्ट का अध्ययन करने पर अनेक नए विचार उत्पन्न हो सकते हैं और साथ ही उन प्रश्नों या समस्याओं का भी आभास होता है जिनके संबंध में आगे शोध-कार्य किया जा सकता है।
3. रिपोर्ट से एक विषय के संबंध में हुए प्रायः सभी अध्ययन-कार्यों का परिचय प्राप्त होता है क्योंकि रिपोर्ट में पूर्व अध्ययनों का उल्लेख होता है।
4. शोधकर्ताओं को अपने शोध-कार्य के लिए पद्धति व प्रविधियों को चुनने में मदद मिलती है और साथ ही नवीन अनुसंधान-प्रणालियों का आविष्कार भी संभव होता है।
5. रिपोर्ट सामाजिक प्रगति व समाज-सुधार की योजना का आधार बन सकती है। बहुधा सरकार आदि के द्वारा इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए सर्वेक्षण करवाया जाता है और रिपोर्ट के आधार पर योजना का निर्माण किया जाता है।
6. रिपोर्ट मेहनतकश जनता के लिए भी उपयोगी सिद्ध हो सकती है। सरकार या निजी संस्थाओं द्वारा कर्मचारियों के वेतन आदि में वृद्धि करने या उनके कार्य की दशाओं को सुधारने के लिये सर्वेक्षण करवाए जाते हैं और रिपोर्ट के आधार पर वेतन, महँगाई-भत्ता आदि में वृद्धि कर दी जाती है। जनता से संबंधित अनेक अवांछित अवस्थाओं के निराकरण के लिये भी रिपोर्ट में सुझाव दिए जाते हैं और उसी अनुसार व्याधिकीय अवस्थाओं को सुधारने के लिए आवश्यक कदम उठाए जाते हैं।

5.9 विवरण प्रस्तुति की रूपरेखा

इसके अन्तर्गत इस बात का वर्णन किया गया है कि अनुसंधान पूर्ण हो जाने पर उसके सम्पूर्ण विवरण को लिखित रूप में किस प्रकार प्रस्तुत करना चाहिए अर्थात् शोध-प्रबंध का लिखित आकार-रूप (format) कैसा होना चाहिए। पूरे शोध-प्रबंध को इस दृष्टिकोण से निम्नलिखित भागों में बाँटा जाता है–

1. प्रारम्भिक आवश्यकताएँ

I. मुख पृष्ठ (Title Page)
II. अनुमोदन पत्र (Letter of Approval)
III. आभाराभिव्यक्ति (Acknowledgement)
IV. प्राक्कथन (Preface)
V. विषय-वस्तु (Contents)
VI. सारणी सूची (List of Tables)
VII. आकृतियों की सूची (List of Figures)

2. मुख्य विषय-वस्तु

I. पृष्ठभूमि (Introduction)

1. समस्या का कथन (Statement of the Problem)
2. समस्या के उद्देश्य (Purpose of the Problem)
3. सम्बन्धित अनुसंधानों का विश्लेषण (Analysis of related Researchs)
4. परिकल्पनाओं की आधारभूत अवधारणाएँ (Basic concepts of Hypothesis)
5. परिकल्पनाओं का कथन (Statement of Hypothesis)
6. तकनीकी शब्दों की व्याख्या (Describe of Technical Words)।

II. सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण

III. अध्ययन की विधि एवं प्रक्रिया

IV. अध्ययन के परिणाम

V. अध्ययन के परिणामों की व्याख्या

VI. सारांश (सम्पूर्ण विवरण का)

3. संदर्भ-सामग्री (संदर्भ-ग्रंथों की सूची, परिशिष्ट आदि)

नोट

1. प्रारम्भिक आवश्यकताएँ–प्रत्येक शोध-प्रबंध में अनुसंधान का वर्णन करने से पहले विश्वविद्यालय के नियमों एवं परम्परा के अनुसार कुछ पृष्ठ औपचारिकता के नाते जोड़ने पड़ते हैं। इनमें मुख पृष्ठ, अनुमोदन पत्र, आभाराभिव्यक्ति, प्राक्कथन, विषय-वस्तु (अध्याय सूची), तालिका-सूची एवं आकृति-सूची के पृष्ठ सम्मिलित होते हैं।

I. मुख्य पृष्ठ

इस पृष्ठ पर जो सूचनाएँ रहती हैं, वे इस प्रकार होती हैं–(i) समस्या का शीर्षक, (ii) शोधकर्ता का नाम (उपाधियों सहित), (iii) संकाय एवं उस विश्वविद्यालय का नाम जहाँ शोध-प्रबंध उपस्थापित किया जाना है, (iv) उपाधि का नाम जिसके लिए शोध-प्रबंध उपस्थापित किया जाना है, (अ) वर्ष जिसमें उसे उपस्थापित किया जा रहा है। इन सूचनाओं को किस प्रकार पृष्ठ पर टंकित किया जाना चाहिए। इस संबंध में विशिष्ट नियम इस प्रकार हैं–

(i) समस्या का शीर्षक बड़े शब्दों (Capital letters) में टंकित किया जाता है। पृष्ठ के बीच में दोनों ओर बराबर हाशिया छोड़ा जाता है। ऊपर ls 1½″ स्थान छोड़ा जाता है। यदि एक से अधिक पंक्तियों का शीर्षक है तो उसे डबल स्पेस में तथा उल्टे पिरामिड के रूप में टंकित किया जाता है। अगले पृष्ठ पर दिये गये नमूने को देखिए। यह अंग्रेजी में है परन्तु हिन्दी में भी इसी रूप में होना चाहिए।

(ii) इस पृष्ठ की अन्य सभी सूचनाओं के प्रत्येक महत्त्वपूर्ण शब्द का प्रथम अक्षर ही कैपिटल में टंकित किया जाता है। अगले पृष्ठ पर दिए गये नमूने को देखिए।

हिन्दी में कैपिटल अक्षरों का प्रश्न नहीं उठता। अत: समस्या-शीर्षक के थोड़े बड़े टाइप में तथा शेष सारी सूचनाओं को उससे छोटे टाइप में टंकित किया जा

नोट

सकता है। इलेक्ट्रोटाइपिंग में ऐसी व्यवस्था रहती है। यदि ऐसी व्यवस्था नहीं है तो समस्या-शीर्षक को रेखांकित किया जा सकता है।

II. अनुमोदन पत्र

दि विश्वविद्यालय के नियमानुसार अनुमोदन-पत्र को लगाना आवश्यक है तो उसकी फोटोकापी कराकर उसे उसी रूप में थीसिस में लगाना चाहिए।

A STUDY OF THE RELATIONSHIP BETWEEN PERSONALITY FACTORS AND ADMINISTRATIVE EFFECTIVENESS OF THE PRINCIPALS IN ORISSA

By

NARAYAN TRIPATHY

M.A. (Education), M. Phil, (Education), Lecturer (Education)

Bhadrak College, Orissa.

A THESIS

Submitted to the University of Meerut (U.P.)

in Fulfilment of the Requirement for the

Degree of Ph. D. in Education.

Supervised by

DR. R.P. BHATNAGAR Retd. Professor and Head, Department of Education, Dean, Faculty for Education, Meerut University, Meerut.

DEPARTMENT OF EDUCATION

Institute of Advanced Studies

Meerut University (U.P.)

1984

TABLE OF CONTENTS

	APPROVAL SHEET	II
	ACKNOWLEDGEMENT	III
	LIST OF TABLES	V
	LIST OF FIGURES	VII
Chapter		
I.	INTRODUCTION	1
	Background of the Study	3
	Statement of the Problem	7

	Objectives of the Study	8
	Hypothesis of the Study	9
	Significance of the Study	10
	Definition of Terms	12
	Scope of the Study	14
II.	REVIEW OF RELATED LITERATURE (Subdivisions as in the First Chapter)	15
III.	METHOD AND PROCEDURE	40
IV.	THE DATA AND THE RESULTS	82
V.	INTERPRETATION AND DISCUSSION OF RESULTS	102
VI.	IMPLICATIONS OF FINDINGS AND SUGGESTIONS FOR FURTHER RESEARCH	114
VII.	SUMMARY AND CONCLUSION	135
	BIBLIOGRAPHY	156
	APPENDIX-A	177
	APPENDIX-B	181

तालिका-सूची अलग एक पृष्ठ पर टंकित की जाती है।

LIST OF TABLES

1. Mean and Standard Deviation of Group-A 30
2. Mean and Standard Deviation of Group-B 36
3. t-Values on All Variables between Group-A and Group-B 40

LIST OF ILLUSTRATIONS

	Figure	Page
1.	I.Q. Distribution Curve of Boys	38
2.	Comparative Bar-diagrams Showing Achievements of Boys and Girls	46
3.	I.Q. Distribution Curve of Girls	58
4.	Comparative Bar-diagram Showing I.Q. Distributions of Boys and Girls	60

आकृति-सूची अलग पृष्ठ पर टंकित की जाती है।

III. आभाराभिव्यक्ति पृष्ठ एवं प्राक्कथन

प्रत्येक शोध-प्रबंध में अनुमोदन-पत्र के पश्चात् एक या दो पृष्ठों में आभाराभिव्यक्ति एवं प्राक्कथन रहते हैं। प्राक्कथन के अन्तर्गत अत्यन्त संक्षेप में शोध के उद्देश्यों एवं विस्तार (scope) का उल्लेख करना होता है। उसके बाद जिन लोगों से शोध-कार्य में महत्त्वपूर्ण सहायता मिली है, उनके प्रति आभार व्यक्त किया जाता है, परन्तु आभार-अभिव्यक्ति बढ़ा-चढ़ाकर करना अच्छा नहीं समझा जाता। यह चापलूसी नहीं

लगनी चाहिए। वस्तुनिष्ठ होनी चाहिए। जब तक आवश्यक न हो आभार-अभिव्यक्ति एवं प्राक्कथन को अलग-अलग न रखकर एक साथ ही लिखा जाना चाहिए।

IV. विषय-वस्तु

नोट

इसके बाद प्रत्येक थीसिस में वे पृष्ठ रहते हैं जिनमें यह दर्शाया जाता है कि सम्पूर्ण शोध-प्रबंध में कहाँ क्या है। इसके सबसे पहले पृष्ठ पर ऊपर से एक इंच छोड़कर तथा पृष्ठ के बीचो-बीच विषय-सूची (यदि हिन्दी में हो तो) अथवा टेबिल आफ कन्टेंट्स (Table of Contents) यदि अंग्रेजी में है तो टंकित किया जाता है। उसके नीचे एक इंच स्थान छोड़कर बाईं ओर कैपिटल अक्षरों में अनुमोदन-पत्र (Approval sheet), आभाराभिव्यक्ति एवं प्राक्कथन (Acknowledgement and Preface) आदि तथा अध्यायों एवं संदर्भ-ग्रंथों की सूची (Bibliography) आदि शीर्षक प्रत्येक दो के बीच डबल स्पेस देकर टंकित किए जाते हैं। यदि अंग्रेजी में शोध-प्रबंध है तो जहाँ से अध्याय (chapters) आरंभ होते हैं, उसके ऊपर शीर्षक चैप्टर (Chapter) टंकित किया जाता है जिसका केवल प्रथम अक्षर ही कैपिटल होता है। प्रत्येक शीर्षक के सामने दाईं ओर उसकी पृष्ठ संख्या रहती है। पृष्ठ संख्या जहाँ से आरंभ होती है, उसके 1/2″ ऊपर शीर्षक (page) टंकित होता है जिसका पहला अक्षर ही कैपिटल होता है। हिन्दी में कैपिटल का प्रश्न नहीं उठता।

अनुमोदन-पत्र से लेकर आकृतियों की सूची तक पृष्ठों की संख्या रोमन अंकों में (यथा I, II, III, IV आदि) तथा उसके बाद सारे पृष्ठों की संख्या अरबी अंकों में डाली जाती है। संदर्भ-ग्रंथ-सूची तथा परिशिष्टों की पृष्ठ-संख्या भी सम्पूर्ण शोध-प्रबंध की पृष्ठ-संख्या के क्रम में ही आगे चलती चली जाती है।

अध्यायों के शीर्षक कैपिटल में, परन्तु उनके उपभागों के शीर्षक छोटे अक्षरों में (प्रारंभिक अक्षर कैपिटल में) टंकित किए जाते हैं। प्रत्येक शीर्षक की पृष्ठ-संख्या वही होनी चाहिए जो थीसिस में है तथा शीर्षक की शब्दावली भी ठीक वही होनी चाहिए जो थीसिस में है।

शीर्षकों में जहाँ तक सम्भव हो एक ही पंक्ति होनी चाहिए तथा उनकी वाक्य-संरचना एक सी होनी चाहिए। विषय-सूची (content) पृष्ठ का नमूना पिछले पृष्ठ पर दिया गया है।

V. सारणी-सूची

विषय-सूची (content) के पश्चात् वे पृष्ठ रहते हैं जिन पर सारणियों अथवा तालिकाओं की सूची प्रस्तुत की जाती है। तालिकाओं तथा अकृतियों की सूची अलग-अलग पृष्ठों पर टंकित की जाती है। उसके अन्तर्गत जो सूचनाएँ प्रस्तुत की जाती हैं, वे हैं–(i) तालिका अथवा आकृति की क्रम-संख्या (शोध-प्रबंध के अनुसार) जो अरबी अंकों में टंकित की जाती है, (ii) तालिका का शीर्षक, (iii) उस पृष्ठ की संख्या जिस पर वह शोध-प्रबंध में उपलब्ध है। पिछले पृष्ठों पर इनके नमूने दिए गए हैं, उन्हें देखें।

2. मुख्य-विषय वस्तु

इसके अन्तर्गत मूल रूप से छः अध्याय आते हैं (i) पृष्ठभूमि, भूमिका अथवा विषय-प्रवेश (Introduction), (ii) संबंधित साहित्य का सर्वेक्षण, (iii) अध्ययन-विधि, प्रक्रिया अथवा

अभिकल्प (Design of the study), (iv) शोध-सामग्री का विश्लेषण, परिणाम एवं उनकी व्याख्या, (v) निष्कर्षों की उपयोगिता एवं आगामी अनुसंधान हेतु सुझाव तथा (vi) सारांश।

नोट

I. पृष्ठभूमि

इसके अन्तर्गत शोधकर्ता सम्पूर्ण पृष्ठभूमि प्रस्तुत करता है अर्थात् वह इस बात पर प्रकाश डालता है कि समस्या की उद्‌भावना किस प्रकार हुई, वह संबंधित अनुसंधानों से किस प्रकार भिन्न है, उसका विस्तृत अर्थ क्या है, उसके चर कौन-कौन से हैं, उसका अर्थ क्या है, समस्या के उद्देश्य क्या हैं, उसकी परिकल्पनाएँ क्या हैं, उसका विस्तार-क्षेत्र (scope) क्या है, उसका महत्त्व क्या है आदि।

II. संबंधित साहित्य का सर्वेक्षण

इसके अन्तर्गत समस्या से संबंधित जितना भी साहित्य उपलब्ध है, उसका अध्ययन करके यथा-स्थान आवश्यक होने पर उसका उल्लेख किया जाता है। कुछ शिक्षाविद् इसका उल्लेख पूरे शोध-प्रबंध में जहाँ-जहाँ भी उसका उल्लेख करना आवश्यक एवं सार्थक समझा जाए, वहीं-वहीं करने के पक्ष में हैं तथा एक अलग अध्याय उसके लिए बनाने को उचित नहीं समझते। इस संबंध में यह उचित है अथवा वह ऐसा न सोचकर शोधकर्ता को अपने शोध-मार्गदर्शन के मतानुसार कार्य करना चाहिए। यदि अलग एक अध्याय बनाया जाता है तो उसे कई परिप्रेक्ष्यों में बाँटकर विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति हेतु उसका उल्लेख करना चाहिए। समस्या के क्षेत्र में हुए पिछले अनुसंधानों का अध्ययन करके यह बताना चाहिए कि किन-किन पक्षों को लेकर तथा किस-किस प्रकार के अनुसंधान हो चुके हैं, उनके परिणाम कहाँ तक समस्या का समाधान प्रस्तुत करते हैं अथवा प्रश्नों के उत्तर खोज चुके हैं, आगे और अनुसंधान करने की कितनी, क्यों और किस दिशा में आवश्यकता है। उस समस्त पृष्ठभूमि में प्रस्तावित शोध का क्या महत्त्व है, समस्या की परिकल्पनाओं को संबंधित साहित्य किस प्रकार तर्कपूर्ण आधार प्रस्तुत करता है, परिकल्पनाओं के चरों को संबंधित साहित्य में किस प्रकार परिभाषित किया गया है, उनका मापन किस प्रकार किया गया है आदि अनेक पहलू हैं जिनकी व्याख्या करने में संबंधित साहित्य एवं सूचनाओं के सर्वेक्षण से बहुत लाभ हो सकता है। इस अध्याय में क्या होना चाहिए तथा सम्पूर्ण सामग्री का गठन किस प्रकार किया जाना चाहिए, इस संबंध में कोई निश्चित रूपरेखा नहीं हो सकती। यह बहुत कुछ समस्या के प्रकार पर निर्भर करता है।

III. अध्ययन की विधि एवं प्रक्रिया शोध

प्रबंध के तीसरे अध्याय में अनुसंधान की सम्पूर्ण प्रक्रिया का वर्णन किया जाता है। शोधकर्ता सही-सही तथा विस्तार से लिखता है कि अनुसंधान किस प्रकार किया गया है। इसके अन्तर्गत समष्टि की परिभाषा, न्यादर्श के चयन की विधि, चरों की परिभाषा, उनके मापन हेतु प्रयोग की गई परीक्षाओं का वर्णन, सूचनाओं के विश्लेषण की विधि आदि का विस्तार से वर्णन किया जाता है। क्या-क्या लिखा जाएगा, यह बहुत कुछ इस बात पर भी निर्भर करता है कि अध्ययन किस प्रकार का है। विशेष ध्यान देने की बात यह है कि कोई आवश्यक जानकारी छूटनी नहीं चाहिए। पाठकों के मन में पढ़ते समय यह प्रश्न नहीं उठना चाहिए कि 'यह कैसे किया'।

नोट

IV. सूचनाओं का विश्लेषण एवं परिणाम

साधारणतया शोध-प्रबंध के चौथे अध्याय में शोध-सामग्री तथा सूचनाओं का विश्लेषण एवं शोध-परिणामों को प्रस्तुत किया जाता है। यह सम्पूर्ण शोध-कार्य का प्रमुख भाग होता है। शोध-सामग्री गुणात्मक अथवा संख्यात्मक किसी भी प्रकार की अथवा दोनों प्रकार की हो सकती है। उसकी प्रस्तुति के विषय में कोई निश्चित नियम अथवा प्रक्रिया का उल्लेख करना उचित नहीं होगा क्योंकि यह इस पर निर्भर करता है कि समस्या किस प्रकार की है तथा संबंधित शोध-सामग्री किस प्रकार की है। एक सामान्य सुझाव यह है कि सामग्री की प्रस्तुति एवं उसका विश्लेषण परिकल्पनाओं के क्रमानुसार होना चाहिए। परिकल्पना का कथन करके यह बताना चाहिए कि उसके परीक्षण हेतु किस प्रकार की सूचनाएँ एवं सामग्री एकत्र की गई हैं। उसकी सही ढंग से तालिका के रूप में प्रस्तुति करना चाहिए। उसके बाद उसका विश्लेषण किस प्रकार किया गया तथा परिणाम क्या आया इसका उल्लेख करना चाहिए। उसी के क्रम में परिणाम की व्याख्या दी जानी चाहिए। व्याख्या अर्थात् परिणाम की सार्थकता का निरूपण एक कठिन कार्य होता है। इसमें शोधकर्ता को प्रयुक्त विधि, प्रक्रिया की अपनी कमियों, सामग्री के संग्रह में हुई त्रुटियों, पूर्व में अनुसंधानों द्वारा उपलब्ध परिणामों आदि को ध्यान में रखते हुए तथा उनका उल्लेख करते हुए यह कथन करना होता है कि प्राप्त परिणाम कहाँ तक तर्कपूर्ण, सम्भावित एवं विश्वसनीय हैं। यदि अन्य अनुसंधानों के परिणामों से भिन्न कोई परिणाम आया है तो यह उल्लेख करना भी आवश्यक है कि ऐसा क्यों है।

V. आगामी अनुसंधान हेतु सुझाव एवं परिणामों की उपयोगिता

कोई भी अनुसंधान अपने में पूर्ण नहीं होता। अतः शोधकर्ता इस कार्य के बीच कई बार यह अनुभव करता है कि यदि उसे दूसरे प्रकार से किया जाता, दूसरे प्रकार की सूचनाएँ एकत्र की जातीं, बड़े न्यादर्श का चयन किया जाता अथवा भिन्न समष्टि को लेकर शोध किया जाता, विश्लेषण की किसी दूसरी विधि का प्रयोग किया जाता तो अधिक अच्छा होता। इसी प्रकार अनुसंधान-कार्य के बीच कुछ नई शोध-समस्याएँ उसके मस्तिष्क में उभर सकती हैं। परन्तु वह स्वयं अब न तो दूसरी समस्या पर अनुसंधान कर सकता है और न उसकी प्रक्रिया में कोई परिवर्तन कर सकता है। अतः शोध-प्रबंध के अध्याय-IV में ही अथवा एक अलग अध्याय-V बनाकर उसमें इन्हें प्रस्तुत करता है। इसी के क्रम में उसी अध्याय में प्राप्त परिणाम किस प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में उपयोगी हो सकते हैं, उसका उल्लेख करता है। साधारणतया इसके लिए एक अलग अध्याय रखना ही अधिक उपयुक्त समझा जाता है।

VI. सारांश एवं निष्कर्ष

यह शोध-प्रबंध का अन्तिम अध्याय होता है। इस अध्याय में शोधकर्ता सम्पूर्ण शोध-प्रबंध की कार्य-प्रणाली एवं सारे अध्यायों का (केवल अध्याय-II को छोड़कर) सारांश प्रस्तुत करता है। यही अध्याय है जो बहुत अधिक पढ़ा जाता है। परीक्षक भी पहले इसी को पढ़ता है। अध्याय-II में संबंधित साहित्य का सर्वेक्षण रहता है। उसका अलग से सारांश प्रस्तुत करना आवश्यक नहीं होता। उसे संक्षेप में समस्या-कथन

नोट

के साथ ही लिखना होता है। यह 15 से 20 पृष्ठों में लिखा जाना पर्याप्त होता है। कुछ शोधकर्ता इसी अध्याय को सार (abstract) के रूप में उपस्थापित (submit) कर देते हैं। वास्तव में सार 'सारांश एवं निष्कर्ष' वाले अध्याय से भिन्न होता है। सार (abstract) लगभग 600 शब्दों में लिखने का नियम है। विश्वविद्यालय के नियमानुसार इसकी अलग से चार-पाँच प्रतियाँ माँगी जाती हैं। कहीं-कहीं शोध-प्रबंध के आरंभ में ही इसे जोड़ देने की प्रथा है। इसका उद्देश्य पाठक को केवल यह बताना होता है कि शोध किस विषय पर है तथा उसे पाठक को सम्पूर्ण रूप में पढ़ना चाहिए अथवा नहीं।

3. **संदर्भ-सामग्री**

छहों अध्यायों के समाप्त हो जाने के बाद उसी के क्रम में संदर्भ-सामग्री को शोध-प्रबंध में सम्मिलित किया जाता है। इसके अन्तर्गत पहले संदर्भ-ग्रंथ सूची प्रस्तुत की जाती है। उसके बाद उसी क्रम में परिशिष्ट प्रस्तुत किए जाते हैं। इन्हें किस प्रकार लिखा एवं प्रस्तुत किया जाता है, इसका विस्तार से उल्लेख आगे किया गया है।

5.10 लेखन शैली

पूर्वगत खण्ड-क में यह बताया गया है कि शोध-प्रबंध में कहाँ, क्या लिखा जाता है। इस खण्ड में यह बताने का प्रयास किया गया है कि उस सबको किस प्रकार लिखना चाहिए।

अनुसंधान का प्रतिवेदन अथवा शोध-प्रबंध अनुसंधान की एक वैज्ञानिक एवं तकनीकी रिपोर्ट होती है। उसे विशेषज्ञ ही पढ़ते हैं जो इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि उसमें कहाँ, क्या और किस ढंग से लिखा जाना चाहिए। अत: इन विशेषज्ञों के दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर ही शोध-प्रबंध लिखा जाना चाहिए। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मान्य निर्देशिकाओं (कैम्पबेल, 1954; डगडेल, 1962 तुराबियन, 1960) में इन दृष्टिकोणों का परिचय मिल सकता है। प्रत्येक शोधकर्ता को शोध-प्रबंध लिखना आरंभ करने से पहले इनमें से किसी एक को अच्छी तरह से पढ़कर उसी के निर्देशों का आरंभ से अन्त तक पालन करना चाहिए। कुछ सामान्य सुझाव नीचे प्रस्तुत किए गए हैं–

1. **लेखन–**शैली तथ्याधारित, वस्तुनिष्ठ, तर्कपूर्ण एवं सीधी-सीधी होनी चाहिए। घुमा-फिराकर बात को कहना, उसका तथ्यों पर आधारित न होना, सांवेगिक एवं भावुकतापूर्ण होना, अपनी बात को कहने में अत्यधिक प्रतिरक्षी (defensive) होना, पाठकों को अनावश्यक रूप से प्रभावित करने का प्रयास शैली में अभिव्यक्त होना-ये सब लेखन-शैली के दोष माने जाते हैं।
2. **लेखन–**शैली में शोधकर्ता की विद्वत्ता, उसका गहन तकनीकी अध्ययन, लेखन-कौशल एवं भाषा-आधिपत्य का आभास स्पष्ट झलकना चाहिए।
3. **विवरण का संगठन–**प्रत्येक अध्याय के सम्पूर्ण विवरण का संगठन क्रमबद्ध एवंशृंखलाबद्ध होना चाहिए अर्थात् पहले उसे कुछ प्रमुख खण्डों में बाँटना चाहिए। प्रमुख खण्ड के शीर्षक को पृष्ठ के केन्द्र में तथा उपखण्डों के शीर्षकों को बाईं ओर हाशिये में लिखना चाहिए। प्रत्येक खण्ड एवं उपखण्ड के अन्तर्गत उसी से संबंधित विवरण आना चाहिए। प्रत्येक खण्ड एवं उपखण्ड विचारों का संगठन भी क्रमबद्ध रूप में होना चाहिए अर्थात् जो विचार जिसके पहले अथवा बाद में आना चाहिए उसे उसी क्रम में लिखना चाहिए।

नोट

कोई बात कहीं लिख दी, कोई कहीं दूसरी जगह, ऐसा नहीं करना चाहिए। संबंधित विचार एक ही स्थान पर और उसी क्रम में आने चाहिए जिस क्रम में वे एक-दूसरे से संबंधित हैं। यह संबंध-क्रम (coherence) लेखन-शैली का अत्यंत वांछनीय पक्ष है। प्रत्येक खण्ड अथवा उपखण्ड का एक मूल विचार (theme) होता है। उसी को केन्द्र में रखकर सारे विचारों का उसी के इर्द-गिर्द क्रमानुसार संगठन किया जाना चाहिए। प्रत्येक खण्ड एवं उपखण्ड में विवरण की, विचारों की, तथ्यों की, तर्कों की जैसी वांछनीय है, एक शृंखला सी बन जानी चाहिए। साथ ही वह इतनी सुगठित होनी चाहिए कि उसकी एक कड़ी भी बीच से निकले तो शृंखला के टूटने का आभास तुरंत हो जाए।

4. भाषा–अनुसंधान प्रतिवेदन का उद्देश्य होता है पाठकों को अनुसंधान की वस्तुनिष्ठ जानकारी देना। भाषा इस जानकारी का सशक्त माध्यम है। अतः वह ऐसी होनी चाहिए कि अपने इस उद्देश्य की प्राप्ति में सफल हो सके। क्योंकि अनुसंधान प्रतिवदेन का उद्देश्य वस्तुनिष्ठ जानकारी देना होता है, अतः साहित्यिक अलंकारिक भाषा का प्रयोग, क्लिष्ट भाषा का प्रयोग, कठिन शब्दों का प्रयोग, लच्छेदार भाषा का प्रयोग, ऐसे शब्दों का प्रयोग जो प्रचलन में नहीं हैं, लम्बे-लम्बे वाक्यों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। इस प्रकार की भाषा विचारों एवं तथ्यों को समझने में कठिनाई पैदा करती है। भाषा सरल, स्पष्ट तथा सीधी-सीधी होनी चाहिए जिससे अध्ययन संबंधी बात तुरंत समझ में आ जाए तथा गलतफहमी से बचा जा सके। यदि किसी ऐसे शब्द अथवा ऐसी संकल्पना का प्रयोग अपरिहार्य हो जिसके विषय में लगे कि उसे समझना कठिन होगा तो वहीं उसे दो-तीन वाक्यों में स्पष्ट कर देना चाहिए।

5. **सन्तुलन एवं विशिष्टीकरण–**सम्पूर्ण प्रतिवेदन की विवरण-सामग्री की प्रस्तुति में सन्तुलन होना आवश्यक है अर्थात् विवरण के विभिन्न खण्डों, उपखण्डों भागों आदि को जितने विस्तार से लिखने की आवश्यकता है, उतने ही विस्तार से लिखना चाहिए। किसी एक अध्याय को बहुत विस्तार से तथा दूसरे को अनावश्यक रूप से संक्षेप में लिखना प्रतिवेदन में असन्तुलन पैदा करता है। यह सन्तुलन प्रत्येक अध्याय के भीतर भी बना रहना आवश्यक है। किसी अत्यंत महत्त्वपूर्ण पक्ष को आठ-दस पंक्तियों में लिखकर समाप्त कर देना तथा साधारण से पक्ष को कई पृष्ठों में लिखना भी असन्तुलन के उदाहरण हैं। प्रतिवेदन में कुछ विचार-बिन्दु अथवा शब्द अथवा कथन ऐसे होते हैं जो विशिष्ट होते हैं। उन पर बल देने की आवश्यकता होती है ताकि वे पाठक का ध्यान आकर्षित कर सकें। अतः उन्हें रेखांकित, बड़े अक्षरों में अथवा भिन्न प्रकार के टाइप में लिखना होता है। इस विशिष्टीकरण की प्रक्रिया में भी सन्तुलन होना आवश्यक है। जहाँ बल देना आवश्यक है, वहीं दिया जाना चाहिए। महत्त्वहीन विचारों, कथनों, शब्दों पर बल देना उचित नहीं है।

6. **विचारों की एकता एवं स्पष्टता–**प्रतिवेदन के सम्पूर्ण विवरण में विचारों एवं सामग्री की एकता एवं स्पष्टता होना अत्यंत आवश्यक है। अनुसंधान के किसी एक पक्ष से संबंधित सभी विचार एक जगह आने चाहिएँ। यदि परिप्रेक्ष्य एक परीक्षा के निर्माण का है तो उसका पूरा विवरण तीसरे अध्याय में एक ही स्थान पर आना चाहिए। जगह-जगह पर उसी अध्याय में अथवा अन्य अध्यायों में उससे संबंधित सामग्री बिखरी हुई नहीं होनी चाहिए। विवरण-प्रस्तुति की यह एकता प्रतिवेदन की स्पष्टता को बढ़ाती है। स्पष्टता प्रतिवेदन-लेखन की सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता होती है।

नोट

7. **कुछ अन्य सुझाव**–प्रतिवेदन के लेखन में शोधकर्ता को निम्नलिखित बातों को भी ध्यान में रखना चाहिए–

(i) प्रतिवेदन लिखने में अन्य पुरुष का प्रयोग किया जाता है, यथा "शोधकर्ता ने अनुभव किया", "मैंने अनुभव किया" नहीं।

(ii) प्रतिवेदन के मूलपाठ (जमगज) में शब्द-संक्षेपों (abbreviations) का प्रयोग नहीं किया जाता। फुटनोट, संदर्भ-ग्रन्थ-सूची तथा परिशिष्ट एवं तालिका आदि में उनका प्रयोग वर्जित नहीं है।

(iii) प्रतिशत को शब्दों में लिखा जाता है। इस प्रकार (%) नहीं।

(iv) वाक्य के आरम्भ में संख्या को शब्दों में लिखा जाता है, अंकों में नहीं।

(v) वह संख्या जो 100 से कम होती है, शब्दों में लिखी जाती है, अंकों में नहीं।

(vi) पैराग्राफ के बीच में यदि विचारों को क्रमसंख्या देनी होती है तो उस क्रम संख्या को कोष्ठक में लिखा जाता है, यथा (3) अथवा (x)।

(vii) जो कुछ शोधकर्ता अथवा अन्य व्यक्तियों द्वारा पूर्व में किया जा चुका है उसका उल्लेख करते समय भूतकाल का प्रयोग किया जाता है, यथा "न्यादर्श का चयन" समसंभाविक विधि द्वारा किया गया था तथा यह नगर के 110 विद्यालयों पर आधारित था।"

(viii) परन्तु जब प्रस्तुत तालिका, शोध के प्रस्तुत परिणाम तथा पूर्व स्थापित एवं सर्वमान्य तथ्यों, नियमों एवं सिद्धांतों के संबंध में उल्लेख किया जाता है तो वर्तमान काल का प्रयोग किया जाता है, यथा "इस तालिका से स्पष्ट है", "स्किनर का पुनर्बलन का सिद्धांत इस बात की ओर संकेत करता है", "विश्लेषण के आधार पर यह परिणाम निकलता है" आदि।

5.11 तालिकाओं एवं आकृतियों की रचना

प्रत्येक अनुसंधान प्रतिवेदन में तालिकाओं एवं आकृतियों का विषय के स्पष्टीकरण के दृष्टिकोण से बहुत महत्त्व होता है। जो बात कई पैराग्राफ में समझाई जा सकती है वह एक तालिका मात्र के अध्ययन से स्पष्ट हो जाती है। यही बात आकृतियों के विषय में भी कही जाती है। अत: तालिकाओं एवं आकृतियों को प्रतिवेदन में किस प्रकार, टाइप कराना चाहिए। इस बात को शोधकर्ता के लिए जानना आवश्यक है।

(1) तालिकाओं संबंधी नियम–तालिकाओं की रचना से संबंधित कुछ नियम इस प्रकार हैं–

(i) एक सुरचित तालिका में बहुत से परस्पर संबंधित तथ्यों को इस प्रकार समाहित किया जाता है कि वह किसी एक मुख्य विचार को प्रदर्शित कर सके, यथा–एक न्यादर्श की कई विशेषताओं को (जैसे, कुल इकाइयों की संख्या, विद्यालयों की संख्या लड़के-लड़कियों की संख्या, उन सबके विभिन्न परीक्षाओं के मापांक आदि) एक ही तालिका में दर्शाया जा सकता है। यदि इनका वर्णन किया जाए तो पूरा एक पैराग्राफ लिखना पड़ेगा।

(ii) तालिका इस प्रकार बनाई जानी चाहिए कि उसका अध्ययन करने पर प्रत्येक बात स्वयं समझ में आ जाए अर्थात् उसे स्वव्याख्यात्मक (self-explanatory) होना चाहिए।

नोट

(iii) साधारण एवं सरल संख्यात्मक तथ्यों को पाठ्यवस्तु (text) के अन्दर ही वर्णनात्मक ढंग से लिख देना चाहिए। उसके लिए तालिका बनाने से कोई लाभ नहीं होता, यथा "कुल 120 विद्यालयों में से 40 विद्यालयों का चयन किया गया तथा इन 40 में से प्रत्येक विद्यालय से 10 प्रतिशत इकाइयों का चयन किया गया।" इतने सरल सत्य को प्रदर्शित करने के लिए तालिका का निर्माण करना उचित नहीं समझा जाता।

(iv) कुछ साधारण प्रकार के सांख्यिकीय तथ्यों को पाठ्यवस्तु के क्रम में ही एक अनौपचारिक तालिका (जिसमें तालिका का शीर्षक, स्तम्भ एवं पंक्तियाँ आदि नहीं होते) के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। एक वाक्य लिखकर और उनके बाद कोलन लगाकर उसके नीचे उसे प्रस्तुत किया जाता है, यथा-कुल लड़के-लड़कियों की संख्या जो इन तीनों परीक्षाओं में सम्मिलित हुए, इस प्रकार थी–

	लड़के	लडकियाँ	कुल
बुद्धि परीक्षा	170	180	250
अभिरुचि	190	80	270
व्यक्तित्व परीक्षा	150	100	250
	510	360	770

इसी प्रकार की तालिका का विषय-सूची (content) में उल्लेख नहीं किया जाता।

(v) जिस वाक्य में सदर्भ के रूप में तालिका की ओर संकेत किया जाता है, उसी वाक्य के बाद तालिका प्रस्तुत की जाती है, उससे पहले कभी प्रस्तुत नहीं की जाती।

(vi) यदि तालिका इतनी बड़ी है कि उस वाक्य के पश्चात् वह शेष पृष्ठ पर नहीं आ सकती तो उसे अन्तिम पैराग्राफ के समाप्त होते ही अगले पृष्ठ पर प्रस्तुत करना चाहिए।

(vii) यदि तालिका आधे पृष्ठ से बड़ी है तो उसे अकेले ही पूरे पृष्ठ पर बीच में प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

(viii) जो तालिकाएँ एक पृष्ठ से भी बड़ी हों उन्हें परिशिष्ट में प्रस्तुत करना चाहिए।

(ix) समपूर्ण प्रतिवेदन में आरम्भ से अन्त तक (परिशिष्ट को भी सम्मिलित करते हुए) सभी तालिकाओं की क्रम-संख्या लगातार क्रम में डालनी चाहिए।

(x) तालिका की क्रम-संख्या लिखने की दो विधियाँ हैं। एक में सबसे ऊपर केवल तालिका लिखकर उसके आगे अरबी अंकों में उसकी क्रम-संख्या लिखी जाती है तथा उसके नीचे दो स्थान छोड़कर उसका शीर्षक लिखा जाता है। शीर्षक के अन्त में किसी भी विधि में कोई विराम-चिह्न नहीं लगाया जाता। यदि तालिका अंग्रेजी में है तो टेबिल (TABLE) तथा नीचे उसका शीर्षक दोनों कैपिटल अक्षरों में टंकित किए जाते हैं। यदि शीर्षक एक पंक्ति से अधिक बड़ा है तो उसे सिंगिल स्पेस में तथा उल्टे पिरामिड के रूप में टंकित किया जाता है। दूसरी विधि में तालिका की क्रम-संख्या अलग एक लाइन में रखकर शीर्षक वाली पंक्ति के ही आरंभ में लिख दिया जाता है, यथा– तालिका 10-समूह-क के बुद्धि-परीक्षण-मापांक

(xi) तालिका के स्तंभों एवं पंक्तियों के शीर्षकों को बहुत संक्षेप में लिखना चाहिए तथा उनकी क्रम-संख्या कोष्ठक में उनके नीचे लिखना चाहिए। यदि शीर्षक बड़े हों तो उन्हें चौड़ी तरफ से (broadside) टंकित किया जा सकता है।

(xii) तालिका संबंधी फुटनोट तालिका के ठीक नीचे आधा इंच स्थान छोड़कर टंकित किए जाते हैं, पृष्ठ के अन्त में नीचे नहीं।

नोट

(xiii) स्तंभों के शीर्षकों के ऊपर एक दोहरी अथवा मोटी क्षैतिज रेखा तथा उनके नीचे सिंगिल रेखा खींची जाती है। तालिका के अंत में नीचे एक सिंगिल क्षैतिज रेखा खींची जाती है।

(2) आकृतियों संबंधी नियम–आकृतियों की प्रस्तुति के संबंध में निम्नलिखित नियम हैं–

(i) आकृति की क्रम-संख्या अरबी अंकों में आकृति के नीचे शब्द 'आकृति' (fig.) के आगे डाली जाती है तथा उसका शीर्षक या तो शब्द आकृति के आगे ही उसी पंक्ति में लिखा जाता है अथवा आकृति के ठीक ऊपर अथवा आकृति के भीतर कहीं भी लिखा जा सकता है। सम्पूर्ण प्रतिवेदन में आरंभ से अन्त तक सभी आकृतियों की क्रम-संख्या एक क्रम से लगातार डाली जाती है।

(ii) आकृति के शीर्षक को कैपिटल अक्षरों में तथा यदि एक से अधिक पंक्तियाँ हैं तो उल्टे पिरामिड के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। शीर्षक के अन्त में कोई विराम चिह्न नहीं लगाया जाता।

(iii) आकृति को उसी वाक्य के तुरंत बाद प्रस्तुत किया जाता है जिसमें उसका संदर्भ-संकेत आया है।

5.12 उद्धरित सामग्री की प्रस्तुति

प्रतिवेदन में प्रत्येक शोधकर्ता को यत्र-तत्र अनेक लेखकों, शोधकर्ताओं एवं विशेषज्ञों के विचारों, मतों, कथनों आदि का संदर्भ प्रस्तुत करना पड़ता है। प्रत्येक अध्याय में ही ऐसे संदर्भ आते हैं। उन सबकी अलग-अलग संकेत संख्या पाठ्यवस्तु के बीच में जहाँ संदर्भ आया है, प्रस्तुत करनी होती है तथा अन्त में संदर्भ-ग्रन्थ सूची में उसका पूर्ण विवरण देना होता है। कहीं-कहीं पूर्ण विविरण पृष्ठ के नीचे फुटनोट के रूप में भी देते हैं। फुटनोट तथा संदर्भ ग्रन्थ-सूची में संदर्भ के पूर्ण विवरण को प्रस्तुत करने में थोड़ा अन्तर होता है। इसका स्पष्टीकरण बाद में किया गया है।

पाठ्य-वस्तु के बीच में संदर्भ का संकेत अंकित करने की कई विधियाँ हैं। सर्वमान्य विधि वह है जिसमें जहाँ संदर्भ आया है वहीं कोष्ठक में लेखक का नाम और उसके बाद कौमा लगाकर उस ग्रन्थ के प्रकाशन का वर्ष डाल देते हैं, यथा, (भटनागर, 1993)। इन सभी संदर्भित ग्रन्थों की वर्णक्रमानुसार सूची बनाकर शोध-प्रबंध के अन्त में जोड़ देते हैं। दूसरी विधि के अन्तर्गत कोष्ठक में केवल उस क्रम संख्या को लिख देते हैं जो उस ग्रन्थ के अन्त में जुड़ी संदर्भग्रन्थ सूची में है, यथा (60)। इसका अर्थ होगा उस संदर्भ का पूर्ण विवरण संदर्भग्रन्थ सूची में क्रम-संख्या 60 पर दिया गया है। एक तीसरी विधि फुटनोट पर आधारित है। इसके अन्तर्गत पाठ्यवस्तु के बीच में आए संदर्भ पर थोड़ा ऊपर उठाकर फुटनोट की क्रम संख्या अरबी के अंकों में डाल दी जाती है जिसका अर्थ होता है कि उसका पूर्ण विवरण उसी पृष्ठ के नीच उस संख्या वाले फुटनोट में दिया गया है।

उद्धरण (quotations) को प्रतिवेदन के विवरण में प्रस्तुत करने के भी कुछ नियम हैं जो इस प्रकार हैं–

सबसे पहले यह याद रखना चाहिए कि प्रतिवेदन में बहुत अधिक उद्धरणों का प्रयोग करना अच्छा नहीं समझा जाता। अपरिहार्य हो तभी उद्धरण का प्रयोग करना चाहिए। अन्य नियम इस संबंध में नीचे दिए गए हैं।

नोट

1. उद्धरण (quotations)

उद्धरण संबंधी कुछ नियम इस प्रकार हैं–

(i) उद्धरण बहुत लम्बा नहीं होना चाहिए। छोटा तथा वाक्य के भीतर ही समा जाने वाला उद्धरण सबसे अच्छा समझा जाता है। इसे उद्धरण-चिह्नों के बीच घेर देना चाहिए।

(ii) उद्धरण के बीच भी यदि कोई दूसरा उद्धरण आता है तो उसे सिंगिल उद्धरण-चिह्नों के बीच घेर देते हैं।

(iii) उद्धरण के अन्तिम शब्द के आधा स्पेस ऊपर अरबी अंक में संदर्भ-संकेत टंकित किया जाता हैं। यदि वाक्य पूरा हो गया है तो यह संकेत-संख्या विराम-चिह्न के बाद ही टंकित की जाती है। यह संकेत संख्या वही होनी चाहिए जो फुटनोट में उसके पूर्ण विवरण की है।

(iv) लम्बे उद्धरणों (चार अथवा चार से अधिक टंकित पंक्तियों वाले) को अलग पैराग्राफ में तथा सिंगिल स्पेस में पृष्ठ के बीचो-बीच बिना उद्धरण चिह्नों के तथा बिना पैराग्राफ बनाए टंकित किया जाता है। इन लम्बे उद्धरणों के भीतर यदि कोई अन्य उद्धरण आता है तो उसे दोहरे उद्धरण चिह्नों के भीतर घेर दिया जाता है। जो असाधारण रूप से लम्बे उद्धरण हैं उन्हें परिशिष्ट में प्रस्तुत किया जाता है।

(v) यदि किसी उद्धरण को फुटनोट में प्रस्तुत किया जाता है तो उसे पैराग्राफ के रूप में सिंगिल स्पेस में तथा उद्धरण-चिह्नों के बीच रखा जाता है।

(vi) यदि उद्धरण का पहला शब्द व्याकरण के दृष्टिकोण से वाक्य में पहले जो कुछ कहा गया है उससे संबंधित है तो उसे कैपिटल में न लिखकर छोटे अक्षर में लिखा जाता है, चाहे वह मूल वाक्य में कैपिटल में ही क्यों न हों। अंग्रेजी में ही यह प्रश्न उठता है, हिन्दी में ऐसा प्रश्न नहीं उठता।

(vii) अन्तिम उद्धरण चिह्नों के पश्चात् केवल एक ही विराम चिह्न का प्रयोग किया जाता है। यदि पूर्ण विराम अथवा कौमा है तो उसे उद्धरण चिह्नों के भीतर, कोलन अथवा सेमीकोलन है तो उद्धरण चिह्नों के बाहर, यदि प्रश्न-चिह्न अथवा संबोधन चिह्न है तो उद्धरण चिह्नों के भीतर रखा जाता है। परन्तु यदि प्रश्न-चिह्न उद्धरण का भाग न होकर वाक्य का अंग है तो उसे उद्धरण चिह्नों के बाहर रखा जाता है।

2. फुटनोट–फुटनोट संबंधी नियम इस प्रकार हैं–

(i) फुटनोट पृष्ठ के अन्त में पाठ्यवस्तु के तीन स्पेस नीचे बाएँ से दाएँ टंकित किए जाते हैं। पाठ्यवस्तु के एक स्पेस नीचे एक दो इंच लम्बी रेखा बाई ओर से दाई ओर टंकित की जाती है। उसके दो स्पेस नीचे से फुटनोट टाइप किया जाता है।

नोट

(ii) फुटनोट सिंगिल स्पेस में टंकित किया जाता है, परन्तु दो फुटनोट के बीच डबल स्पेस छोड़ा जाता है।

(iii) फुटनोट की पहली पंक्ति पैराग्राफ की भाँति बाई ओर से तीन स्पेस छोड़कर टंकित की जाती है तथा उसके पहले शब्द के आधा स्पेस ऊपर उसकी प्रोद्धरण (citation) संख्या जो पाठ्यवस्तु में आई है, उसे टंकित किया जाता है।

(iv) फुटनोट की संख्या या तो पृष्ठवार डाली जाती है अथवा सम्पूर्ण प्रतिवेदन में आरंभ से अन्त तक एक क्रम में डाली जाती है। पृष्ठवार संख्या डालना अधिक सुविधाजनक होता है।

(v) यदि प्रोद्धरित (cited) सामग्री तालिका कोई गणित का सूत्र है तो उस पर उद्धरण संकेत संख्या न डालकर उसे सितारे अथवा किसी अन्य चिह्न द्वारा प्रदर्शित किया जाता है।

(vi) शोध-पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों एवं प्रकाशित पुस्तकों तथा प्रतिवेदनों में जो विधि अपनाई जाती है वह शोध-प्रबंध वाली विधि से भिन्न होती है।

(vii) यदि एक संदर्भ ग्रन्थ के फुटनोट के तुरंत बाद वही पृष्ठ तथा वही संदर्भ पुनः आता है तो उसकी संदर्भ-संकेत संख्या डालकर केवल 'वही' (lbid) लिख दिया जाता है। यदि सन्दर्भ-सामग्री वही है।

(viii) यदि किसी फुटनोट का संदर्भ एक बार आ चुका है तथा उसके बाद अन्य फुटनोट आ गए हैं और उनके बाद पुनः वही संदर्भ आए तो फुटनोट में लेखक का नाम, उसके बाद अर्ध-विराम तथा उसके बाद शब्द-संक्षेप ष्टवचण बपजण्ष्ठ और उसकी पृष्ठ संख्या लिखी जाती है। यदि किसी एक ही लेखक की एक से अधिक पुस्तकों के उद्धरण शोध-प्रबंध में प्रस्तुत किए गए हैं तो संदर्भ सं संबंधित विशिष्ट पुस्तक का नाम भी प्रत्येक बार दिया जाता है, परन्तु यदि पृष्ठ संख्या वही रहती है तो 'loc. बपजण्ष्ठ का प्रयोग किया जाता है। इन तीन शब्द-संक्षेपों के प्रयोग का एक नमूना नीचे दिया गया है–

16. पी. भटनागर, व्यवहार विज्ञानों में अनुसंधान के प्रयोगत्मक आकल्प, लायक बुक डिपो, मेरठ, 1993, पृ. 220
17. lbid. (अर्थात् वही पुस्तक, वही पृष्ठ)
18. lbid., पृ. 214
19. मौलि, जार्ज जे., दी साइंस आफ एजुकेशनल रिसर्च, यूरेशिया पब्लिशिंग हाउस, प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 1964, पृ. 308
20. भटनागर, loc-cit. (अर्थात् उपरोक्त भटनागर की पुस्तक तथा वही पृष्ठ)
21. वान डालेन, डी. बी. अन्डरस्टेंडिंग एजुकेशनल रिसर्च, मैग्रा-हिल, इंक, न्यूयार्क, 1966, पृ. 360
22. भटनागर, op.cit. 260 (अर्थात् भटनागर की उपरोक्त पुस्तक, परन्तु पृष्ठ 260)
23. आर.पी. भटनागर, शिक्षा प्रशासन, लायल बुक डिपो, मेरठ, 1989, पृ. 52
24. भटनागर, "अनुसंधान के आकल्प" op.cit. i`- 240

नोट

कुछ अन्य अत्यधिक प्रयोग में आने वाले शब्द-संक्षेप नीचे दिए गए हैं। इनका प्रयोग प्रायः ही पुस्तकों एवं शोध -प्रबंधों में किया जाता है।

ch., chap., chaps.	chapter (s)
e.g.	for example
ed., edd.	edition (s)
ed., eds.	editor (s); edited by
et. al.	and other (Bhatnagar et al. भटनागर एवं अन्य)
i.e.	that is
MS, MSS	manuscript (s)
mimeo.	mimeographed
n., nn.	footnote (s) e.g.n. 10 or nn. 2-4 अर्थात् फुटनोट 10 अथवा फुटनोट 2 से 4 तक
p.pp.	page (s)
passim	here and there
Pt. Pts.	part or parts
sec., secs.	section (s)
trans.	transted by
rev.	revised or revision

3. संदर्भग्रन्थ-सूची

(क) संदर्भग्रन्थ-सूची शोध-प्रबंध के अन्त में अध्याय "सारांश एवं निष्कर्ष" के बाद प्रस्तुत की जाती है। इसे परिशिष्ट के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है। फुटनोट तथा संदर्भग्रन्थ-सूची की प्रस्तुति में थोड़ा-सा अन्तर होता है। फुटनोट में लेखक का प्रथम नाम ही पहले आता है तथा अन्तिम उपनाम बाद में आता है, यथा आर. पी. भटनागर। परन्तु संदर्भग्रन्थ-सूची में उपनाम पहले आता है तथा प्रारम्भिक नाम बाद में आता है, यथा भटनागर, आर.पी। दूसरा अन्तर यह होता है कि फुटनोट को पैराग्राफ की भाँति टंकित किया जता है, अर्थात् उसकी प्रथम पंक्ति बाईं ओर हाशिये से तीन स्पेस छोड़कर टंकित की जाती है जिससे कि नीचे की अन्य पंक्तियाँ बाईं ओर को निकली रहती हैं। परन्तु संदर्भग्रन्थ-सूची में प्रथम पंक्ति हाशिये से शुरू होती है तथा अन्य नीचे की पंक्तियाँ हाशिये से 3-4 स्पेस छोड़कर टंकित की जाती हैं। इस प्रकार संदर्भग्रन्थ-सूची में प्रथम (ऊपर की) बाईं ओर को निकली रहती है जबकि अन्य पंक्तियाँ दाईं ओर को अन्दर खिसकी रहती हैं। नीचे के उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाएगा–

फुटनोट-(पुस्तक के लिए)

आर.पी. भटनागर, व्यवहार विज्ञानों में अनुसंधानों के आकल्प, मेरठः लायल बुक डिपो, द्वि. सं., 1993 संदर्भग्रन्थ-सूची-(पुस्तक के लिए)

भटनागर, आर.पी., व्यवहार विज्ञानों में अनुसंधान के आकल्प, मेरठः लायल बुक डिपो, द्वि. सं., 1993.

नोट

(ख) संदर्भग्रन्थ-सूची में विवरण का पूरा क्रम इस प्रकार होता है–(i) लेखक का उपनाम, (ii) वास्तविक नाम, (iii) पुस्तक का शीर्षक जिसे शोध प्रबंध के टंकन में रेखांकित किया जाता है, (iv) संस्करण, (edition) यदि एक से अधिक हों तो, (v) खण्ड (volume) यदि एक से अधिक हों तो, (vi) प्रकाशन का स्थान, (vii) प्रकाशक का नाम, (viii) प्रकाशन का वर्ष अथवा कापीराइट का वर्ष।

(ग) किसी पत्रिका में छपे लेख का संदर्भ-विवरण निम्न प्रकार होता है–(i) लेखक का उपनाम, (ii) वास्तविक नाम, (iii) लेख का शीर्षक, (iv) पत्रिका का नाम जिसे रेखांकित किया जाता है, (v) खण्ड संख्या (माह, दिन, वर्ष), (vi) पृष्ठ।

(घ) दैनिक समाचार पत्र में छपी संदर्भ-सामग्री का विवरण इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है–(i) समाचार पत्र रेखांकित किया जाता है, (पप) माह, दिन, वर्ष, (पपप) पृष्ठ। यदि लेखक का नाम भी है तो वह पुस्तक की भाँति ही समाचार पत्र के नाम से पहले आता है।

(ङ) अप्रकाशित सामग्री का संदर्भ-विवरण निम्न प्रकार दिया जाता है–(i) लेखक उपनाम, (ii) वास्तविक नाम, (iii) सामग्री का शीर्षक जो रेखांकित किया जाता है, (iv) सामग्री का प्रकार अर्थात् पी.एच.डी. थीसिस अथवा रिपोर्ट अथवा किसी कॉन्फ्रेंस में प्रस्तुत किया गया पेपर आदि, (v) स्थान जहाँ प्रस्तुत किया गया अथवा जहाँ उपलब्ध है।

संदर्भग्रन्थ-सूची में संदर्भ-विवरण प्रस्तुत संबंधी कुछ नियम इस प्रकार हैं–

(i) यदि एक ही लेखक के लगातार दो या दो से अधिक संदर्भ-ग्रन्थ आते हैं तो प्रत्येक बार लेखक का नाम लिखने की आवश्यकता नहीं होती। पहले संदर्भ के बाद जब उसी लेखक का दूसरा संदर्भ आता है तो लेखक के नाम की बजाय एक 6 स्पेस लंबी रेखा खींच दी जाती है। उसके बाद कौमा लगाकर शेष वर्णन प्रस्तुत किया जाता है। प्रथम संदर्भ के बाद आने वाले संदर्भो को वर्णक्रमानुसार प्रस्तुत किया जाता है।

(ii) यदि किसी संदर्भग्रन्थ के दो या तीन लेखक हैं तो प्रथम लेखक का उपनाम पहले आता है तथा वास्तविक नाम उसके बाद, परन्तु दूसरे दोनों के वास्तविक नाम ही पहले आते हैं तथा उपनाम बाद में। यदि लेखकों की संख्या तीन से अधिक है तो केवल प्रथम लेखक का नाम देकर उसके बाद अर्धविराम लगाकर मज ंसण अथवा 'अन्य' (and others) लिख दिया जाता है।

(iii) यदि पुस्तक का कोई एक लेखक न होकर सम्पादक है तो उसका नाम लिखकर उसके बाद कोष्ठक में संपादक (ed.) लिख देते हैं।

5.13 परिशिष्टों की प्रस्तुति

प्रत्येक शोध-प्रबंध में तीन प्रकार के परिशिष्ट जोड़े जाते हैं–(i) संदर्भग्रन्थ सूची, (ii) मनोवैज्ञानिक परीक्षाएँ तथा अन्य उपकरण जिनका प्रयोग शोध-समग्री के संग्रह हेतु किया जाता है तथा (iii) सांख्यिकीय सामग्री आदि, यथा विभिन्न परीक्षाओं के मापांक, लम्बी तालिकाएँ आदि जिनको शोध-प्रबंध के अध्यायों में प्रस्तुत नहीं किया जा सका था। इनमें सबसे पहले संदर्भग्रन्थ सूची को रखा जाता हैं। उसके प्रथम पृष्ठ से पहले एक पृष्ठ उपरिपत्र (fly sheet) पर बीच में परिशिष्ट

नोट

(क): संदर्भग्रन्थ सूची टंकित किया जाता है। अगले पृष्ठ से सूची प्रारंभ होती है। उस पृष्ठ पर भी ऊपर शीर्षक 'संदर्भग्रन्थ सूची' टंकित किया जाता है। पृष्ठांकन अन्तिम अध्याय के अन्तिम पृष्ठ के क्रम में ही किया जाता है। उपरिपत्र (fly sheet) को भी पृष्ठांकन में सम्मिलित किया जाता है। संदर्भग्रन्थ सूची के प्रथम पृष्ठ तथा उपरिपत्र का पृष्ठांक अन्य अध्यायों के शीर्ष-पृष्ठों की भाँति पृष्ठ के सबसे नीचे बीच में डाला जाता है। अन्य सभी परिशिष्टों के साथ भी उपरिपत्र रहता है। उसे भी पृष्ठांकन में सम्मिलित किया जाता है। परिशिष्ट (ख) में मनोवैज्ञानिक परीक्षाएँ एवं उपकरण रहते हैं। इसके उपरिपत्र पर 'परिशिष्ट (ख): परीक्षाएँ एवं उपकरण' टंकित किया जाता है। इसी प्रकार परिशिष्ट-(ग) में सांख्यिकीय एवं अन्य शोध-सामग्री आती हैं। इसके उपरिपत्र (fly sheet) पर परिशिष्ट (ग): शोध सामग्री' टंकित किया जाता है। इसके अन्तर्गत परिणामों की गणना (calculations) देने की आवश्यकता नहीं होती। परन्तु मूल आँकड़े (raw data) अवश्य देना चाहिए। उसके बिना शोध-प्रबंध अपूर्ण माना जाता है।

5.14 प्रतिवेदन का टंकन

साधारणतया $8\frac{1}{4}" \times 11"$ आकार के कागज पर टंकन किया जाता है जिसका भार 20 पौंड होना चाहिए। द्वितीय-तृतीय कापी के लिए हल्का कागज भी प्रयोग किया जा सकता है।

प्रतिवेदन किसी अनुभवी टाइपिस्ट से ही टंकित कराना चाहिए जिसने पहले भी कुछ प्रतिवेदन अंकित किए हों तथा जो यह जानता हो कि तालिकाओं, आकृतियों, फुटनोट, संदर्भ-ग्रन्थ-सूची आदि को कैसे टाइप किया जाता है। इसके पश्चात् भी शोधकर्ता को स्वयं भी उसका मार्गदर्शन करते रहना चाहिए। टाइप किए हुए पृष्ठों को साथ-साथ पढ़ते जाना तथा अशुद्धियों को दूर करते जाना चाहिए।

टाइप करने में पृष्ठ के सबसे ऊपर तथा नीचे $1\frac{1}{4}"$ स्थान छोड़ने, बाई ओर $1\frac{1}{2}"$ तथा दाई ओर 1" हाशिया छोड़ने की प्रथा है। पाइका टाइप वाले टापराइटर का प्रयोग किए जाने की सिफारिश की जाती है, परन्तु इलैक्ट्रिक टाइपराइटर का प्रयोग भी किया जा सकता है। जिस टाइपराइटर का भी प्रयोग किया जाए, आरंभ से अन्त तक उसी का प्रयोग होना चाहिए। कार्बन कापी की तो अब आवश्यकता रही नहीं है क्योंकि सभी शोधकर्ता फोटोकापी कराने लगे हैं। परन्तु यदि कार्बन कापी करानी हो तो काले कार्बन पेपर तथा मध्यम इंक वाले रिबन का प्रयोग किया जाना चाहिए।

हस्तलिपि को टाइप के लिए देने से पहले उसे अच्छी तरह पढ़ना चाहिए। साधारणतया फुटनोट संदर्भग्रन्थ सूची, उद्धरणों, तालिकाओं एवं आकृतियों के पृष्ठांकनों आदि में अशुद्धियाँ पाई जाती हैं। इन्हें कई बार पढ़कर चैक कर लेना चाहिए।

टाइप किए हुए प्रत्येक पृष्ठ में दो-तीन शुद्धियाँ करना तो मान्य होता है, परन्तु इससे अधिक काटा-पीटी, शब्दों को बढ़ाना अथवा बीच-बीच में वाक्यों को जोड़ना मान्य नहीं होता। ऐसे पृष्ठों को पुनः टाइप कराना चाहिए।

प्रतिवेदन के प्रत्येक पृष्ठ पर नम्बर डाला जाता है। प्रारंभिक आवश्यकताओं वाले पृष्ठों पर रोमन नम्बर डाले जाते हैं तथा उन्हें पृष्ठ के नीचे बीच में डाला जाता है। शीर्ष पृष्ठ (title page) पर नम्बर नहीं डाला जाता, परन्तु उसे एक (I) गिना जाता है। अतः उसके आगे के पृष्ठ पर संख्या II डाली जाती है। अनुमोदन पत्र पर न कोई नम्बर डाला जाता है और न उसे गिना ही जाता है। शेष सभी पृष्ठों पर अरबी अंकों में पृष्ठ के ऊपर दाईं ओर नम्बर डाले जाते हैं, परन्तु प्रत्येक अध्याय के प्रथम पृष्ठ का नम्बर पृष्ठ के सबसे नीचे बीच में डाला जाता है।

5.15 प्रतिवेदन का मूल्यांकन

नोट

प्रतिवेदन का लेखन पूर्ण हो जाने पर तथा उसे टंकन हेतु देने से पूर्व शोधकर्ता को उसका स्वयं मूल्यांकन कर लेना चाहिए। यों मूल्यांकन का कोई सर्वमान्य आधार, उसकी कोई बहुत निश्चित कसौटी तो नहीं है, परन्तु कुछ लेखकों ने इस संबंध में कुछ सुझाव दिए हैं जो शोधकर्ता की सहायता कर सकते हैं। **वान डालेन** ने एक प्रश्नावली अपनी पुस्तक में प्रस्तुत की है। उस प्रश्नावली के प्रश्न शोधकर्ता की यह जानने में सहायता कर सकते हैं कि कहाँ तक उसके द्वारा तैयार किया गया प्रतिवेदन वांछनीय स्तर का है तथा कहाँ उसमें कुछ कमी रह गई है। **वान डालेन** ने शोध-प्रबंध के सभी पहलुओं से संबंधित प्रश्न इसमें सम्मिलित किए हैं। कुछ संशोधन के साथ उसी प्रश्नावली को यहाँ प्रस्तुत किया गया है–

1. समस्या का शीर्षक

(i) क्या शीर्षक समस्या के क्षेत्र को सही-सही निश्चित रूप से बताता है?

(ii) क्या उसे स्पष्ट, संक्षिप्त एवं वर्णनात्मक रूप में लिखा गया है?

(iii) क्या अनावश्यक शब्दों एवं शब्द समूहों को उसमें से निकाल दिया गया है?

2. प्रारंभिक आवश्यकताएँ

(i) क्या प्रतिवेदन का शीर्ष पृष्ठ (title page), अनुमोदन पत्र, आभाराभिव्यक्ति विषय-सूची, तालिका-सूची एवं आकृति-सूची सब क्रमानुसार एवं उन नियमों के अनुसार तैयार करके जोड़े गए हैं जिनका उल्लेख पहले किया गया है?

(ii) क्या उन सबका पृष्ठांकन सही ढंग से किया गया है?

3. समस्या-कथन एवं उसका वर्णन

(i) क्या समस्या के उन सब पक्षों का विश्लेषण सही-सही किया गया है, जो महत्त्वपूर्ण हैं, यथा–समस्या का पूर्व में हो चुके अनुसंधानों से संबंध, उसके चरों की परिभाषा, समस्या का महत्त्व, उसके उद्देश्य आदि?

(ii) समस्यागत चरों के बीच जिस संबंध के होने की कल्पना की गई है, क्या उसकी संभावना का तर्कपूर्ण पुष्टिकरण किया गया है?

(iii) क्या समस्या के मौलिक होने का स्पष्टीकरण किया गया है?

(iv) क्या समस्या के क्षेत्र-विस्तार (scope) का स्पष्टीकरण किया गया है?

4. संबंधित साहित्य एवं सूचनाओं का सर्वेक्षण

(i) क्या समस्यागत चरों से संबंधित पूर्व में हुए अनुसंधान का पूर्णतया सर्वेक्षण कर लिया गया है?

(ii) क्या वह सर्वेक्षण आलोचनात्मक दृष्टिकोण से किया गया है?

(iii) क्या उस सर्वेक्षण से यह बात निकलकर आई है कि वर्तमान शोध-समस्या पर अनुसंधान किया जाना आवश्यक था?

(iv) क्या सर्वेक्षण समस्या को सैद्धांतिक आधार प्रदान करता है?

5. परिकल्पनाओं का निर्माण एवं कथन

(i) क्या परिकल्पनाओं का कोई सैद्धांतिक आधार है?

(ii) क्या परिकल्पनाओं का परीक्षण किया जा सकता है?

(iii) क्या परिकल्पनागत निष्कर्ष (deduced consequences) तर्कपूर्ण हैं?

(iv) क्या परिकल्पनाओं को स्पष्ट एवं संक्षेप में लिखा गया है?

6. विधि एवं प्रक्रिया

नोट

(i) क्या समष्टि (population) को सही ढंग से परिभाषित किया गया है?

(ii) क्या न्यादर्श समष्टि का प्रतिनिधित्व करता है?

(iii) क्या शोध-सामग्री के संग्रह हेतु उपयुक्त उपकरणों, विश्वसनीय एवं वैध परीक्षाओं का प्रयोग किया गया है।

(iv) क्या वे उपकरण एवं परीक्षाएँ अन्य दृष्टिकोणों से भी उपयुक्त हैं?

(v) क्या इन उपकरणों एवं परीक्षाओं का सही ढंग से प्रयोग किया गया है?

(vi) क्या आवश्यक सामग्री एवं जानकारी, सूचनाएँ आदि एकत्र कर ली गई हैं?

(vii) जिस विधि (method) का प्रयोग किया गया है, क्या उसका संतोषजनक कारण प्रस्तुत किया गया है?

(viii) क्या पूर्व में किए गए अनुसंधानों में प्रयुक्त विधियों की स्पष्ट रूप से आलोचनात्मक व्याख्या की गई है?

(ix) क्या इस बात का उल्लेख किया गया है कि शोध-सामग्री कहाँ से तथा किस प्रकार एकत्र की गई है?

(x) क्या सांख्यिकीय विधियों के प्रयोग में उनकी आधारभूत शर्तों (underlying assumptions) का ध्यान रखा गया है?

(xi) क्या अनुसंधान की आन्तरिक एवं बाह्य वैधता को प्रभावित करने वाले तत्वों को नियंत्रित करने का प्रयास किया गया है?

7. शोध-सामग्री की प्रस्तुति एवं विश्लेषण

(i) क्या संग्रहीत शोध-सामग्री का नियमानुसार प्रस्तुतिकरण किया गया है?

(ii) क्या प्रत्येक परिकल्पना का परीक्षण स्वतंत्र रूप से किया गया है?

(iii) क्या निष्कर्षों की वस्तुनिष्ठ ढंग से पूर्व में किए गए अनुसंधानों की पृष्ठभूमि में व्याख्या की गई है?

(iv) क्या परिणाम शोध-सामग्री पर आधारित हैं?

8. सारांश एवं निष्कर्ष

(i) क्या सारांश संक्षिप्त एवं स्पष्ट है?

(ii) क्या सारांश शोध-कार्य पर आधारित है?

(iii) क्या आगामी शोध हेतु दिए गए सुझाव ठोस एवं तर्कपूर्ण हैं?

(iv) क्या परिणामों की उपयोगिता की व्याख्या की गई है?

9. संदर्भग्रंथ सूची एवं परिशिष्ट

(i) क्या संदर्भग्रंथ-सूची की शैली एवं रचना नियमानुसार हुई है?

(ii) क्या सभी संदर्भग्रंथ-सूची में आ गए हैं?

(iii) क्या परिशिष्टों में सभी वांछनीय सामग्री प्रस्तुत की जा चुकी है?

10. प्रतिवेदन का रूप एवं शैली

(i) क्या अध्यायों का संगठन नियमानुसार हुआ है?

(ii) क्या पृष्ठांकन सही हुआ है?

(iii) क्या भाषा एवं शैली नियमानुसार है?

(iv) क्या प्रत्येक अध्याय में सामग्री का विवरण संतुलित ढंग से प्रस्तुत किया गया है?

(v) क्या प्रतिवेदन के टंकन में वे सावधानियाँ बरती गई हैं जिनका उल्लेख किया जा चुका है?

नोट

5.16 सारांश

शोध प्रक्रिया के बाद एक स्थिति ऐसी आती है जब रिपोर्ट तैयार करना होता है। रिपोर्ट सर्वेक्षण का अंतिम चरण होता है। रिपोर्ट संपूर्ण अध्ययन का सार होता है। अनुसंधानकर्ता के संपूर्ण ज्ञान तथा परिश्रम की 'रिपोर्ट' एक सार्थक रूप होती है। एक अच्छी रिपोर्ट में जो भी निष्कर्ष निकाले जाते हैं वे सभी प्रामाणिक, विश्वसनीय तथा वैज्ञानिक विकास के उपयुक्त होते हैं।

अनुसंधान कार्य पूर्ण हो जाने के बाद सम्पूर्ण विवरण शोध-प्रबंध के रूप में प्रस्तुत करना होता है। शोध-प्रबंध किस रूप में तैयार किया जाना चाहिए, इस संबंध में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर थोड़े हेर-फेर के साथ सर्वमान्य नियमों का पालन किया जाता है। प्रत्येक शोध-प्रबंध में अनुसंधान का वर्णन करने से पहले विश्वविद्यालय के नियमों एवं परम्परा के अनुसार कुछ पृष्ठ औपचारिकता के नाते जोड़ने पड़ते हैं। इनमें मुख पृष्ठ, अनुमोदन पत्र, आभाराभिव्यक्ति, प्राक्कथन, विषय-वस्तु (अध्याय सूची), तालिका-सूची एवं आकृति-सूची के पृष्ठ सम्मिलित होते हैं। प्रतिवेदन का लेखन पूर्ण हो जाने पर तथा उसे टंकन हेतु देने से पूर्व शोधकर्ता को उसका स्वयं मूल्यांकन कर लेना चाहिए।

5.17 अभ्यास-प्रश्न

1. रिपोर्ट तैयार करने के उद्देश्य क्या हैं?
2. रिपोर्ट तैयार करने में किन-किन समस्याओं का सामना करना पड़ता है?
3. एक अच्छी रिपोर्ट की विशेषताओं को बताएँ।
4. रिपोर्ट के महत्त्व क्या हैं?
5. विवरण प्रस्तुति की रूपरेखा का वर्णन करें।
6. लेखन शैली से आप क्या समझते हैं तथा इसे किस प्रकार लिखना चाहिये?
7. तालिकाओं एवं आवृत्तियों की रचना कैसे की जाती है?
8. उद्धरित सामग्री की प्रस्तुति कैसे की जाती है?
9. प्रतिवेदन के मूल्यांकन से आप क्या समझते हैं? वर्णन करें।

5.18 संदर्भ पुस्तकें

- शिक्षा का समाजशास्त्र–तिवारी शारदा, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस।
- व्यावहारिक शोध की विधियाँ–डॉ. जय भगवान, फ्रेंड्स पब्लिकेशन (इंडिया)।